हनुमान लीलामृत

जीवन और शिक्षाएँ

श्रीराम राज्याभिषेक का समय था। सबको मूल्यवान उपहार दिए जा रहे थे, उस समय स्वय जानकी जी ने बहुमूल्य मणियो की माला, अपने गले से उतारकर हनुमान जी को भेंट करने के लिये दी। सभी उस मणिमाला के प्रकाश एव सौन्दर्य से मुग्ध थे। सर्वश्रेष्ठ सेवक को सर्वश्रेष्ठ उपहार मिला था।

आश्चर्य तो उस समय हुआ जब हनुमान उन महा मूल्यवान मणियो को अपने दाँतो से पटापट तोडने लगे। दरबार मे उपस्थित एक जौहरी ने ईर्ष्या से टोका तो उसे मुह की खानी पडी ?

"जिस वस्तु मे श्रीराम-नाम नही, वह दो कौडी की है, उसे रखने से क्या लाभ।" हनुमान ने यह बात कही और अपने वज्रनख से अपनी छाती चीर कर दिखा दिया उन केसरी कुमार का शरीर राम-नाम से बना है। उनके वस्त्र, आभूषण, आयुध सब श्रीराममय हैं। जिस वस्तु मे श्रीराम के दर्शन न हो वह पवनपुत्र के पास कैसे रह सकती है ?

महावीर हनुमान

राम से है नेह, स्वर्ण शैल के समान देह,
ज्ञानियों में अग्रगण्य, गुण के निधान हैं।
महाबलशाली हैं, अखण्ड ब्रह्मचारी यती
वायु के समान वेग, शौर्य में महान हैं।।
राघव के दूत बन, लंक में निःशंक गये,
सीता सुधि लाये, कपि यूथ के प्रधान हैं।
भक्त प्रतिपाल, क्रूर दानवों के काल व्याल,
अंजनी के लाल, महावीर हनुमान हैं।।

—गोपीनाथ उपाध्याय

नये युग में हनुमान की आवश्यकता

अब कलयुग की ये घोर निशा दिग्भ्रांत करेगी मानवता।
यम नियम मिटाये जायेंगे, मद और बढ़ेगी दानवता।।
महला का नाम न ढूंढेगा तब तक किष्किन्धा की घाटी।
पवनपुत्र के सम्बल बिन ना निखर सकेगी ये माटी।।
वीरत्व वंश का ना अगर जगा अहिरावण की बन आयेगी।
रख पाये गौरव हम कैसे? हनुमत गाथा सिखलायेगी।।
हम शान्ति चाहते हैं लेकिन वह रावण के घर बन्द आज।
नुक्ताचीनी का गया समय, हनुमान बनें तब बचे लाज।।
मानवता सुरक्षित हो कैसे, हम सबके कैसे काज सरे।
नत मस्तक हो सभी अगर, हम महावीर का ध्यान धरें।।

—स्वामी ओंकारानन्द जी

॥ श्री हनुमते नमः ॥

हनुमान लीलामृत

जीवन और शिक्षाऐं

संकटमोचन रामभक्त श्रीहनुमान जी का सम्पूर्ण जीवन-परिचय और उनके चरित्र से मिलने वाली शिक्षाऐं १६ चित्रों सहित इस पुस्तक में सम्मिलित की गई हैं।

लेखक—

प० श्री शिवनाथ जी दूबे

मूल्य : ५०.००

प्रकाशक :

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)

हरिद्वार-२४९४०१

प्रकाशक—

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)
१८२, श्रवणनाथ नगर, समीप हैप्पी स्कूल,
हरिद्वार-२४९४०१

प्रमुख विक्रेता—

१ पुस्तक संसार, बड़ा बाजार, हरिद्वार-२४९४०१
२. पुस्तक संसार, १६८-१६६, नुमायश का मैदान, जम्मू-१८०००१
३. गगन दीप पुस्तक भण्डार, एम० एन० नगर, हरिद्वार

[illegible] रुपये मात्र

मुद्रक—

सुरेन्द्र प्रिंटर्स
४/१०३ बाजार गली, विश्वास नगर,
शाहदरा, दिल्ली-३२

HANUMAN LILAMRIT Rs 30 00
Published by—Randhir Book Sales (Publishers)
Hardwar (U P)

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या

आरती श्री हनुमान जी की

आरती कीजे हनुमान लला की,
दुष्ट दलन रघुनाथ कला की।
जाके बल से गिरिवर कांपे,
रोग दोष जाके निकट न झांके।
अञ्जनी पुत्र महा बलदाई,
सन्तन के प्रभु सदा सहाई।
दे बीरा रघुनाथ पठाये,
लंका जारि सिय सुधि लाये।
लंका सो कोट समुद्र सी खाई,
जात पवन सुत बार न लाई।
लंका जारि असुर संहारे,
सियाराम जी के काज संवारे।
लक्ष्मण मूर्छित परे सकारे,
आनि संजीवन प्राण उबारे।
पैठि पाताल तोरि जमकारे,
अहिरावण की भुजा उखारे।
बाँये भुजा सब असुर संहारे,
दाहिने भुजा सब सन्त उबारे।
सुरनर मुनि आरती उतारें,
जय जय जय हनुमान उचारें।
कंचन थार कपूर लौ छाई,
आरती करत अञ्जनी माई।
जो हनुमान जी की आरती गावे,
बसि बैकुण्ठ परम पद पावे।

श्री हनुमान-लीलामृत

जीवन और शिक्षाएँ

(लेखक—पं० श्री शिवनाथ जी दुबे)

धर्म-प्राण आर्य-धरा पर शायद ही कोई जनपद, कोई नगर और कोई गांव आदि ऐसा होगा, जहाँ पवन कुमार का छोटा-बड़ा मन्दिर या मूर्ति न हो। अखाडो पर, जहां मूर्ति नही है, वहाँ उनकी मिट्टी की ही मूर्ति बनाकर पूजा की जाती है। सच तो यह है—महावीर हनुमान भारत के तन, मन, एव प्राण मे व्याप्त है और वे सदा ही हमे शक्ति, भक्ति, समर्पण, श्रम, निश्छल सेवा, त्याग, बलिदान आदि की प्रेरणा देते रहते हैं। परमादर्श श्री हनुमानजी का जीवन प्रकाश-स्तम्भ की भाँति हमारे कल्याण-मार्ग का निश्चित दिशा-निर्देश करता रहता है।

श्री सीताराम के अनन्य भक्त श्री हनुमान जी अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने वाले एव शूरता, वीरता, दक्षता, बुद्धिमत्ता आदि गुणो के पुज है। वज्राग हनुमानजी अत्यन्त शक्ति-सम्पन्न एव परम पराक्रमी तो हैं ही, अत्यन्त बुद्धिमान्, शास्त्रो के पारगत विद्वान् परम नीतिज्ञ एव सरलता की मूर्ति हैं। भगवान् श्री राम के प्रति उनका समर्पित-जीवन अपने प्रभु से पृथक नही रह गया है। उनके तन, मन, प्राण एव रोम-रोम मे अवधेश-कुमार श्री राम इस प्रकार व्याप्त हो गये है कि हनुमान जी का पृथक् अस्तित्व ही नही रह गया है। वे श्री राममय हो गये है। परम प्रभु श्री राम से उन्होने स्वय निवेदन किया है—'प्रभो! देह दृष्टि से तो म आपका दास हूँ, जीव रूप से आपका अश हूँ, तथा परमार्थ-दृष्टि से तो आप और मैं एक ही हैं; यह मेरा निश्चित मत है।'

श्री हनुमान जी को प्रसन्न होते देर नही लगती। 'राम-राम', 'सीताराम-सीताराम' जपना प्रारम्भ कर दीजिये, बस वे श्री रामभक्त उपस्थित हो जाते हैं। प्रसन्न हो जाते हैं। मनुष्य किसी प्रकार प्रभु की

ओर उन्मुख हो जाए वह जन्म-जरा-मरण से मुक्ति प्राप्त कर ले, दयामय प्रभु की ओर पग बढ़ाकर, उन पर समर्पित होकर अपना सुनिश्चित कल्याण कर ले—इसके लिये कृपामूर्ति श्री हनुमान जी सर्वदा प्रयत्न करते रहते हैं। किसी-न किसी बहाने प्रेरणा और प्रोत्साहन भी देते ही रहते हैं। भक्तों को तो वे प्राणों से अधिक प्यार करते हैं।

समस्त अमंगलों का नाश करने वाले मंगलमूर्ति भक्तवर श्री हनुमान जी का चरित्र परम पवित्र, परम मधुर एवं परमादर्श तो है ही, अत्यन्त अद्भुत भी है। श्री हनुमानजी की परम पुण्यमयी माता अंजना देवी हैं, किन्तु वे 'शंकर-सुवन', वायुपुत्र' और 'केसरीनन्दन' कहे जाते हैं, अर्थात शिव, वायु और केसरी उनके पिता हैं। उस रहस्य को स्पष्ट करने वाली विभिन्न कथाएं पुराणों में प्राप्त हैं और कल्प भेद से सभी सत्य हैं। श्रद्धापूरित हृदय से ही उनका अध्ययन, मनन, चिन्तन आदि करना चाहिये।

सौभाग्यशालिनी माता अंजना तथा शिव, वायु एवं केसरी की कथाएँ संक्षेप में यहाँ दी जा रही हैं।

माता अंजना

स्वर्गाधिप शचीपति इन्द्रकी रूप-गुण-सम्पन्ना अप्सराओं में पुञ्जिकस्थला नाम की एक प्रख्यात अप्सरा थी। वह अत्यन्त लावण्यवती तो थी ही, चंचला भी थी। एक बार की बात है कि उसने एक तपस्वी ऋषि का उपहास कर दिया।

ऋषि इसे नहीं सह सके। क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दे दिया—'वानरी की तरह चंचलता करने वाली तू वानरी हो जा।'

ऋषि का शाप सुनते ही पुञ्जिकस्थला काँपने लगी। वह तुरन्त ऋषि के चरणों पर गिर पड़ी और हाथ जोड़कर उनसे दया की भीख माँगने लगी।

सहज कृपालु ऋषि द्रवित हो गये और बोले—'मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। वानरी तो तुम्हें होना ही पड़ेगा, किन्तु तुम इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ होओगी। तुम जब चाहोगी, तब वानरी और जब चाहोगी, तब मानुषी के वेष में रह सकोगी।'

उस परम रूपवती अप्सरा पुञ्जिकस्थला ने ऋषि के शाप से कपि योनि में वानरराज महामनस्वी कुञ्जर की पुत्री के रूप में जन्म लिया। वह प्रख्यात अनिन्द्य सुन्दरी थी। उसके रूप की समानता करने वाली धरती पर अन्य कोई स्त्री नहीं थी। उस त्रैलोक्य-विख्यात सुन्दरी कुञ्जर पुत्री का नाम था - 'अञ्जना'।

लावण्यवती अञ्जना का विवाह वीरवर वानरराज केसरी से हुआ। कपिराज केसरी काञ्जन गिरि (सुमेरु) पर रहते थे।

समस्त सुविधाओं से सम्पन्न इसी सुन्दर पर्वत पर अञ्जना अपने पतिदेव के साथ सुखपूर्वक रहने लगीं। वीरवर केसरी अपनी सुन्दरी पत्नी अञ्जना को अत्यधिक प्यार करते और अञ्जना सदा अपने प्राणाराध्य पतिदेव में ही अनुरक्त रहती थीं। इस प्रकार सुखपूर्वक बहुत दिन बीत गये; पर उनके कोई सन्तान नहीं हुई।

श्री हनुमान की उत्पत्ति के विभिन्न हेतु

श्री हनुमान जी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शास्त्रों में विभिन्न कथाएँ उपलब्ध होती हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

अनन्त करुणा एवं प्रेमकी मूर्ति श्री भगवान की लीला मधुर, मनोहर एवं अद्भुत होती है। उसके स्मरण एवं श्रवण से मुनिगण मुग्ध हो जाते हैं। भक्तों की तो वह परम निधि ही होती है; किन्तु वह लीला होती है—रहस्यमयी। परम मङ्गल-कारिणी भगवल्लीला का रहस्य देवता एवं योगीन्द्र मुनीन्द्रगण भी नहीं जान पाते; वे आश्चर्यचकित होकर मौन हो जाते हैं, फिर हम कामादि दोषों से ग्रस्त सांसारिक मनुष्य उसे कैसे सोच-समझ सकते हैं। हाँ उन करुणामय लीला-विहारी की लीला का गुण-गान हमारे लिए परम कल्याणकर है।

देवताओं और दैत्यों में अमृत-वितरण के लिए परम प्रभु ने मोहिनी रूप धारण किया था, यह सुनकर कर्पूर गौर नीलकण्ठ बहुत चकित हुए। श्री भगवान का स्त्री-वेष कैसा था?—आप्तकाम भगवान शंकर के मन में अपने प्राणाराध्य के उस विशिष्ट रूप एवं विशिष्ट लीला के दर्शन करने की कामना उदित हुई।

गङ्गाधर माता पार्वती के साथ क्षीराब्धि के तट पर

पहुंचे। उन्होंने स्तवन किया। लक्ष्मीपति प्रकट हुए। देवाधिदेव महादेव ने निवेदन किया—'प्रभो! मैंने आपके मत्स्यादि सभी अवतार-स्वरूपों का दर्शन किया था, किन्तु अमृत-वितरण के समय आपने परम लावण्यमयी स्त्री का वेष-धारण किया, उस अवतार-स्वरूप के दर्शन से मै वञ्चित ही रह गया। कृपया मुझे उस रूप के भी दर्शन करा दें, जिसे देखकर देवता और दानव—सभी मोहित हो गये थे।

'देवाधिदेव महादेव! आप योगियों के उपास्य एवं मदन का दहन करने वाले हैं। आप स्त्री-अवतार देखकर क्या करेंगे? आपके लिये उसका कोई महत्त्व नहीं।' लक्ष्मी-पति ने हँसते हुये उत्तर दिया।

'पर प्रभो! मै उक्त अवतार-स्वरूप के दर्शन से वञ्चित रहना नहीं चाहता।' पार्वतीश्वर ने साग्रह निवेदन किया—'कृपया मुझे उस मोहिनी स्वरूप के भी दर्शन करा ही दें।'

'तथास्तु!' क्षीराब्धिशायी संक्षिप्त उत्तर देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। अब वहाँ न तो क्षीरोदधि था और न नव-नीरद वपु, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी लक्ष्मीपति ही थे। वहाँ थे सर्वत्र मनोहर पर्वत एवं सुरम्य वन। माता पार्वती सहित भगवान शंकर उस सुखद वन-प्रान्त के मध्य में थे।

वन में पूर्णतया वसन्त छाया था। वृक्षों में नये कोमल पत्ते निकल आये थे। सर्वत्र पुष्प खिले थे और उन सुगन्धित सुमनों पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। कोकिला 'कुहू-कुहू' शब्द कर रही थी। शीतल-मन्द समीर में कोमल लतिकाएँ एवं पुष्प धीरे-धीरे झूम रहे थे। सर्वत्र ऋतुराज का साम्राज्य प्रसरित था एवं मादकता व्याप्त थी।

सहसा योगियों के उपास्य त्रिनेत्र ने कुछ दूर पर लता-ओट

में देखा—एक अत्यन्त रूपवती स्त्री अपने कर-कमलों पर कन्दुक उछालती हुई रह-रहकर दीख जाती है।

कामारि अधीर होने लगे। जिस अनन्त अपरिमीम सौन्दर्य-सिन्धु के एक सीकर की तुलना सृष्टि की सम्पूर्ण सौन्दर्य-राशि से सम्भव नहीं, वह सौन्दर्य-सिन्धु स्वयं जब मूर्त हो उच्छलित होता दीख जाय, तब क्या हो? उसके सम्मुख लावण्यमयी अप्सराओं का त्याग और काम-दहन की क्या गणना? भोले नाथ को अपनी भी सुध न रही। वे निर्निमेष दृष्टि से कन्दुक द्वारा क्रीडा करती हुई मोहिनी को देख रहे थे।

सहसा पवन का झोंका आया और जैसे बिजली-सी कौंध गयी अप्रतिम सौन्दर्य शालिनी मोहिनी का वस्त्र खिसका और वह नग्नप्राय हो गयी। लाज से सिकुड़ी मोहिनी लताओं में छिपनेका प्रयत्न करने लगी और चिता-भस्म-धारण करने वाले योगिराज कामारि का अवशिष्ट धैर्य भी समाप्त हो गया। वे महामहिमामयी माता पार्वती के सम्मुख ही लज्जा त्यागकर उन्मत्त की तरह मोहिनी के पीछे दौड़े।

मोहिनी ने योगीश्वर शंकर को अपनी ओर आते देखा तो मुस्कराकर लताओं की ओट में अपने अङ्गों को छिपाने का प्रयत्न करती हुई दूर भागने लगी। भूतभावन मोहिनी के पीछे दौड़ रहे थे और वह भागी जा रही थी। नीलकण्ठ को अपनी स्थितिका अनुमान भी नहीं था। उन्होंने दौड़ कर मोहिनी के कर का स्पर्श कर लिया।

प्रज्वलित अग्नि में घृताहुति पड़ गयी, पर मोहिनी हाथ छुड़ाकर भागी। उसके स्पर्श से उत्तेजित कामारि पूर्णतया बेसुध हो चुके थे। वनों, पर्वतों, ऋषियों के आश्रमों एवं देव-लोक में भी भगवान् शंकर मोहिनी के पीछे-पीछे दौड़ लगा रहे

थे और माता पार्वती, शिवगण, सुरगण एवं ऋषिगण—सभी आश्चर्य-चकित हो यह दृश्य देख रहे थे; पर थे सभी मौन। असफल काम क्रोध, के रूप में परिणत हो जाता है और फिर प्रलयंकर शंकर के रोषानल की आहुति कौन बने। सभी स्तब्ध थे, जैसे सभी जड़-से हो गये हों।

अन्ततः योगिराज शिव का रेतस् स्खलित हुआ। अब उन्हें अपनी स्थिति का भान हुआ। विश्वनाथ ने तुरन्त दोनों हाथ जोड़ लिये और मस्तक झुकाकर कहा—'प्रभो! आपकी लीला अगम्य है आपकी माया का पार पाना सम्भव नहीं है!'

अपने परम प्रभु की लीला की अगम्यता एवं अनिर्वचनीयता को समझकर भगवान शंकर उनका ध्यान करने जा ही रहे थे कि उनके सम्मुख वनमालाधारी चतुर्भुज प्रभु प्रकट हुए और उमावल्लभ शिवकी निष्ठा एवं विश्वास की प्रशंसा कर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। परमपिता कर्पूरगौर भी माता पार्वती के साथ प्रभु-गुण-गान करते हुए कैलाश के लिये चल पड़े।

भगवान शंकर का अमोघ वीर्य व्यर्थ कैसे जाता? उस वीर्य का राम-कार्य की सिद्धि के लिये प्रयोग करने की दृष्टि से भगवान शंकर ने सप्तर्षियों को प्रेरित किया। उन्होंने उस वीर्य को पत्ते पर स्थापित कर लिया और समय से उसे केसरी पत्नी अञ्जना में कर्ण-मार्ग से प्रवेश करा दिया। उसके फलस्वरूप हनुमानजी प्रकट हुए।

× × ×

पति के साथ दीर्घकाल तक सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करती हुई अञ्जना को कोई संतान नहीं हुई। इस कारण वे अत्यन्त कठोर तप करने लगीं।

अञ्जना को तपश्चरण करते देख महामुनि मतङ्ग ने उनके

पास जाकर पूछा—'अञ्जना देवि ! तुम इतना कठोर तप किसलिये कर रही हो ?'

अञ्जना ने महामुनि के चरणो में प्रणाम कर अत्यन्त विनम्रता से उत्तर दिया—'मुनीश्वर ! केसरी नामक श्रेष्ठ वानर ने मेरे पिता से मुझे माँगा। उन्होने मुझे उनकी सेवा मे समर्पित कर दिया। मैं अपने पतिदेव के साथ बहुत दिनों से अत्यन्त सुखपूर्वक रह रही हूँ; किन्तु अब तक मुझे कोई संतान नही हुई। इसी कारण मैंने किष्किन्धा मे अनेक व्रत, उपवास तथा तप किये, परन्तु मुझे पुत्रकी प्राप्ति नही हो सकी। अतएव दुःखी होकर मैंने पुत्र के लिए पुनः तपश्चर्या प्रारम्भ की है। विप्रवर ! आप कृपापूर्वक मुझे यशस्वी पुत्र प्राप्त होने का उपाय बताइये।'

तपोधन मतङ्ग मुनि ने अञ्जना से कहा—'तुम वृषभाचल (वेङ्कटाचल) पर जाकर भगवान वेङ्कटेश्वर के भुक्ति-मुक्ति-दायक चरणो मे प्रणाम करो। फिर वहाँ से कुछ ही दूर आकाश गङ्गा नामक तीर्थ मे जाकर स्नान कर लो। तदनन्तर उसका शुभ जल पीकर वायुदेव को प्रसन्न करो। इससे तुम्हें देवता, राक्षस, मनुष्यो से अजेय तथा अस्त्र-शस्त्रो से भी अवध्य पुत्र प्राप्त होगा।'

देवी अञ्जना ने महामुनि के चरणो में श्रद्धा पूर्वक प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होने वृषभाचल की यात्रा की। वहाँ पहुँच कर भगवान वेङ्कटेश्वर के चरणों की अत्यन्त भक्ति पूर्वक वन्दना की। इसके बाद उन्होने 'आकाशगङ्गा' नामक तीर्थ मे स्नान कर उसके परम पावन जलका पान किया। फिर उसके तटपर तीर्थ की ओर मुँह करके वायुदेवता की प्रसन्नता के लिये अत्यन्त सयम पूर्वक तपश्चरण प्रारम्भ किया। अञ्जना अत्यन्त

श्रद्धा, विश्वास एवं धैर्य पूर्वक तप करती रहीं, शारीरिक कष्टों की तनिक भी चिन्ता न कर वे अखण्ड तप करती ही रहीं।

भगवान सूर्य मेष राशि पर थे। चित्रानक्षत्र युक्त पूर्णिमा तिथि थी। अञ्जना के कठोर तपश्चरण से तुष्ट वायु देवता प्रकट हो गये। उन्होंने अञ्जना से कहा-'देवि! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर मांगो; मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

वायु देव का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त कर प्रसन्न अञ्जना ने उनके चरणों में प्रणाम कर अपना मनोरथ प्रकट कर दिया-'महाभाग! मुझे उत्तम पुत्र प्रदान कीजिये!'

संतुष्ट वायु देव ने कहा-'सुमुखि! मैं ही तुम्हारा पुत्र होकर तुम्हें विश्व विख्यात कर दूंगा।'

वर प्राप्त कर अञ्जना देवी की प्रसन्नता की सीमा न रही। अपनी प्राण प्रिया की वर-प्राप्ति का संवाद पाकर कपि-राज केसरी भी अत्यन्त मुदित हुए।

एक वार की बात है। परम लावण्यवती विशाललोचना माता अञ्जना ने शृंगार किया। उनके सुन्दर कलेवर पर पीली साड़ी शोभा दे रही थी। साड़ी का किनारा लाल रंग का था। वे विविध सुगन्धित सुमनों के अद्भुत आभूषणों से दिव्य सौन्दर्य की सजीव प्रतिमा-सी प्रतीत हो रही थीं।

माता अञ्जना पर्वत-शिखर पर खड़ी होकर प्राकृतिक सौन्दर्य देख-देखकर मन-ही-मन मुदित हो रही थीं। उस समय उनके मन में कामना उदित हुई-'कितना अच्छा होता, यदि मेरे एक सुयोग्य पुत्र होता।

सहसा वायु का तीव्र झोंका आया और अञ्जना की

साड़ी का अञ्चल कुछ खिसक गया। उनके अङ्ग दीखने लगे। अञ्जना ने अनुभव किया, जैसे मुझे कोई स्पर्श कर रहा है।

सहमती हुई अञ्जना ने अपना वस्त्र सम्भाला और अपना स्पर्श करने वाले को डॉटते हुएकहा—'कौन ढीठ मेरे पतिव्रत्य का नाश करना चाहता है?' वे शाप देने के लिये प्रस्तुत हो गयीं।

परम सती अञ्जना को क्रुद्ध देखकर पवनदेव प्रकट हो गये।

उन्होने कहा—'यशस्विनि! मै तुम्हारे एक पतिव्रत का नाश नहीं कर रहा हूँ। अत तुम्हे भयभीत नही होना चाहिए। मैंने अव्यक्त रूप से तुम्हारा आलिङ्गन करके मानसिक सकल्प द्वारा तुम्हे बल-पराक्रम से सम्पन्न एवं बुद्धिमान् पुत्र प्रदान किया है। तुम्हारा पुत्र महान् धैर्यवान, महातेजस्वी, महाबली, महापराक्रमी तथा लॉघने और छलाँग मारने मे मेरे ही समान होगा।'

माता अञ्जना प्रसन्न हो गयीं। उन्होने पवन देव को क्षमा कर दिया। अञ्जना गर्भवती हुईं। कपिराज केसरी की प्रसन्नता की सीमा न थी।

× × ×

अधिक आयु बीत जाने पर कोई संतान न होने से रघुकुलशिरोमणि राजा दशरथ के मनमे अत्यधिक ग्लनि हुई। उन्होंने वसिष्ठजी के आदेशानुसार महर्षि ऋष्यश्रृङ्ग के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। ऋषि ने भक्ति पूर्वक आहुतियाँ दी। इससे प्रसन्न होकर अग्नि देव हाथ मे चरु (हविष्यान्न, खीर) लिए प्रकट हुए और उन्होने राजा दशरथ से कहा—'तुम्हारे कार्य की सिद्धि हो गयी। अब तुम इस खीर को रानियों मे यथाक्रम बाँट दो।' अग्निदेव अन्तर्धान हो गये।

राजा दशरथ ने पायसका आधा भागा बड़ी रानी कौशल्या को दिया और शेष आधे के दो भाग किये, जिनमें से एक भाग कैकेयी को दिया। शेष के दो भाग हुए और राजा ने उनको कौशल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर, उनका मन प्रसन्न कर अर्थात् उनकी अनुमति से सुमित्रा को दे दिया।

कैकेयी हाथ में पायस लिए हुए कुछ विचार कर रही थीं कि सहसा आकाश से एक गृद्धी ने झपटकर चरु को अपनी चोंच में ले लिया और वह तुरन्त आकाश में उड़ गयी।

अब तो कैकेयी व्याकुल हो गयीं। तब महाराज दशरथ की प्रेरणा से कौशल्या तथा सुमित्रा ने अपने चरुका थोड़ा-थोड़ा कैकेयी को दिया। तीनों रानियां गर्भवती हुईं। महारानी कौशल्या के अङ्क में श्री रामचन्द्र जी, कैकेयी की गोद में भरत जी एवं सुमित्रा देवी को कृतार्थ करने के लिए लक्ष्मण जी और शत्रुघ्न प्रकट हुए।

कपिराज केसरी अपनी सुन्दरी सहधर्मिणी अंजना के साथ सुमेरु पर्वत पर निवास करते थे। अंजना ने पुत्र की प्राप्ति के लिए सात सहस्र वर्षों तक कर्पूरगौर उमानाथ की उपासना की। प्रसन्न होकर आशुतोष ने अंजना से वर माँगने के लिए कहा।

अंजना ने सर्वलोकमहेश्वर के चरणों में प्रणाम कर अत्यन्त विनय पूर्वक याचना की—'करुणामय शम्भो ! मै समस्त सद्गुणों से सम्पन्न योग्यतम पुत्र चाहती हूँ।'

प्रसन्न भोले नाथ ने कहा—'एकादश रुद्रों में से मेरा अंश ग्यारहवाँ रुद्ररूप ही तुम्हारे पुत्र के रूप में प्रकट होगा। तुम मन्त्र ग्रहण करो। पवन देवता तुम्हें प्रसाद देंगे। पवन के उस प्रसाद से ही तुम्हें सर्वगुण सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति होगी।'

पार्वतीश्वर अन्तर्धान हो गये और भगवती अंजना अंजलि पसारे शिव-प्रदत्त मन्त्र का जाप करने लगीं। उसी समय उक्त गृध्री कैकेयी के भाग का पायस लिये आकाश मे उडती हुई जा रही थी सहसा झंझावात आया। गृध्री का अङ्ग सिकुडने लगा और पायस उसकी चोच से गिर गया। पवन देव पहले से ही तैयार थे। उन्होने उक्त चरु अजना की अंजलि मे डाल दिया। भगवान शकर पहले ही बता चुके थे, अंजना ने तुरन्त पवन-प्रदत्त चरु अत्यन्त आदर पूर्वक ग्रहण कर लिया और वे गर्भवती हो गयी।

श्री हनुमान का अवतरण

चैत्र शुक्ला १५ मगलवार की पवित्र वेला थी। भगवान शिव अपने परमाराध्य श्री राम की मुनि-मनमोहिनी अवतार-लीला के दर्शन एवं उसमे सहायता प्रदान करने के लिये अपने अंश ग्यारहवे रुद्र मे इस शुभ तिथि और शुभ मुहूर्त मे माता अंजना के गर्भ मे पवन-पुत्र महावीर हनुमान के रूप मे धरती पर अवतरित हुए। कल्प भेद से कुछ लोग इनका प्राकट्य-काल चैत्र शुक्ल एकादशी के दिन मघा नक्षत्र मे मानते हैं, कुछ कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को और कुछ कार्तिक की पूर्णिमा को पवन-पुत्र का जन्म मानते हैं। कोई मगलवार तो कोई शनिवार को उनका जन्म-दिन स्वीकार करते हैं। भावुक भक्तो के लिये अपने आराध्य की पुण्यमयी तिथियाँ श्रेष्ठ है।

भगवान शिव के ग्यारहवें रुद्रावतार—मारुतात्मज, केसरी-किशोर, अजना-नन्दन के धरती पर चरण रखने के समय प्रकृति पूर्णतया रम्य हो गयी थी। दिशायें प्रसन्न थीं। सूर्य देव की किरणें सुखद-शीतल थी। सरिताओ मे स्वच्छ सलिल बहने लगा

था। पर्वत उत्सुक नेत्रों से आञ्जनेय के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रपात प्रसन्नता से उछलते हुए गतिशील थे। वनों, उपवनों, बागों और वाटिकाओं में विविध रंग के मनोहर पुष्प खिल उठे थे; उन पर भ्रमरावली गुंजार कर रही थी। मद-मत्त वायु मन्थर गति से डोल रहा था।

भगवान शंकर माता अंजनी के लाल के रूप में प्रकट हुए। प्राकट्य-काल में ही हनुमान जी का सौन्दर्य अतुलनीय एवं अवर्णनीय था। उनकी अङ्ग-कान्ति पिङ्गलवर्ण की थी। उनके रोम, केश एवं नेत्र भी पिङ्गलवर्ण के ही थे। हनुमानजी विद्युच्छटा-तुल्य सुवर्ण-निर्मित मनोहर कुण्डल धारण किये हुये ही माता अंजना की कुक्षि से अवतरित हुए। उनके मस्तक पर मणि-जटित टोपी शोभा दे रही थी और वे कौपीन और काछनी काछे हुए थे। उनके प्रशस्त वक्षपर यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था एवं हाथ में वज्र और कटि-प्रदेश में मूंजकी मेखला सुशोभित थी। अपने पुत्र का अलौकिक रूप-सौन्दर्य देखते ही माता अंजना-आनन्द विभोर हो गयीं।

भाग्यवती धरित्रीपर हनुमान जी के चरण रखते ही माता अंजना और कपिराज केसरी के आनन्द की सीमा ही नहीं थी, चतुर्दिक् हर्षोल्लास की लहरें दौड़ पड़ीं। देवगण, ऋषिगण कपिगण, पर्वत प्रपात, सर, सरिता, समुद्र, पशु-पक्षी और जड़-चेतन ही नहीं, स्वयं माता वसुंधरा पुलकित हो उठीं। सर्वत्र हर्ष एवं उल्लास प्रसरित था। चतुर्दिक आनन्द का साम्राज्य व्याप्त हो गया था।

बाल्यकाल

माता अंजना अपने प्राणप्रिय पुत्र हनुमान जी का लालन-पालन बड़े ही मनोयोग पूर्वक करतीं। कपिराज केसरी भी उन्हें अतिशय प्यार करते। जब हनुमानजी प्रसन्नता पूर्वक किलकते तो अंजना और केसरी आनन्द-मग्न हो जाते। हनुमान की बाल क्रीडायें अत्यन्त-आकर्षक और सुखद तो थीं ही, अद्भुत भी होती थीं।

एक बार की बात है। कपिराज केसरी कहीं बाहर गये हुए थे। माता अंजना भी बालक को पालने में लिटाकर वन में फल-फूल लेने को चली गयीं। बालक हनुमान जी को भूख लगी। माता की अनुपस्थिति में वे हाथ-पैर उछाल-उछाल कर क्रन्दन करने लगे। सहसा उनकी दृष्टि प्राची के क्षितिज पर गयी। अरुणोदय हो रहा था। उन्होंने सूर्य के अरुण बिम्ब को लाल फल समझा।

तेज और पराक्रम के लिए अवस्था अपेक्षित नहीं। यहाँ तो हनुमान जी के रूप में अंजना के अंक में प्रत्यक्ष प्रलयंकारी शंकर ग्यारहवें रुद्र क्रीडा कर रहे थे। वायु देव ने पहले ही उन्हें उड़ने की शक्ति प्रदान कर दी थी। हनुमानजी उछले और वायु वेग से आकाश में उड़ने लगे। पवन पुत्र तीव्र गति से उड़ते चले जा रहे थे। उन्हें इस प्रकार वेग पूर्वक उड़ते देख कर देव, दानव और यक्षादि विस्मित होकर कहने लगे--'इस वायु पुत्र के वेग के तुल्य वेग तो स्वयं वायु, गरुड और मनमें भी नहीं है। इसी आयु में शिशु का ऐसा वेग और पराक्रम है तो यौवन काल में इसकी शक्ति कैसी होगी।'

वायु देव ने अपने पुत्र को सूर्य की ओर जाते देखा तो उनके मन में चिन्ता हुई–'मेरा यह बच्चा कहीं सूर्य की प्रखर किरणों से झुलस न जाय'–इस कारण वे वर्फ के समान शीतल होकर उसके साथ चलने लगे।

सूर्य देव ने अलौकिक बालक को अपनी ओर आते देखा तो उन्हें समझते देर न लगी कि ये पवन-पुत्र अपने पिता के वेग से मेरी ओर आ रहे हैं और स्वयं पवन देव भी उनकी रक्षा करने लिये साथ ही उड़ रहे हैं। सूर्य देव ने अपना सौभाग्य समझा–'अहा ! स्वयं भगवान् चन्द्रमौलि ही हनुमान जी के रूप में मुझे कृतार्थ करने के लिए पधार रहे हैं !' अंशुमाली की अग्निमयी किरणें शीतल हो गयीं। हनुमानजी सूर्य के रथ पर पहुंचकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगे।

संयोग की बात, उस दिन अमावस्या तिथि थी। सिंहिका पुत्र राहु सूर्य देव को ग्रसने के लिये आया तो भुवन भास्कर के रथ पर बैठे हुए उस बालक को देखा। राहु बालक की चिन्ता न कर दिनमणि को ग्रसने के लिये आगे बढ़ा ही था। कि हनुमान जी ने उसे पकड़ लिया। उनकी वज्र मुष्टि में दबकर राहु छटपटाने लगा। वह किसी प्रकार प्राण बचाकर भागा। वह सीधा सुरपति इन्द्र के समीप पहुँचा और उसने भौहें टेढ़ी कर क्रोध के साथ कहा–'सुरेश्वर ! मेरी क्षुधा का निवारण करने के लिये आपने मुझे सूर्य और चन्द्र को साधन के रूप में प्रदान किया था, किन्तु अब आपने यह अधिकार दूसरे को किस कारण दे दिया ?'

क्रुद्ध सिंहिका पुत्र राहु की चकित करने वाणी सुनकर सुरेन्द्र उसका मुँह देखने लगे। उसने आगे कहा–'आज पर्व के समय में सूर्य को ग्रसने के लिए उनके समीप गया ही था कि

वहाँ पहले से उपस्थित दूसरे राहु ने मुझे कसकर पकड़ लिया। किसी प्रकार अपनी जान बचाकर यहाँ आ पाया हूँ।'

नेत्रों में आँसू भरे क्रुद्ध राहु की वाणी सुनकर वासव चिन्तित हो उठे। वे अपने सिंहासन से उठकर खड़े हो गये और ऐरावतपर बैठकर घटना-स्थल की ओर चले। राहु उनके आगे-आगे चला। शचीपति आश्चर्य चकित हो मन-ही-मन सोच रहे थे—'तिमिरारि के समीप ऐसा कौन पराक्रमी पहुँच गया, जिसके भयसे सिंहिका के पुत्र को प्राण बचाकर भागना पड़ा!'

उधर राहु बड़े वेग से सूर्य की ओर दौड़ा। उसे देखते ही हनुमानजी को भूख की स्मृति हुई। वे राहु को सुन्दर भक्ष्य समझकर उसपर टूट पड़े।

'सुरेश्वर! बचाइये! बचाइये!!'—चिल्लाता हुआ राहु इन्द्र की ओर भागा।

सुरेन्द्र राहु की रक्षा के लिये दौड़े। राहु के बच निकलने पर हनुमान जी ने ऐरावत को देखा तो उसे सुन्दर सुस्वादु खाद्य समझा। वे ऐरावत पर झपटे। उस समय हनुमान जी का स्वरूप प्रज्वलित अग्नि की भाँति प्रकाशित और भयानक प्रतीत हो रहा था। इन्द्र डर गये। अपनी रक्षा के लिए उन्होंने बालक पर वज्र से प्रहार किया। वह हनुमानजी की बायीं हनु (ठुड्डी) में लगा, जिससे उनकी हनु टूट गयी और वे छटपटाते हुए पर्वत शिखर पर गिर कर मूर्च्छित हो गये।

अपने प्राण प्रिय पुत्र को वज्र के आघात से छटपटाते देख वायुदेव इन्द्र पर अत्यन्त कुपित हुए। शक्तिशाली वायु देव ने अपनी गति रोक दी और वे अपने पुत्रको अंक में लेकर पर्वत की गुफा में प्रविष्ट हो गये।

फिर तो त्रिभुवन के समस्त प्राणियों में श्वास आदि का

संचार रुक गया। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों के जोड़ टूटने लगे और वे सब-के-सब सूखे काठ की तरह अवसन्न हो गये। उनके सारे धर्म-कर्म रुक गये।

प्राण-संकट से भयभीत इन्द्र, देव, गन्धर्व, असुर, नाग, गुह्यक आदि जीवन-रक्षा के लिये ब्रह्माजी के पास दौड़े। ब्रह्मा जी सबको साथ लेकर उस गिरि-गुहा में पहुँचे, जहाँ पवन देव अपने पुत्र को अङ्क में लेकर वक्ष से सटाये दुःखातिरेक से आँसू बहा रहे थे। मूच्छित हनुमानजी की सूर्य, अग्नि एवं सुवर्ण के समान अङ्ग-कान्ति देखकर चतुर्मुख चकित हो गये।

अपने सम्मुख स्रष्टाको देखते ही पवनदेव पुत्र को गोद में लेकर खड़े हो गये। उस समय हनुमान जी के कानों में अलौकिक कुण्डल हिल रहे थे। उनके मस्तक पर मुकुट, गले में हार और दिव्य अङ्गों पर सुवर्ण के आभूषण सुशोभित थे। पवन देवता विधाता के चरणों पर गिर पड़े।

चतुरानन ने अपने हाथों से अत्यन्त स्नेह पूर्वक पवन देव को उठाया और उनके पुत्र के अङ्गो पर अपना कर-कमल फेरने लगे। कमल योनि के कर स्पर्श से पवन-पुंत्र हनुमान जी की मूर्छा दूर हो गयी। वे उठकर बैठ गये। अपने पुत्र को जीवित देखते ही जगत के प्राणस्वरूप पवन देव पूर्ववत् बहने लगे और त्रैलोक्य को जीवन-दान मिला।

ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर हनुमानजी को वर प्रदान करते हुए कहा—'इस बालक को ब्रह्म शाप नहीं लगेगा और इसका कोई अङ्ग कभी भी शस्त्रास्त्रों से नहीं छिद सकेगा।'

फिर उन्होंने सुर समुदाय से कहा—'देवताओं! यह असाधारण बालक भविष्य में आप लोगों का बड़ा हित-साधन करेगा, अतएव आप लोग इसे वर प्रदान करें।'

देवराज इन्द्र ने तुरंत प्रसन्नता—पूर्वक हनुमानजी के कण्ठ में अम्लान कमलों की माला पहना कर कहा—"मेरे हाथ से छूटे हुए वज्र के द्वारा इस बालक की हनु (ठुड्डी) टूट गयी थी, इसलिए इस कपि श्रेष्ठ का नाम, 'हनुमान' होगा। इसके अतिरिक्त इस बालक पर मेरे वज्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और इसका शरीर मेरे वज्र से भी अधिक कठोर होगा।"

वहाँ उपस्थित सूर्य देव ने कहा—मैं इसे अपने तेज का शतांश प्रदान करता हूं; साथ ही समय पर इसे शिक्षा देकर शास्त्र-मर्मज्ञ भी बना दूंगा। यह अद्वितीय विद्वान और वक्ता होगा।'

वरुण ने कहा 'मेरे पाश और जल से यह बालक सदा सुरक्षित रहेगा।'

यमदेव बोले—'यह निरोग और मेरे दण्ड से सदा अवध्य रहेगा।'

पिङ्गलवर्ण के यक्षराज कुबेर ने कहा—'युद्ध में इसे कभी विषाद नहीं होगा। मेरी गदा से यह सुरक्षित तो रहेगा ही, मेरे यक्ष-राक्षसों से भी कभी पराजित नहीं हो सकेगा।'

भगवान शंकर ने वर प्रदान किया—'यह मुझसे और मेरे आयुधों से सदा अवध्य रहेगा।'

विश्वकर्मा बोले 'यह बालक मेरे द्वारा निर्मित समस्त दिव्य अस्त्रों और शस्त्रों से सदा सुरक्षित रहकर चिरायु होगा।'

इस प्रकार देवताओं के अमोघ वरदान दे लेने पर कमल योनि ब्रह्मा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर पुनः कहा—'यह दीर्घायु, महात्मा तथा सब प्रकार के ब्रह्मदण्डों से अवध्य होगा।'

फिर प्रसन्न चतुरानन ने पवनदेव से कहा 'मारुत! तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओं के लिए भयकर और मित्रों के लिए

अभय देने वाला होगा। इसे युद्ध में कोई पराजित नहीं कर सकेगा। यह इच्छानुसार रूप धारण कर जहाँ चाहेगा, जा सकेगा। इसकी अव्याहत गति होगी यह अत्यन्त यशस्वी होगा। और अत्यन्त अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी कार्य करेगा।'

इस प्रकार वर प्रदान् कर ब्रह्मादि देवगण तथा असुरादि अपने-अपने स्थान के लिए प्रस्थित हुए।

ऋषियो का शाप

बालक हनुमान बड़े ही चञ्चल और नटखट थे। एक तो प्रलयंकारी शंकर के अवतार, दूसरे कपि-शावक, उस पर देवताओं द्वारा प्रदत्त अमोघ वरदान। इनकी चपलता से माता पिता प्रसन्न होते। मृगराज की पूंछ पकड़कर उसे चारों ओर घुमाना और हाथी को पकड़ कर उसकी शक्ति का अनुमान लगाना तो प्रायः इनकी नित्य की क्रीड़ा के अन्तर्गत था। कभी ये विशाल वृक्षों को मूल सहित हिला देते। पर्वत का कोई शिखर ऐसा नहीं था, जहाँ ये छलाँग मारकर न पहुँच जायें। सम्पूर्ण अगम्य वन एवं पर्वत इनके देखे-भाले थे।

वन के प्राणी प्रायः इनसे घबराते, किन्तु अन्दर से इन्हें प्यार भी करते थे। ये समस्त प्राणियों के मित्र और रक्षक थे। कोई सबल किसी दुर्बल को कष्ट दे, यह हनुमानजी को सह्य नहीं था। ये एक वृक्ष की चोटी से दूसरे वृक्ष की चोटी पर कूदते हुए योजनों दूर निकल जाते। इनके भार से यदि किसी वृक्ष की डाल के टूटने की आशंका होती तो ये हल्के हो जाते।

वरदान जनित शक्ति से सम्पन्न हनुमान जी तपस्वी ऋषियों के आश्रमों में चले जाते और वहाँ कुछ-न-कुछ ऐसी चपलता कर बैठते, जिससे ऋषियों को क्लेश पहुँचता। एक

ऋषि का आसन दूसरे ऋषि के समीप रख देते। किसी का मृगचर्म ओढकर पेडो पर कूदते या उसे किसी वृक्ष पर टाँग देते। किसी के कमण्डलु का जल उलट देते तो किसी का कमण्डलु पटक कर फोड़ देते या उसको जल मे बहा देते।

हनुमान जी जप करते मुनियों के अक मे बैठ जाते। अहिंसापरायण मुनि ध्यानस्थ होकर जप करते रहते, किन्तु ये वानर-शिरोमणि मुनिकी दाढी नोचकर भाग जाते। किसी की कौपीन तो किसी के पाठ की पोथी अपने दाँतो और हाथों से फाड़कर फेंक देते। ये महाबली पवन-कुमार महात्माओ के यज्ञोपयोगी पात्र भी नष्ट कर देते। स्रुक्-स्रुवा आदि को तोड़ देते तथा कठिनाई से प्राप्त ढेर-के-ढेर वल्कलों को चीर-फाड़कर फेंक देते थे। ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा दिये गये वरदान से परिचित होने के कारण ऋषिगण अवश थे; चुप रह जाते पर उन्हे बड़ा क्लेश पहुँचता।

धीरे-धीरे हनुमानजी की आयु विद्याध्ययन के योग्य हो गयी, पर इनकी चंचलता बनी ही रही। माता-पिता भी बड़े चिन्तित थे। उन्होने अपने प्राणप्रिय लाल को अनेक प्रकार से समझाया, कई प्रकार के यत्न किये, किन्तु हनुमान जी की चपलता में कमी नहीं आयी। अन्ततः अंजना और वानर राज केसरी ऋषियो के समीप पहुँचे। ऋषियों ने भी अपनी कष्ट-गाथा उन्हे कह सुनायी। उन्होने ऋषियो से विनम्रता पूर्वक निवेदन किया 'तपोधनो! हमे यह बालक बहुत दिनों के बाद कठोर तप के प्रभाव से प्राप्त हुआ है। आप लोग इस पर अनुग्रह करें। ऐसी कृपा करें, जिससे यह विद्या प्राप्त कर ले। आप लोगो की करुणा से ही इसका स्वभाव-परिवर्तन सम्भव है। आप हम दोनो पर दया करें।'

ऋषियों ने सोचा—'इसे अपनी अमित शक्ति एवं पराक्रम का अभिमान है। यदि यह अपना बल भूल जाय तो इसका यथार्थ हित हो सकता है।'

कुछ वयोवृद्ध समर्थ ऋषि यह भी जानते थे कि 'यह बालक देवताओं का हित-साधन करने वाला है। यह भगवान श्रीराम का अनन्य भक्त होगा और अनुगत भक्त के लिये बल का अहंकार उचित नहीं। दीन-भाव से ही प्रभु का कैंकर्य निभ सकेगा।'

इस कारण भृगु एवं अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न हुए ऋषियों ने हनुमान जी को शाप दे दिया—'वानर वीर! तुम जिस बलका आश्रय लेकर हमें सता रहे हो, उसे हमारे शाप से मोहित होकर दीर्घ-काललक भूले रहोगे—तुम्हें अपने बलका पता ही न चलेगा। जब कोई तुम्हे तुम्हारी कीर्तिका स्मरण दिलायेगा, तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा।'

तपस्वी मुनियो के इस प्रकार शाप देने से पवन कुमार का तेज और ओज कम हो गया और ये अत्यन्त सौम्य स्वभाव के हो गये। अब ये अन्य कपि-किशोरो की तरह आश्रमो में शान्त भाव से विचरण करते। इनके मृदुल व्यवहार से ऋषि-मुनि भी प्रसन्न रहने लगे।

मातृ-शिक्षा

बालक पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है—माता के जीवन एवं उनकी शिक्षा का। आदर्श माताएँ अपने पुत्र को श्रेष्ठ एवं आदर्श बना देती हैं। पुराण-इतिहासो में ऐसे उदाहरण भरे पड़े है।

हनुमान जी की माता अञ्जना देवी परम सदाचारिणी,

तपस्विनी एवं सद्गुण-सम्पन्न आदर्श माता थीं। उन्होंने अपने लाल को प्राप्त करने के लिये जितनी तत्परता से कठोर तपश्चरण किया था, उसी तत्परता से वे अपने प्राणप्रिय बालक का जीवन-निर्माण करने के लिये सजग और सावधान रहती थी। वे हनुमान जी के वीरता पूर्ण कार्य देखकर मन-ही-मन मुदित होतीं और उन्हें प्रोत्साहन देती।

पूजनोपरान्त और रात्रि में शयन के पूर्व से अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्र को पुराणों की कथाए सुनाया करतीं वे आदर्श पुरुषों के चरित्र बार-बार सुनातीं और अपने पुत्र का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करती रहती। वे महापुरुषों के जो चरित्र सुनातीं, उन्हें पुनः-पुनः अपने लाल से भी पूछतीं, और उनका लाल—उसे क्या सीखना था! सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी शिव से गोपनीय क्या है? किन्तु लीला में कभी-कभी हनुमानजी अनजान बनकर ठीक उत्तर न देते तो माता उसे पुनः सुनाकर कण्ठस्थ करा देती। करुणावरुणालय के अवतारों की समस्त कथाए हनुमान जी के जिह्वाग्र पर थीं। उन श्रेष्ठ कथाओं को वे अपने समवयस्क कपि-किशोरों को अत्यन्त प्रेम और उत्साहपूर्वक सुनाया करते।

माता अञ्जना जब भगवान श्री राम के अवतार को कथा प्रारम्भ करती, तब बालक हनुमान का सारा ध्यान उक्त कथा में ही केन्द्रित हो जाता। निद्रा उनके समीप फटकने नहीं पाती थी। माता को झपकी आती तो हनुमानजी उन्हें झकझोर कर कहते—'माँ! आगे कह, फिर क्या हुआ?'

माता फिर कहने लगतीं। श्रीराम-कथा के श्रवण से हनुमान जी की तृप्ति हो नहीं होती थी। वे माँ से बार-बार श्रीराम-कथा ही सुनाने का आग्रह करते। माता अञ्जना

उल्लास-पूर्वक कथा सुनातीं और हनुमानजी उस कथा के श्रवण से भाव-विभोर हो जाते। उनके नेत्रों में अश्रु भर आते, अङ्ग फड़कने लगते। वे सोचते–'यदि मैं भी वही हनुमान होता!'

कथा सुनाते-सुनाते माता अञ्जना पूछ बैठतीं 'बेटा! तू भी वैसा ही हनुमान बनेगा?'

हाँ, माँ! अवश्य वही हनुमामें बनूँगा।' हनुमान जी उत्तर देते। 'पर श्रीराम और रावण कहाँ हैं? यदि रावण ने जननी सीता की ओर दृष्टिपात किया तो मैं उसे पीसकर रख दूंगा।'

माता अञ्जना कहतीं–'बेटा! तू भी वही हनुमान हो जा। अब भी लंका में एक रावण राज्य करता है और अयोध्या-नरेश दशरथ के पुत्र के रूप में श्री राम का अवतार भी हो चुका है। तू जल्दी ही बड़ा होजा। श्री राम की सहायता करने के लिए बल और पौरुष की आवश्यकता है। तू यथाशीघ्र बलवान और पराक्रमी हो जा!'

'माँ! मुझमें शक्ति की कमी कहाँ है?' हनुमान जी रात्रि में शय्या से कूद पड़ते और अपना भुजदण्ड दिखाकर माँ के सम्मुख अमित शक्तिशाली होने का प्रमाण देने लगते। माता अञ्जना हँसने लगतीं और फिर अपने प्यारे बालक हनुमान जी को अंक में लेकर थपकी देने तथा मधुर स्वर से प्रभु-स्तवन सुनाती हुई सुलाने लगतीं। हनुमान जी माता अञ्जना के वक्ष में चिपक कर सुख पूर्वक सो जाते।

सहज अनुराग से हनुमान जी बार-बार श्री राम कथा श्रवण करते। बार-बार श्री राम-कथा के श्रवण करने से बार-बार भगवान श्री राम का स्मरण और चिन्तन करते; फलतः उनका श्री राम-स्मरण उत्तरोत्तर गाढ़ होता गया। धीरे-धीरे

उनका अधिकांश समय श्री राम के ध्यान और स्मरण में ही व्यतीत होने लगा। वे कभी अरण्य में, कभी पर्वत की गुफा में, कभी सरिता के तट पर और कभी सघन कुञ्ज में ध्यानस्थ बैठ जाते। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होता रहता।

इस प्रकार ध्यान की तन्मयता के कारण उन्हें क्षुधा और तृषा का भी ज्ञान नहीं रहता। माता अञ्जना मध्याह्न और सायंकाल अपने हृदय-खण्ड हनुमान जी को ढूढ़ने निकलतीं। वे जानती थीं—मेरा पुत्र कहां होगा। वे वन, पर्वत, सरिता, निर्झर एवं अरण्य में घूम-घूम कर हनुमान जी को ढूंढकर लातीं, तब कहीं माता के आग्रह से उनके मुँह में ग्रास पहुंचता और यह क्रम प्रतिदिन चलने लगा। हनुमान जी अपने आराध्य के प्रेम में इतने तल्लीन रहने लगे कि उन्हें अपने शरीर की सुध भी कम रहती। उनके मुह से 'राम-राम' केवल 'राम-राम' का ही जप होता रहता।

सूर्य देव से शिक्षा-प्राप्ति

माता अञ्जना अपने पुत्र की मानसिक स्थिति देखकर कभी-कभी उदास हो जातीं और वानरराज केसरी तो प्रायः चिन्तित रहा करते। हनुमान जी की आयु भी विद्याध्ययन के योग्य हो गयी थी। माता-पिता ने सोचा—'अब इसे गुरु के पास विद्या-प्राप्ति के लिए भेजना चाहिये। कदाचित् इसी हेतु से इसकी दशा परिवर्तित हो जाय।' यद्यपि वे अपने ज्ञानमूर्ति पुत्रकी विद्या-बुद्धि एवं बल-पौरुष तथा ब्रह्मादि देवताओं द्वारा प्रदत्त अमोघ वरदान से भी पूर्णतया परिचित थे; किन्तु वे यह भी जानते थे कि सामान्यजन महापुरुषों का अनुकरण करते हैं और समाज में अव्यवस्था उत्पन्न न हो जाय, इस कारण

महापुरुष स्वतन्त्र आचरण नहीं करते। वे सदा शास्त्रों की मर्यादा का ध्यान रखते हुए नियमानुकूल व्यवहार करते हैं। इसी कारण जब-जब दयाधाम प्रभु भूतल पर अवतरित होते हैं, वे सर्वज्ञान-सम्पन्न होने पर भी विद्या-प्राप्ति के लिए गुरु-गृह जाते हैं। वहाँ गुरु की सर्वविध सेवा कर अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक उनसे विद्योपार्जन करते हैं। सच तो यह है कि गुरु को सेवा से संतुष्ट कर अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति पूर्वक प्राप्त की हुई विद्या ही फलवती होती है अतएव माता अञ्जना और कपीश्वर केसरी ने हनुमान जी को शिक्षा-प्राप्ति के लिए गुरु-गृह भेजने का निश्चय किया।

माता-पिता ने अत्यन्त उल्लास पूर्वक हनुमान जी का उपयन संस्कार कराया और फिर उन्हें विद्या-प्राप्ति के लिये गुरु के चरणो मे जाने की आज्ञा प्रदान की; किन्तु वे किस सर्वगुण-सम्पन्न आदर्श गुरु के समीप जायें। माता अञ्जना ने अतिशय स्नेह से कहा -'बेटा ! सर्वशास्त्रमर्मज्ञ समस्त लोकों के साक्षी भगवान् सूर्यदेव है। वे तुम्हें समय पर विद्याध्ययन कराने का आश्वासन भी दे चुके है। अतएव तुम उन्हीं के समीप जाकर श्रद्धा-भक्ति पूर्वक शिक्षा ग्रहण करो।'

कौपीन-कछनी काछे, मूंजका यज्ञोपवीत धारण किये, पलाशदण्ड एवं मृगचर्म लिये ब्रह्मचारी हनुमानजी ने भगवान सूर्य की ओर देखा और फिर विचार करने लगे। माता अंजना ऋषियों के शाप से अवगत थीं ही; उन्होने तुरन्त कहा— 'अरे बेटा ! तेरे लिये सूर्य देव कितनी दूर हैं। तेरी शक्ति की सीमा नही। अरे ! ये तो वे सूर्यदेव हैं, जिन्हें अरुण-फल समझ कर तू बचपन में उछलकर निगलने पहुँच गया था। सूर्य के साथ तू क्रीड़ा कर चुका है। तेरे भय से राहु प्राण लेकर इन्द्र

के पास भागा था और तेरे भय से सुरेन्द्र भी सहम गये थे। बेटा! ऐसा कोई कार्य नहीं, जो तू न कर सके। तेरे लिये असम्भव कुछ नहीं। तू जा और भगवान सविता से सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर। तेरा कल्याण सुनिश्चित है।'

फिर क्या था? आञ्जनेय ने माता-पिता के चरणों में प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। दूसरे ही क्षण वे आकाश में उछले तो सामने सूर्यदेव के सारथि अरुण मिले। हनुमान जी ने पिता का नाम लेकर अपना परिचय दिया और उन्होंने अंशुमाली को दिखला दिया।

अंजना नन्दन ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भगवान भुवन-भास्कर के चरणो मे प्रणाम किया। सरलता की मूर्ति, सर्वथा निश्छल-हृदय, विनम्र पवनकुमार को बद्धांजलि खड़े देखकर सूर्यदेव ने पूछा—'बेटा! यहाँ कैसे?'

हनुमान जी ने अत्यन्त नम्र वाणी में उत्तर दिया 'प्रभो! मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार हो जाने पर माता ने मुझे आपके चरणों मे विद्याध्ययन करने के लिए भेजा है। आप कृपा पूर्वक ज्ञान प्रदान करें।'

आदित्य बोले—'बेटा! देख लो, मेरी बड़ी विचित्र स्थिति है। मुझे अहर्निश रथ पर दौड़ते रहना पड़ता है। ये अरुणजी रथ का वेग कम करना नहीं जानते। ये क्षुधा-पिपासा और निद्रा को त्यागकर अनवरत रूप से रथ हांकते ही रहते है। इस विषय मे पितामह से कुछ कहने का अधिकार भी मुझे नहीं। रथ से उतरना भी मेरे लिए सम्भव नही। ऐसी दशा में मै तुम्हे शास्त्र का अध्ययन कैसे कराऊं? तुम्हीं सोचकर कहो, क्या किया जाय। तुम्हारे-जैसे आदर्श बालक को शिष्य के रूपमें स्वीकार करने में मुझे प्रसन्नता ही होगी।'

भगवान दिवाकर ने टालने का प्रयत्न किया, किन्तु समीरात्मज को इसमें किसी प्रकार की कठिनाई की कल्पना भी नहीं हुई। उन्होने उसी विनम्रता से कहा—'प्रभो ! वेग पूर्वक रथ के चलने से मेरे अध्ययन मे क्या बाधा पड़ेगी ? हाँ, आपको किसी प्रकार की असुविधा नहीं होनी चाहिए। मै आपके सम्मुख बैठ जाऊँगा और रथ के वेग के साथ ही आगे बढता रहूँगा।'

मारुतात्मज भगवान तिमिरारि की ओर मुख करके उनके आगे-आगे स्वाभाविक रूप मे चल रहे थे।

सूर्यनारायण को इसमे तनिक भी आश्चर्य नही हुआ। वे समीर कुमार की शक्ति से परिचित थे। वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि ये स्वय ज्ञानिनामग्रगण्य हैं; किन्तु शास्त्र की मर्यादा का पालन करने हेतु एवं मुझे यश प्रदान करने के लिए ही मुझसे विद्या प्राप्त करना चाहते हैं।'

बस, सूर्य देव वेदादि शास्त्रों एवं समस्त विद्याओ के अङ्गोपाङ्ग एवं उनके रहस्य जितनी शीघ्रता से बोल सकते थे, बोलते जाते थे। हनुमान जी शान्त भाव से उन्हें सुनते जा रहे थे। प्रश्न और शंका तथा उत्तर और समाधान की आवश्यकता ही नही थी। आदित्यनारायण ने हनुमान जी को वर्ष-दो-वर्ष या दो-चार मास मे नहीं, कुछ ही दिनो मे समस्त वेदादि शास्त्र, उपशास्त्र एवं विद्याएँ सुना दी। हनुमानजी में तो स्वतः सारी विद्याएँ निवास करती थी। सविधि विद्याध्ययन हो गया। सबमे वे पारंगत हो गये।

अत्यन्त भक्ति पूर्वक गुरु-चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर अजना नन्दन ने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की—'प्रभो ! गुरु-दक्षिणा के रूप मे आप अपना अभीष्ट व्यक्त करें।'

सर्वथा निष्काम सूर्यदेव ने उत्तर दिया 'मुझे तो कुछ नहीं चाहिए, किन्तु यदि तुम मेरे अंश से उत्पन्न कपिराज बाली के छोटे भाई सुग्रीव की रक्षा का वचन दे सको तो मुझे प्रसन्नता होगी।'

'आज्ञा शिरोधार्य है।' अनिलात्मज ने गुरु के सम्मुख प्रतिज्ञा की—'मेरे रहते सुग्रीव का बाल भी बाँका नहीं हो सकेगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।'

'तुम्हारा सर्वविध मंगल हो!' भगवान् सूर्यदेव ने आशीर्वाद दिया और केसरी-किशोर गुरुदेव के चरणों मे पुन: साष्टांग लेट गए।

परम विद्वान् पवन कुमार ने गन्धमादन पर लौट कर अपने माता-पिता के चरणो पर मस्तक रखा। माता-पिता के हर्ष की सीमा न थी उस दिन उनके यहाँ ऐसा अद्भुत उत्सव मनाया गया कि गन्धमादन पर हर्ष और उल्लास के समारोह का इतना सुन्दर और विशद आयोजन इसके पूर्व कभी किसी ने देखा नही था। सम्पूर्ण कपि-समुदाय आनन्द-विभोर हो गया। सबने प्राण-प्रिय अजना नन्दन को अपने अन्तर्हृदय का आशीर्वाद प्रदान किया।

शिशु श्री राम के साथ

कर्पूरगौर शिव और नील-कलेवर श्री राम मे अनन्य प्रीति है सच तो यह है, भगवान् श्री राम और महेश्वर तत्त्वत: एक ही है, इनमे भेद नही। इसी कारण 'जो गोविन्द को नमस्कार करते है, वे शकर को भी नमस्कार करते है एव जो भक्ति पूर्वक श्री हरि की अर्चना करते है, वे वृषभध्वज की भी पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष से द्वेष करते है, वे जनार्दन से

भी द्वेष करते हैं एवं जो रुद्र को नहीं जानते जिन्हें रुद्र का स्वरूप विदित नहीं हे, वे केशव को भी नही जानते।

भगवान शंकर ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है—'जो इन अव्यक्त विष्णु को और मुझ महेश्वर देव को एक सा देखते है उनका पुनर्जन्म नहीं होता।' किन्तु लीला के लिए वे दोनों आशुतोष शिव एवं मुनि मनरञ्जन श्री राम के रूप में प्रकट होते हैं।

पाप-ताप-निवारण, धर्म-संस्थापन एवं प्राणियों के अशेष मङ्गल के लिए जब-जब भगवान श्री राम धरती पर अवतरित होते हैं, तब-तब सर्वलोक महेश्वर शिव भी अपने प्रियतम श्री राम की मुनिमन मोहिनी मधुर मंगलमयी लीला के दर्शनार्थ धरणी पर उपस्थित हो जाते हैं। वे अपने एक अंश से अपने प्राणप्रिय श्री राम की लीला में सहयोग करते है, पर दूसरे रूप में उनकी भुवनपावनी लीला के दर्शन कर मन-ही-मन मुदित भी होते रहते हैं। उस समय उनके आनन्द की सीमा नहीं रहती।

निखिल भुवन-पावन भगवान् श्री राम महाभागा कौशल्या के सम्मुख प्रकट हुए और अवध की गलियों में उमानाथ लगे घूमने। वे अयोध्यापति दशरथ के राज द्वार पर कभी प्रभु-गुण गायक साधु के रूप में तो कभी भिक्षा प्राप्त करने के लिये विरक्त महात्मा के वेष में दर्शन देते। कभी परम प्रभु के अवतारों की मंगलमयी कथा सुनाने प्रकाण्ड विद्वान् के रूप मे राज-सदन पधारते तो कभी त्रिकालदर्शी दैवज्ञ बनकर राजा दशरथ के कमल नयन शिशु का फलादेश बताने पहुँच जाते। इस प्रकार वे किसी न किसी बहाने घूम-फिरकर श्रीराम के समीप जाते ही रहते। भगवान् शंकर कभी अपने आराध्य को अंक में उठा लेते,

कभी हस्त रेखा देखने के लिए उनका कोमलतम दिव्य हस्त-पद्‌म सहलाने और कभी अपनी जटाओं से उनके नन्हे-नन्हे कमल-सरीखे लाल लाल तलवे झाड़ते तो कभी उन देव दुर्लभ सुकोमल अरुणोत्पल चरणों को अपने विशाल नेत्रों से स्पर्श कर परमानन्द में निमग्न हो जाते। धीरे-२ कौसल्यानन्दन राजद्वार तक आने लगे।

एक बार की बात है-पार्वतीवल्लभ मदारी के वेष में डमरू बजाते राज-द्वार पर उपस्थित हुए। उनके साथ नाचने वाला एक अत्यन्त सुन्दर बंदर था। मदारी के साथ अवध के बालकों का समुदाय लगा हुआ था।

डमरू बजने लगा और कुछ ही देर में श्री राम सहित चारों भाई राजद्वार पर आ पहुँचे। मदारी ने डमरू बजाया और बंदर ने दोनों हाथ जोड़ लिए। भ्राताओं सहित राघवेन्द्र हँस पड़े।

मदारी जैसे निहाल हो गया। डमरू और जोर से बजा। बंदर ने नाचना आरम्भ किया। वह ठुमुक ठुमुककर नाचने लगा।

भगवान् वृषभध्वज अपने एक अंश से अपने प्राणाराध्य के सम्मुख नाच रहे थे और अपने दूसरे अंश से स्वयं ही नचा रहे थे। नाचने और नचाने वाले आप ही थे श्रीरामचरणानुरागी पार्वतीवल्लभ और बंदर के नाच से मुग्ध होकर बार-बार ताली बजानेवाले थे--सम्पूर्ण सृष्टि को नट-मर्कट की भाँति नचाने वाले अखिलभुवनपति कौसल्या कुमार भगवान श्रीराम!

अन्त में भगवान् श्रीराम प्रसन्न हो गए और मचल उठे--'मुझे यह बंदर चाहिए।'

चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम की कामना

कैसे अपूर्ण रहती। मदारी बंदर का मूल्य चाहे जो ले, पर बंदर तो कौसल्या किशोर के पास ही रहेगा। मदारी को भी तो यही अभीष्ट था। इसी उद्देश्य से अपने प्रभु के चरणों में समर्पित होने के लिये ही तो वह राजद्वार पर आया था। नवनीरद वपु श्रीराम ने अपने कर-कमलों से बंदर को ग्रहण किया--युग-२ की लालसा पूर्ण हुई बंदर की। वह नाचउठा—थिरकथिरककर नाचने लगा। अब तक भोलेनाथ बंदर के रूप में अपने को नचा रहे थे; अब वे स्वयं नाच रहे थे और उन्हें नचाने वाले थे मुनि-मन मानस मराल दशरथ कुमार! बंदर के सुख, सौभाग्य और आनन्द की सीमा न थी। वह विविध प्रकार के मनमोहक हाव भाव प्रदर्शित करता हुआ अपने आराध्य के सम्मुख नृत्य करने में तन्मय था; उधर मदारी अदृश्य हो गया। पता नहीं, वह कैलास शिखर पर चला गया या अपने परम प्रभु की सुखद लीला के दर्शनार्थ अपने दूसरे रूप में प्रविष्ट हो गया।

इस प्रकार हनुमान जी ने अपने स्वामी श्री राम के समीप रहने का अवसर प्राप्त कर लिया। श्रीराम हनुमान जी को अतिशय प्यार करते। वे हनुमान जी के समीप बैठते, उनके साथ खेलते, उनके सुवर्ण तुल्य अंगों पर अपने कर कमल फेरते कभी उन्हें नाचने के लिए आज्ञा देते तो कभी दौड़कर कोई वस्तु मँगवाते। हनुमान जी अपने प्रभु की प्रत्येक आज्ञा का अत्यन्त आदर, उत्साह एवं प्रसन्नतापूर्वक पालन करते। वे प्रत्येक रीति से भगवान् श्रीराम को प्रसन्न करते। भगवान् श्री राम को जैसे सुख मिले, उनका जैसे मनोरंजन हो, वे वही करते।

इस प्रकार कई वर्षों का समय क्षणार्ध के समान व्यतीत हो गया। महर्षि विश्वामित्र अयोध्या पधारे और जब उनके साथ श्रीराम के जाने का अवसर आया तो उन्होंने हनुमानजी को

एकान्त मे बुलाकर कहा—'मेरे अन्तरंग सखा हनुमान ! मेरे धराधाम पर अवतरित होने का प्रमुख कार्य अब प्रारम्भ होने वाला है। लंकाधिपति रावण की अनीति एवं अनाचार से पृथ्वी विकल हो उठी है। अब मै उसका वध कर पृथ्वी पर धर्म की स्थापना करूंगा। मेरे इस कार्य मे तुम्हारी सहायता अपेक्षित होगी। दशानन ने महाबली बाली को मिला रखा है और वह अपने अनुज सुग्रीव के रक्त का प्यासा है। भयाकान्त सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर निवास कर रहे है। अतएव तुम ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर सुग्रीव मे मैत्री कर लो। मै अपने पड़ोस मे बसने वाले मारीच, सुबाहु और ताडका का उद्धार कर कुछ ही दिनो मे दण्डकारण्य में खर–दूषण, त्रिशिरा और शूर्पनखा जैसे भयानक कण्टको को दूर करता हुआ ऋष्यमूक की ओर आऊँगा वहाँ तुम मुझसे सुग्रीव की मैत्री स्थापित करवाकर वानर भालुओं के द्वारा मेरे अवतार्य कार्य मे सहायता करना।'

हनुमानजी अपने प्रभु से पृथक होना नहीं चाहते थे, किंतु प्रभु की आज्ञा का पालन ही उनके लिए सर्वोपरि कर्तव्य था। उन्होंने अपने प्राणाराध्य के चरणो में प्रणाम किया और उनके मगलमय कल्याणमय मधुर नामो का मन ही मन जप करते हुए ऋष्यमूक के लिये प्रस्थित हो गये।

सुग्रीव-सचिव

ऋक्षरजा वानर के दो पुत्र थे—बाली और सुग्रीव। पिता अपने दोनो पुत्रो को समान रूप से प्यार करते थे। दोनो बालक अत्यन्त धीर, वीर, बलवान् बुद्धिमान एव सुन्दर तो थे ही, दोनो मे परस्पर अतिशय प्रीति थी। बाली सुग्रीव को प्राणतुल्य चाहते और सुग्रीव बाली के चरणो मे पिता की भाँति श्रद्धा

रखते। दोनों भाई भोजन, शयन, क्रीड़ा, आखेट आदि साथ ही करते–प्रायः सदा साथ रहते।

पिता के दिवंगत होने पर मन्त्रियों ने ज्येष्ठ होने के कारण बाली को वानर समुदाय के राज्यपद पर अभिषिक्त किया। वे समस्त वानर जाति के प्राणाधिक प्रिय थे और अपनी प्रजा को भी पुत्रवत् प्यार करते। इस प्रकार बाली किष्किन्धा के विशाल राज्य का शासन करते और सुग्रीव श्रद्धा भक्ति के कारण अत्यन्त विनीत भाव से दास की भांति अपने अग्रज की सेवा में प्रस्तुत रहते।

उधर कपिराज केसरी अपनी सहधर्मिणी के साथ अपने प्राण प्रिय पुत्र हनुमान की विरक्ति एवं एकान्तप्रियता से अत्यधिक चिन्तित थे। वे कपियों के यूथपति थे और ऋक्षरजा के शासन में रहते थे। इस कारण उन्होंने हनुमान जी को राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये पम्पापुर भेजने का निश्चय किया। मातृ-पितृभक्त हनुमान जी ने माता-पिता का आदेश प्राप्त होते ही उनके चरणों में प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद लेकर वे पम्पापुर के लिये चल पड़े।

पवनकुमार के पम्पापुर में आगमन का समाचार प्राप्त होते ही सुग्रीव ने आगे जाकर उनका स्वागत किया। उनके देवदुर्लभ गुणों से परिचित होने के कारण बाली ने भी उनका अत्यधिक सम्मान किया और उन्हें बड़े ही आदर से अपने पास रखा। हनुमान जी विद्वान्, बुद्धिमान्, बलवान्, धैर्यवान, सदाचारपरायण एवं सरलता की सजीव मूर्ति थे। इस कारण बाली उन्हें अपना अन्तरंग बनाना चाहते थे। किंतु विद्यावारिधि केसरीकुमार को अपनी गुरु-दक्षिणा की स्मृति सदा बनी रहती। अतएव वे सुग्रीव के अभिन्न मित्र बन गये। सुग्रीव के हृदय

में भी इनके लिये अतिशय प्रीति थी।

जिस समय वज्रांग हनुमान पम्पापुर पहुँचे, उस समय उस क्षेत्र के चारों ओर राक्षसों के राज्य थे। एक ओर शक्तिशाली खर-दूषणादि, दूसरी ओर विराध और तीसरी ओर देव-द्विजद्रोही वीरवर दशानन का निष्कंटक राज्य था। वानरराज बाली अन्यतम वीर योद्धा थे; इस कारण असुर उनसे भयभीत रहा करते। वे उनके राज्य की सीमा में उपद्रव करने का साहस नहीं कर पाते; किंतु राक्षसों की दुष्टता से अवगत होने के कारण बाली निश्चिन्त होकर दुष्ट दलन के लिये कहीं दूर जा भी नही सकते थे। परंतु केसरी किशोर के पम्पापुर में प्रवेश करते ही उनकी यह चिन्ता प्रायः दूर हो गयी। माता अंजना ने अपने अलौकिक पुत्र को राक्षसों की अनेक कथायें सुनायी थी, इस कारण हनुमान जी के मन में बाल्यकाल से ही राक्षसों के प्रति रोष उत्पन्न हो गया था अतः उनकी दृष्टि पड़ जाने पर किसी राक्षस का बच निकलना सम्भव नहीं था। वे असुरों को खोज-खोजकर उनका प्राण हरण करते और असुर उनके नाम से ही कॉपते थे। बाली हनुमान जी की सरलता और साधुता के साथ उनकी अनुपम वीरता, धीरता और पराक्रम को देखकर चकित होते रहते।

वीरवर बाली और सुग्रीव की आदर्श प्रीति कथा सर्वत्र प्रख्यात थी। वे दोनों प्रत्येक रीति से सुखी थे, परन्तु क्रूर नियति की निर्दयता की सीमा नहीं। उसने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे दोनो अपने सहज प्रेम को भूलकर एक-दूसरे के रक्त-पिपासु बन गये।

उस समय मय का पुत्र मायावी दानव अपनी शक्ति एवं वीरता के गर्व से उन्मत्त होकर प्रतिभट ढूंढ़ता फिरता था।

एक दिन की बात है कि अर्धरात्रि के समय वह बलवान् असुर किष्किन्धा के द्वार पर जाकर बाली को ललकारते हुए भयानक गर्जना करने लगा।

अप्रतिम वीर बाली शत्रु का आह्वान सुनते ही उसका मुख मर्दन करने केलिये सदैव प्रस्तुत रहते थे। वे प्रगाढ़ निद्रा में थे, किंतु असुर की ललकार सुनते ही शैय्या से उठकर तुरंत दौड़ पड़े। अग्रज को शत्रु के सम्मुख जाते देखकर सुग्रीव उनके पीछे दौड़े। असुर ने जब बाली को और उनके पीछे सुग्रीव को भी आते देखा तो वह भयभीत होकर तीव्र गति से भागा। दोनों भाईयों ने भी उसी गति से उसका पीछा किया।

अत्यधिक दूर जाने पर उसे घास-फूस से ढ़का हुआ एक विशाल विवर मिला। असुर उसी विवर में प्रविष्ट हो गया। क्रोधोन्मत्त बाली सुग्रीव को वहीं द्वार पर सावधानी के साथ खड़ा रहने का आदेश देकर स्वयं विवर में घुस गये।

बाली ने अपने भाई सुग्रीव को पन्द्रह दिनों तक विवरद्वार पर सावधानी पूर्वक प्रतीक्षा करने का आदेश दिया था, किंतु सुग्रीव एक मास तक वहाँ सजग होकर डटे रहे। वे विवर के द्वार पर कान लगाकर कुछ सुनने का प्रयत्न करते, पर बाली के स्थान पर राक्षसों का कोलाहल सुनायी पड़ता था। सुग्रीव अपने अग्रज के लिये मन-ही-मन चिन्तित थे कि उनके सम्मुख विवर से फेन सहित रक्त की धारा निकली। भ्रातृ-स्नेह के कारण सुग्रीव व्याकुल हो गये। उनके मन में बाली के लिये शङ्का होने लगी।

बहुत ध्यान देने पर जब उन्हें बाली का कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ा, तब उन्होंने सोचा—'इस विशाल विवर में असुरों ने मिलकर मेरे प्राणाधिक प्रिय अग्रज को मार डाला है और अब

वे बाहर आकर मुझे भी नहीं छोड़ेंगे।'

अत्यन्त दुःखी सुग्रीव ने अपनी रक्षा के लिये पर्वत-तुल्य एक विशाल चट्टान से विवर का मुख बंद कर दिया और उदास मन बाली को जलाञ्जलि देकर वे किष्किन्धा लौट आये।

सुग्रीव अपने अग्रज की मृत्यु का संवाद अप्रकट रखना चाहते थे, किंतु चतुर मन्त्रियों ने युवराज अंगद को छोटा देखकर सुग्रीव को राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। वे नीतिपूर्वक राज्य के दायित्व का निर्वाह करने लगे।

उधर वीरवर बाली असुर के समस्त साथियों का वधकर राजधानी लौटे। जब उन्होंने अनुज सुग्रीव को अपने स्थान पर राज्य-पदका उपभोग करते देखा, तब उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने सोचा—'इसी स्वार्थी भाई ने मेरी स्त्री और राज्य का सुख प्राप्त करने के लिये विवर-द्वार पर चट्टान रख दी थी, जिससे मैं बाहर न निकल सकूं और वहीं मेरा अन्त हो जाय।' यह विचार मन में आते ही प्रज्वलित अग्नि में घृताहुति पड गई। बाली क्रोधोन्मत्त हो गये।

सुग्रीव ने क्रोधारुण-लोचन अपने बड़े भाई को देखते ही उनका राज्य वापस कर दिया और वे उन्हें वस्तु-स्थिति समझाने का प्रयत्न करने लगे; किंतु अतिशय क्रुद्ध बाली सुग्रीव के कट्टर शत्रु हो गये थे। उन्होंने राज्यसहित सुग्रीव-पत्नी रूमा को अपने अधिकार में कर लिया। वे सुग्रीव का वध भी करना चाहते थे। सुग्रीव प्राण रक्षा के लिये मन्त्रियों सहित भाग खड़े हुए।

भयभीत सुग्रीव भागे जा रहे थे और बाली उन्हें मार डालने के लिए उनके पीछे लगे थे। नद-नदियों, वनों, पर्वतों, समुद्रों एवं नगरों को छोड़ते सुग्रीव दौड़े जा रहे थे। कहीं कुछ

दिन भी रुकने का साहस उनमें न रह गया था—वाली जो प्राण-घातक शत्रु की तरह पीछे लगे थे।

भागते-दौड़ते सुग्रीव हिमालय, मेरु और समुद्र तक जाकर भी बाली से अपना पीछा न छुड़ा सके; उन्हें कहीं शरण नहीं मिली। तब उनके साथ निरन्तर छाया की भाँति रहने वाले ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमान जी को दुन्दुभि-वध की घटना स्मरण हो आयी।

उन्होंने भयभीत सुग्रीव से कहा–'राजन्! मुझे महामुनि मतङ्ग द्वारा वीरवर वाली को दिये शाप की स्मृति हो आयी है कुपित होकर महामुनि ने शाप दिया था

'यदि वाली इस आश्रम में प्रवेश करेगा तो उसके मस्तक के सैंकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। अतः वहीं निवास करना हम लोगों के लिये सुखद और निर्भय होगा।'

सुग्रीव तुरंत अपने प्राण प्रिय सचिव हनुमान जी के परामर्श के अनुसार ऋष्यमूक पर्वत पर मतङ्गाश्रम में चले गए। मतङ्ग-मुनि के शाप के भय से बाली वहाँ नहीं जा सकते थे; विवश होकर वे लौट गये।

राजनीति-विशारद कपिराज बाली पवन कुमार को अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने साथ रखना चाहते थे; किंतु आंजनेय सुग्रीव के सच्चे शुभचिन्तक थे। सुख के दिनों में तो सभी घेरे रहते हैं उस समय क्षुद्र चाटुकारों का अभाव नहीं रहता, किंतु आपत्ति-काल में वे साथ छोड़कर चले जाते हैं। सच्चे सुहृद् और सच्चे सेवक ही विपत्ति में भी अपनी प्रीति एवम् भक्ति से विचलित नहीं होते।

अञ्जना नन्दन सुख के दिनों में सुग्रीव के साथ रह चुके थे, वे भला विपत्ति में उन्हें कैसे छोड़ देते? वे सदा सुग्रीव के

साथ रहते, उनकी सुख सुविधा का ध्यान रखते और उसकी व्यवस्था करते, उन्हें सत्परामर्श देते और धैर्य बँधाते रहते। महावीर हनुमान जी के साथ एवं उनके सुनिश्चित आश्वासन पर सुदृढ़ विश्वास के कारण सुग्रीव आपदा में भी सुखानुभूति करते रहते थे। पवनकुमार उन्हें अपने मन्त्री ही नहीं, अन्यतम मित्र, सखा, सुहृद् और सहोदर भ्रातातुल्य प्रतीत होते थे।

बाली के द्वारा सर्वस्व छीन लिये जाने पर भी बहिष्कृत सुग्रीव अपने अनुपम सचिव हनुमान जी के कारण ऋष्यमूक-पर्वत पर राजा की भाँति सुखपूर्वक रहते थे।

ऋष्यमूक पर्वत पर शाप के कारण स्वयं बाली तो आ नहीं सकता था, किंतु अपने दूसरे वीरों को भेजकर वह सुग्रीव को परवा डालने का प्रयत्न कर सकता था, इसे सुग्रीव भली-भाँति जानते थे; किंतु हनुमान जी की शक्ति, पराक्रम एवं विलक्षण बुद्धि पर सुदृढ़ विश्वास के कारण वे कुछ निश्चिन्त रहते। महावीर हनुमान सुग्रीव की सेवा एवं उनकी आज्ञा के पालन में सदा तत्पर रहते। सर्वगुणसम्पन्न पवन-कुमार को अपने सखा एवं सचिव के रूप मे प्राप्त कर सुग्रीव सदा ही अपने भाग्य की सराहना किया करते।

प्राणाराध्य के पाद-पद्मों में

पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये दशरथनन्दन श्री राम अपनी सती सहधर्मिणी जनकनन्दिनी और अनुज लक्ष्मण के साथ वन में गये। वे चित्रकूट और दण्डकारण्य में तेरह वर्षों तक ऋषियों-महर्षियों एवं समस्त प्राणियों को कृतार्थ करते हुये विचरण करते रहे। असुर जहाँ कहीं तपस्वी मुनियों को कष्ट पहुँचाते, भगवान् श्री राम वहीं असुरों का वध कर

मुनियों का जीवन निरापद कर देते।

चौदहवें वर्ष में वे पञ्चवटी में एक सुन्दर पर्णकुटी बनाकर रहने लगे। एक दिन लंकाधिपति रावण की प्रेरणा से मारीच काञ्चन मृग के वेष में उनकी कुटी के सामने घूमने लगा। जनकनन्दिनी उस अदभुत मृग को देखकर मुग्ध हो गयी उन्होंने उस सुवर्ण मृग को लाने के लिये भगवान् श्री राम से प्रार्थना की। भगवान् श्री राम सुवर्ण-मृग के पीछे दौड़े और उधर रावण ने छल से सीता का हरण कर लिया। उसने भगवती सीता को ले जाकर लंका की अशोक-वाटिका में रख दिया।

जनकदुलारी को ढूंढ़ते हुए सानुज श्री राम विराध, कवन्ध आदि का वध करते ऋष्यमूक पर्वत की ओर जा निकले।

सुग्रीव के मन में वाली के भय के कारण सदा शङ्का बनी रहती थी। उन्होंने मन्त्रियों के साथ जब गिरि-शिखर से आजानुबाहु, धनुष-बाणधारी, विशाल नेत्रों वाले तथा देवकुमारों की तरह तेजस्वी दोनों वीर भाइयों को देखा तो वे भय से काँप गये।

व्याकुल होकर सुग्रीव ने हनुमान जी से कहा—'इन दोनों वीरों को देखकर मेरा मन भयाक्रान्त हो रहा है। सम्भव है, मेरे प्राणों के शत्रु बाली ने मुझे मार डालने के लिये इन्हें भेजा हो। राजाओं के मित्र अधिक होते है, अतएव इन पर विश्वास करना उचित नहीं। मनुष्य को छद्म वेष में विचरने वाले शत्रुओं को विशेष रूप से पहचानने की चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि वे दूसरों पर अपना विश्वास जमा लेते हैं, परन्तु स्वयं किसी का विश्वास नहीं करते और अवसर पाते ही उन विश्वासी पुरुषों पर ही प्रहार कर बैठते हैं। बाली इसमें बड़ा पटु है। अतएव

कपिश्रेष्ठ ! तुम सामान्य व्यक्ति की भाँति इनके समीप जाकर इनका तथा इनके मनोभावों का परिचय प्राप्त कर लो। यदि इन्हे बाली ने भेजा हो तो तुम वहीं से संकेत कर देना; मैं मन्त्रियो सहित इस पर्वत से तुरंत भागकर अन्यत्र शरण लूंगा।'

पवनकुमार अपने प्राणधन महाधनुर्धर श्याम-गौर श्रीराम-लक्ष्मण को पहचान नही रहे थे, किन्तु उनके बांये अंग फड़क रहे थे। उनके नेत्रो मे प्रेमाश्रु छलक आये और हृदय बरबस ही उनकी ओर आकृष्ट हो रहा था।

वानरश्रेष्ठ सुग्रीव का उद्देश्य समझकर पवनकुमार ऋष्यमूक पर्वत से उछलते हुए चले। मार्ग मे उन्होंने ब्राह्मण का वेष धारण कर लिया। अभूतपूर्व एवं अद्भुतपूर्व सौन्दर्य से युक्त श्री राम-लक्ष्मण के दर्शन कर हनुमानजी की विचित्र दशा हो गई। उनका मस्तक स्वत: उनके चरणो मे झुक गया। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर मन को अत्यन्त प्रिय लगने वाली विनम्र वाणी मे पूछा 'वीरवर ! श्याम और गौर वर्ण वाले अत्यन्त सुन्दर पुरुष आप लोग कौन हैं ? निश्चय ही आप लोग वीरपुंगव क्षत्रियकुमार है। किन्तु आप अत्यन्त कोमल है और यहाँ पर्वत और वन अत्यन्त भयानक है; सर्वत्र व्याघ्रादि हिंस्र पशुओं का भय है। मार्ग कंकडो, पत्थरो एवं कुश-कटको से भरा पड़ा है। आपके चरण-कमलो के उपयुक्त यह कठोर भूमि कदापि नही है। फिर भी आप लोग किस कारण इस निर्जन वन मे विचरण कर रहे है !'

हनुमानजी ने आगे कहा 'मै आप लोगो का तेजस्वी स्वरूप देखकर चकित हो रहा हूँ। कोई साधारण क्षत्रियकुमार इतना तेजस्वी नही हो सकता। लोकोत्तर तेजोमय पुरुष आप कौन हैं ? कृपापूर्वक बता दें कि आप ब्रह्मा, विष्णु और महेश

—इन तीनों देवताओं में से कोई हैं या आप नर और नारायण है? अथवा आप निखिल सृष्टि के स्वामी स्वयं परब्रह्म परमात्मा तो नहीं हैं, जो भू-भार हरणार्थ युगल रूपों में अवतरित होकर मुझे सनाथ करने यहाँ पधारे हैं?'

बातचीत करने में कुशल हनुमान जी के चुप होते ही भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—'भाई लक्ष्मण! इनके विद्वतापूर्ण शुद्ध उच्चारण से स्पष्ट है कि ये व्याकरण-शास्त्र के पारंगत विद्वान् तो हैं ही, इन्होंने वेदों का गहन अध्ययन भी किया है। निश्चय ही इन्होंने समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है; क्योंकि ये संस्कार और क्रम से सम्पन्न, अद्भुत, अविलम्बित तथा हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली कल्याण मयी वाणी का उच्चारण करते हैं। हृदय, कण्ठ और मूर्धा—इन तीनों स्थानों द्वारा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होनेवाली इनकी इस विचित्र वाणी को सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा! वध करने के लिए तलवार उठाये हुए शत्रु का हृदय भी इस वाणी से बदल सकता है। तुम इनसे वार्ता करो।'

अग्रज का आदेश प्राप्त होते ही सुमित्रानन्दन ने ब्राह्मण वेषधारी पवनकुमार से कहा—'ब्रह्मन्! हम दोनों अयोध्या के प्रख्यात धर्मात्मा राजा दशरथ के पुत्र हैं। ये मेरे बड़े भाई हैं; इनका नाम श्रीराम है और मेरा लक्ष्मण। पिता की आज्ञा से हम चौदह वर्ष के लिए अरण्यवास करने आये हैं। यहाँ पञ्चवटी में इनकी सती पत्नी सीता को किसी राक्षस ने छल-पूर्वक हरण कर लिया है। हम लोग इस बीहड़ वन में उन्हें ही ढूंढ़ते फिर रहे हैं। आप लोग कौन है? कृपया अपना परिचय दीजिए।'

पवनकुमार सुमित्रानन्दन से युगल रूपों का परिचय तो

प्राप्त कर रहे थे, किन्तु उनका ध्यान केन्द्रित था जटा-जाल से सुशोभित नव-नीरद-वपु श्रीराम के मुखारविन्द पर। भुवन मोहन रूप जैसे उनके रोम-रोम में प्रविष्ट हो रहा था। उनके नेत्र सजल एवं अङ्ग पुलकित थे। अपने प्रभु का परिचय प्राप्त होने पर तो उन्हे अपनी सुधि भी न रही। पवनकुमार प्राणाराध्य श्रीराम के त्रैलोक्य-दुर्लभ पावन पद-पद्मों में साष्टाङ्ग पड़ गये। वे व्याकुल होकर प्रेमाश्रुओ से उन भवाब्धिपोत युगल पद्मारुण-चरणों का प्रक्षालन करने लगे।

आञ्जनेय का अश्रु-प्रवाह विराम नहीं ले रहा था। वाणी अवरुद्ध थी। धैर्यपूर्वक किसी प्रकार हाथ जोड़कर उन्होने प्रार्थना की—'दयाधाम प्रभो! मै पामर आपको पहचान नही सका—भूल गया, यह तो स्वाभाविक है, किन्तु आप अनजान बनकर यह कैसा प्रश्न कर रहे है! आप मुझे कैसे भूल गए! इन त्रैलोक्यत्राता चरण-कमलों के अतिरिक्त मेरे लिए और क्या अवलम्ब है! करुणासिन्धु! अब आप दया कीजिये। मुझे अपना लीजिये नाथ!"

'दयाधाम! करुणासिन्धु!!' निश्चय ही वे भुवन-पावन श्रीराम करुणानिधि है। उनके पावनतम पाद-पद्मों के पराग से करुणा वारिधि ही तो प्रतिक्षण उच्छलित होता रहता है; पर उन्हें छल कपट प्रिय नहीं। आवरण से उनकी झांकी सम्भव नहीं। वे परमोदार सीतावल्लभ सर्वथा निश्छल, निष्कपट, सरल हृदय देखते है और पवनकुमार उपस्थित थे ब्राह्मण वेष में। उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूप पर आवरण डाल रखा था, इस कारण कमल नयन श्रीराम उनकी ओर अपलक दृगों से देख रहे थे; पर थे वे सर्वथा मौन।

मारुतात्मज की अधीरता बढ़ती जा रही थी। अत्यधिक

आकुल चित्त से रुदन करते हुए वे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो ! मैं मोहग्रस्त, अज्ञानान्धकार में पड़ा हुआ एवं कुटिल हृदय हूं, उस पर आपने मुझे विस्मरण कर दिया, फिर मेरी क्या दशा हो ! दयामय ! अब आप दया करें।'

प्राणाराध्य प्रभु के सम्मुख अशांत चित्त से करुण प्रार्थना करते हुए हनुमानजी आत्म विस्मृत हो गए। उन्हें अपने छद्म वेष का ध्यान नहीं रहा। उनका ब्राह्मण वेष स्वतः दूर हो गया। वे अब अपने वास्तविक वानर रूप में प्रभु के चरणों पर गिरकर रुदन करते हुए प्रार्थना कर रहे थे।

करुणामय श्रीराम ने अपने अनन्य भक्त हनुमानजी को वास्तविक वानर रूप में देखा; फिर क्या देर थी। उन्होंने तत्क्षण समीर कुमार को उठाया और अपनी प्रलम्ब भुजाओं में भरकर उन्हें अपने वक्ष से सटा लिया। उस समय भगवान् और भक्त दोनों की अद्भुत दशा थी। प्रेममूर्ति भक्तवत्सल श्रीराम अपना अभयद-मङ्गलमय कर कमल हनुमानजी के मस्तक पर फेर रहे थे और वे शिशु की भाँति परम प्रभु के विशाल वक्ष से चिपके हुए सिसक रहे थे। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई थी।

अपने प्रभु श्रीराम की प्रीति का विश्वास हो जाने पर हनुमानजी ने श्री रामानुज लक्ष्मण के चरणों में प्रणाम किया। सुमित्रानन्दन ने भी उन्हें तुरन्त उठाकर हृदय से लगा लिया। इसके अनन्तर हनुमानजी ने भगवान् श्रीराम को सुग्रीव का परिचय दिया। नीति निपुण पवनकुमार ने श्रीराम के मुखारविन्द को अपलक दृगों से देखते हुए विनम्र वाणी में कहा—'प्रभो! अपने ज्येष्ठ भ्राता बाली की भयानक शत्रुता के कारण सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करते हैं। वे राज्य से

बहिष्कृत और स्त्री के वियोग में अतिशय दुःखी हैं। वे वनों पर्वतों में विपत्ति के दिन व्यतीत कर रहे हैं। यही स्थिति आपकी भी है। सुग्रीव को समर्थ सहयोगी की आवश्यकता है। यदि आप उनसे मैत्री स्थापित कर लें तो निश्चय ही सुग्रीव को बड़ी प्रसन्नता होगी और अपना राज्य तथा पत्नी प्राप्त हो जाने पर वे सीता के अन्वेषण एवं उन्हें प्राप्त कराने में बहुमूल्य सहयोग प्रदान कर सकेंगे। अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप सुग्रीव को आत्मीय बना लें।'

भगवान् श्री राम की स्वीकृति मिलते ही पवन कुमार उन युगल मूर्तियों को अपने कन्धों पर बैठाकर ऋष्यमूक के लिये चल पड़े। हनुमान जी को श्री राम-लक्ष्मण सहित अपनी ओर आते देखकर सुग्रीव को बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्री आञ्जनेय युगल मूर्तियों सहित सुग्रीव के समीप पहुँचे। सुग्रीव ने उन परम तेजस्वी कुमारों को प्रणाम किया। हनुमान जी ने सुग्रीव का भगवान् श्री राम से परिचय कराया। तदनन्तर उन्होंने प्रज्वलित अग्नि को साक्षी देकर धर्मवत्सल श्री राम एवं सुग्रीव में मैत्री स्थापित करा दी। भगवान् श्री राम एवं वानरराज सुग्रीव दोनों प्रसन्न हुए। फिर सुग्रीव अधिक पत्ते और फूलों वाली शाखा बिछाकर उस पर अत्यन्त आदरपूर्वक सीता पति श्री राम को बैठाकर स्वयं उनके साथ बैठे। हनुमान जी ने चन्दन-वृक्ष की एक पुष्पित डाली तोड़कर सुमित्रा नन्दन को बैठने के लिए दी।

हर्षोत्फुल सुग्रीव ने स्निग्ध मधुर वाणी में अपनी विस्तृत कथा सुनाते हुए भी दशरथ नन्दन से कहा 'रघुनन्दन ! बाली ने मेरी प्राणप्रिय पत्नी को मुझसे छीनकर अत्यन्त क्रूरता-पूर्वक मुझे निकाल दिया। मैं उन्हीं के त्रास और भय से उद्भ्रान्तचित्त

होकर इस पर्वत पर निवास करता हूं। आप मुझे अभय कर दीजिए।'

भगवान् श्री राम ने वचन दिया–'मित्र सुग्रीव ! मैं वाली को अपने एक ही बाण से मार डालूंगा। विश्वास करो, मेरे अमोघ बाण से उसके प्राण की रक्षा किसी प्रकार सम्भव नहीं।'

निखिल भुवनपावन भगवान् श्री रामचन्द्रजी के एक ही बाण से बाली मारे गए। त्रैलोक्यत्राता श्री राम के सम्मुख उन्होंने अपने भौतिक कलेवर का त्याग किया। पति की मृत्यु का समाचार सुनकर बाली की पत्नी तारा वहां आकर करुण क्रन्दन करने लगी। उस समय तारा को समझाते हुए परम वीतरागी हनुमानजी ने कहा–

'देवि ! जीव के द्वारा गुण-बुद्धि से अथवा दोष-बुद्धि से किये हुए जो अपने कर्म हैं, वे ही सुख-दुखरूप फलकी प्राप्ति कराने वाले होते हैं। परलोक में जाकर प्रत्येक जीव शान्तभाव से रहकर अपने शुभ और अशुभ–सभी कर्मों का फल भोगता है। तुम स्वयं शोचनीया हो, फिर दूसरे किसको शोचनीय समझकर शोक कर रही हो ? स्वयं दीन होकर किस दीन पर दया करती हो ? पानी के बुलबुले के समान इस शरीर में रहकर कौन जीव किस जीव के लिये शोचनीय है। देवि ! तुम विदुषी हो; अतः जानती ही हो कि प्राणियों के जन्म और मृत्यु का कोई निश्चित समय नहीं होता। इसलिए शुभ (परलोक के लिये सुखद) कर्म ही करना चाहिए। अधिक रोना-धोना आदि जो लौकिक कर्म (व्यवहार) है, उसे नहीं करना चाहिये।'

(पवन कुमार ने तारा को समझाते हुए यह भी कहा–)

'तुम्हारे पुत्र कुमार अङ्गद जीवित हैं। अब तुम्हे इन्हीं की ओर देखना चाहिये और इनके लिये भविष्य में जो उन्नति के साधक श्रेष्ठ कार्य हों, उनका विचार करना चाहिए।'

वाली का अन्त्येष्टि-संस्कार हुआ। श्री लक्ष्मण जी ने कपिराज सुग्रीव को किष्किन्धाधिपति के पद पर सविधि अभिषिक्त कर दिया। वाली-पुत्र अंगद युवराज हुए। सुग्रीव को धन सम्पत्ति, राज्य और पत्नी आदि सभी अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त हो गयीं। अशरणशरण श्री राम की कृपा से क्या नहीं प्राप्त होता।

सुग्रीव किष्किन्धा में रहने लगे, किंतु पिता की आज्ञा का आदर करते हुए भगवान् श्री राम ने नगर में प्रवेश नहीं किया वे चातुर्मास्य व्यतीत करने के लिये प्रस्रवण-गिरिपर चले गये।

आञ्जनेय प्रतिक्षण अपने परमाराध्य परमप्रभु श्री राम के चरणो मे ही रहना चाहते थे, किंतु सुग्रीव ने अभी-अभी राज्यपद का दायित्व ग्रहण किया था, कार्य संचालन के लिये निपुण सचिव की नितान्त आवश्यकता थी, इस कारण लोकोपकारी श्री राम ने उन्हें सुग्रीव के कार्य में सहयोग प्रदान करने की आज्ञा दी। हनुमान जी के लिये प्रभु का आदेश ही सर्वोपरि कर्त्तव्य है। वे किष्किन्धा में सुग्रीव के समीप रहने लगे।

सुग्रीव को सत्परामर्श-दान

भगवान् श्री राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ अपनी प्राणप्रिय जनकदुलारी की चिन्ता करते हुए प्रवर्षण गिरि पर वर्षा के दिन व्यतीत करने लगे,और कपिराज सुग्रीव धन-सम्पत्ति राज्य एवं अपनी पत्नी रूमा के साथ अनिन्द्य सुन्दरी तारा को भी प्राप्त कर अत्यन्त प्रमुदित थे। वे निश्चिन्त होकर राज्य के

भोगो का उपभोग करने लगे। वे राज्य सुख में इतने तन्मय हुए कि उन्हे अपने परम हितैषी सानुज श्री रघुनाथ जी की मैत्री उनका उपकार तथा उनके प्रति अपने दायित्व का ध्यान भी नही रह गया। किंतु पवनपुत्र हनुमान शास्त्र के निश्चित सिद्धांत को जानने वाले थे; कर्त्तव्याकर्त्तव्य का उन्हें यथार्थ ज्ञान था। वार्तालाप की कला में सुपटु श्री हनुमान जी सदा सजग और सावधान रहने वाले परम बुद्धिमान सचिव थे। उन्हें भगवान् श्री राम का ध्यान प्रतिक्षण बना रहता था। जगदम्बा जानकी का पता लगाने के लिये वे अतिशय व्यग्र थे।

जब हनुमान जी ने देखा कि आकाश स्वच्छ हो गया, नदियों में निर्मल जल बहने लगा, मार्ग यात्रा के योग्य हो गये, किंतु वानरराज सुग्रीव अपना प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर धर्म और अर्थ के संग्रह में उदासीन हो चले हैं, वे अभिलषित मनोरथों को प्राप्त कर स्वेच्छाचारी से हो रहे हैं, तब उन्होंने सुग्रीव के समीप जाकर सत्य, प्रिय एवं हितप्रद वचन कहे—

'राजन् ! आपने राज्य और यश प्राप्त कर लिया तथा कुल-परम्परा से आयी हुई लक्ष्मी को भी बढ़ाया, किंतु अभी मित्रों को अपनाने का कार्य शेष रह गया है, उसे आपको इस समय पूर्ण करना चाहिये। आप सदाचार-सम्पन्न और नित्य सनातन धर्म के मार्ग पर स्थित हैं, अतः मित्र के कार्य को सफल बनाने के लिये जो प्रतिज्ञा की है, उसे यथोचित रूप से पूर्ण कीजिये। शत्रुदमन ! भगवान् श्री राम हमारे परम सुहृद् हैं। उनके कार्य का समय बीता जा रहा है, अतः विदेहकुमारी सीता की खोज आरम्भ कर देनी चाहिये। राजन् ! परम बुद्धिमान् श्री राम समय का ज्ञान रखते हैं और उन्हें अपने कार्य की सिद्धि के लिये जल्दी लगी हुई है तो भी वह आपके आधीन

बने हुए हैं। संकोचवश आपसे नहीं कहते कि मेरे कार्य का समय बीत रहा है। यदि हम लोग श्री रामचन्द्र जी के कहने के पहले ही कार्य प्रारम्भ कर दें तो समय बीता हुआ नहीं जाना जायगा, किंतु यदि उन्हें उसके लिये प्रेरणा करनी पड़ी तो यही समझा जायगा कि हमने समय बिता दिया है उनके कार्य में बहुत विलम्ब कर दिया है। वानर और भालु समुदाय के स्वामी सुग्रीव ! आप शक्तिमान् और अत्यन्त पराक्रमी हैं,फिर भी दशरथ नन्दन श्री राम का प्रिय कार्य करने के लिये वानरों को आज्ञा देने में विलम्ब क्यों करते हैं ? श्री रघुनाथ जी को आपके लिये बाली के प्राण तक लेने में हिचक नहीं हुई, वे आपका बहुत बड़ा प्रिय कार्य कर चुके हैं, अतः हम लोग उनकी पत्नी विदेह कुमारी सीता का इस भूतल पर और आकाश में भी पता लगावें। देवता, दानव, गन्धर्व, असुर, मरुद्गण तथा यक्ष भी श्री राम को भय नहीं पहुँचा सकते, फिर राक्षसों की तो बिसात ही क्या है ? वानरराज ! ऐसे शक्तिशाली तथा पहले ही उपकार करने वाले भगवान् श्री राम का प्रिय कार्य आपको अपनी सारी शक्ति लगाकर करना चाहिये।'

सत्वगुण सम्पन्न वानरराज सुग्रीव श्री राम के कार्य में विलम्ब हो जाने के कारण भयग्रस्त हो गये। वे सदा ही समीर कुमार के परामर्श का आदर करते थे। प्रीतिपूर्वक कर्त्तव्य की सत्प्रेरणा से प्रसन्न होकर उन्होंने तुरंत नील नामक वीरों को आज्ञा प्रदान की 'तुम पंद्रह दिनों में मेरे समस्त उद्योगी एवं शीघ्रगामी यूथपतियों तथा समस्त वीर सैनिकों को मेरे समीप उपस्थित करने का प्रयत्न करो। यह मेरा सुनिश्चित निर्णय है कि इस अवधि के बाद यहाँ पहुँचने वाले वीर वानर को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।'

उधर वर्षा के उपरान्त शरद् का आगमन हो जाने पर भी सुग्रीव को निश्चिन्त एवं निष्क्रिय समझकर भगवान श्री राम ने क्षुब्ध होकर अपने अनुज से कहा "भाई लक्ष्मण ! वानर राज सुग्रीव ने सीता की खोज का समय निश्चित कर दिया था, किन्तु अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर दुर्बुद्धि वानर मेरी उपेक्षा कर रहा है। वह मुझे राज्य से भ्रष्ट, दीन अनाथ और शरणागत मेरा तिरस्कार कर रहा है। अतएव तुम जाकर स्पष्ट शब्दों में उससे कह दो–'जो बल पराक्रम से सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करने वाले कार्यार्थी पुरुषों को प्रतिज्ञा पूर्वक आशा देकर पीछे उसे तोड़ देता है, वह संसार के सभी पुरुषों में नीच है। जो अपने मुख से प्रतिज्ञा के रूप में निकले हुए भले या बुरे–सभी तरह के वचनों को अवश्य पालनीय समझकर सत्य की रक्षा के उद्देश्य से उनका पालन करता है, वह वीर समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ माना जाता है।

भगवान श्री राम ने दुःखी हृदय से अपने अनुज से आगे कहा–'उस दुरात्मा से कह दो, मेरे शर से मारा गया बाली जिस मार्ग से गया है, वह मार्ग बन्द नहीं हुआ है। उस समय तो अकेले बाली को ही मैंने मारा था, किंतु यदि तुमने अपने वचनका पालन नहीं किया तो मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवों सहित काल के हवाले कर दूँगा।'

अपने ज्येष्ठ भाई श्री राम के वचन सुनते ही सुमित्रानन्दन रोप में भर गये। उन्होंने प्रभु के चरणों में प्रणाम कर निवेदन किया–'विषय-भोग में आसक्त बुद्धिहीन वानर ने अग्नि देव की साक्षी में मैत्री स्थापित की थी; किन्तु स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर उसकी नीयत बदल गयी है। मैं मिथ्यावादी सुग्रीव को अभी मारकर अङ्गद को राज्याभिषिक्त करता हूँ। अब वे ही

राजा होकर वानर-वीरों के द्वारा सीता देवी का पता लगायें।'

धनुष-बाण हाथ में लिये क्रुद्ध लक्ष्मण को सुग्रीव-वध के लिये प्रस्थान करते देखकर अत्यन्त धीर एवं गम्भीर मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री राम ने उन्हें समझाते हुए कहा—'लक्ष्मण ! तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ वीर पुरुष को मित्र-वधका निषिद्ध कर्म करना उचित नहीं। (जो उत्तम विवेक के द्वारा अपने क्रोध को मार देता है, वह वीर समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ है।) वत्स ! सुग्रीव मेरा मित्र है, तुम उसे मारना मत। केवल यह कहकर कि 'तू भी बाली के समान मारा जायगा' उसे डराना और शीघ्र ही उसका उत्तर लेकर आ जाना।'

'जैसी आज्ञा !' इक्ष्वाकुकुल-सिंह वीरवर सुमित्रा-नन्दन ने श्री राम के चरणों में प्रणाम किया और अपने भयंकर धनुष-बाण को हाथ में लिये हुए वे किष्किन्धा के लिये चल पड़े। उस समय क्रोध के कारण उनकी आकृति अत्यन्त भयावह हो गयी थी। उनके अधर फड़क रहे थे। लक्ष्मण अत्यधिक रोष के कारण मार्ग के वृक्षों को गिराते और पर्वत-शिखरों को उठा कर दूर फेंकते जा रहे थे। उस समय वे प्रत्यक्ष काल से प्रतीत हो रहे थे।

किष्किन्धा के समीप पहुँचकर श्री रामानुज ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा का भयंकर टंकार किया। उस समय कुछ सामान्य वानर नगर के परकोटे पर अपने हाथ में पत्थर और वृक्ष लेकर किलकारी मारने लगे। कुपित लक्ष्मण की क्रोधाग्नि में जैसे घृताहुति पड़ गयी। प्रज्वलित प्रलयाग्नि-तुल्य लक्ष्मण ने अपने विशाल धनुष पर भयानक बाण चढ़ाया ही था कि किष्किन्धा के समस्त वानर वीर काँप उठे। लक्ष्मण किष्किन्धा का मूलोच्छेद करने के लिये प्रस्तुत हो गये।

नगर-निवासियों को अत्यधिक आकुल देख युवराज अङ्गद ने लक्ष्मण जी के समीप पहुँचकर अत्यन्त आदर पूर्वक उनके चरणों में शीश झुकाया। उनको देखते ही अन्यतम भ्रातृभक्त लक्ष्मण का रोष शान्त हो गया। उन्होने युवराज को अपने हृदय से लगाकर कहा—'वत्स ! तुम यथा शीघ्र सुग्रीव के समीप जाकर कहो कि श्री राघवेन्द्र तुम पर कुपित हैं और उन्हीं की प्रेरणा से मैं यहाँ आया हूँ।'

'बहुत अच्छा !'—अङ्गद ने विनम्रता के साथ हाथ जोड़ कर विदा ली और सुग्रीव के समीप पहुंचे। अङ्गद के द्वारा श्री लक्ष्मण जी के रोष की बात ज्ञात होते ही सुग्रीव भयाक्रान्त हो गये। उन्होंने तत्काल श्रीरामानुज को अनुकूल बनाने के लिये पवन कुमार को भेजा।

हनुमान जी ने श्री लक्ष्मण के समीप जाकर उनके चरणों में भक्ति पूर्वक प्रणाम किया और उन्होने अत्यन्त विनय पूर्वक कहा—

'हे महाभाग वीरवर ! निःशंक होकर आइये, यह घर आपका ही है। इसमें पधारकर राजमहिषियों और महाराज सुग्रीव से मिलिये। फिर आपकी जो आज्ञा होगी, हम वही करेंगे।'

पवनकुमार हनुमानजी अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्री रामानुज का कर कमल पकड़कर उन्हें नगर के बीच से राज-सदन ले चले। मधुरभाषिणी तारा ने लक्ष्मण का स्वागत करते हुए कहा—'आपके कार्य के लिए सुग्रीव स्वयं चिन्तित हैं। आप कृपा पूर्वक अन्तःपुर में पधार कर उन्हें अभय—दान दें।'

अन्तःपुर मे भयभीत सुग्रीव ने अपनी पत्नी रूमा सहित लक्ष्मण जी के चरणों में प्रणाम किया। वहाँ भी क्रुद्ध लक्ष्मण से

नीति-निपुण समीरात्मज ने कहा–

'महाराज ! ये वानर राज श्री रामचन्द्र जी के आप से भी अधिक भक्त है। भगवान् श्री राम के कार्य के लिये रात-दिन जागते रहते हैं; ये उसे भूल नहीं गये है। प्रभो ! देखिये, ये करोड़ों वानर इसीलिए सब ओर से आ रहे है। ये सब शीघ्र ही सीता जी की खोज के लिये जायेंगे और महाराज सुग्रीव श्री रामचन्द्रजी का सब कार्य भली प्रकार सिद्ध करेंगे।'

तदनन्तर वानरराज सुग्रीव ने सुमित्राकुमार के चरणों में प्रणाम कर अत्यन्त विनीत वाणी में कहा–प्रभो ! मैं श्री रामचन्द्र जी का दास हूँ। उन्होंने ही मेरे प्राणों की रक्षा की है और यह धन, वैभव एवं राज्यादि सब कुछ उन्हीं का दिया हुआ है। वे प्रभु तो स्वयं त्रिभुवन को परास्त कर सकते है। मैं तो उनके कार्य में सहायक मात्र होऊँगा। मैं विषयी पामर पशु सर्वथा आपका हूँ। अतएव आप मेरा अपराध क्षमा करें।'

सुग्रीव की प्रार्थना सुनते ही सुमित्रा नन्दन ने उनकी भुजा पकड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम पूर्वक उनसे कहा– 'महाभाग ! मैंने भी प्रणय-कोपवश आपको जो कुछ कहा है, उसका विचार मत कीजिए। भगवान श्री राम अरण्य मे एकाकी हैं और श्री सीता जी के वियोग मे व्याकुल हो रहे है। अतएव अब शीघ्र उनके समीप चला जाय।'

'हाँ, अवश्य चला जाय।' सुग्रीव ने पाद्यार्घ्यादि से लक्ष्मण जी की पूजा की और फिर वे उनके साथ स्वयं श्रेष्ठ रथ में बैठे। सुग्रीव के साथ अङ्गद, नील और पवन कुमार आदि मुख्य-मुख्य वानर भी श्री रघुनाथ जी के समीप चले। उस समय भेरी, मृदङ्ग आदि नाना प्रकार के वाद्य बजने लगे।

सीतान्वेषणार्थं प्रस्थान

मृगचर्म और जटा-मुकुट से सुशोभित सजल-जलद वपु भगवान् श्री राम गुफा के द्वार पर एक शिला-खण्ड पर बैठे उदास मन से पक्षियो को देख रहे थे। दूर से शान्तमूर्ति श्री रघुनाथ जो का दर्शन होते ही सुग्रीव और लक्ष्मण रथ से उतर पड़े। सुग्रीव तीव्र गति से प्रभु के समीप पहुँचे और अबोध बालक की तरह प्रभु-पद-पद्मो में गिर कर सिसकने लगे। दयामूर्ति श्री राम ने उन्हें तुरन्त उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और फिर अपने समीप बैठाकर वे प्रेमपूर्वक उनका कुशल पूछने लगे।

सुग्रीव ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनय पूर्वक कहा— 'प्रभो ! मेरा कोई दोष नहीं। आपकी माया ही अत्यन्त प्रबल है। इससे तो आपकी कृपा से ही पार पाया जा सकता है। मैं तो अतिशय भोगासक्त पशु हूँ। आप मुझपर दया कीजिये; करुणा कीजिये स्वामी !'

करुणामय श्री राम वानरराज सुग्रीव के मस्तक पर अपना कर-कमल फेरने लगे। उसी समय कोटि-कोटि वीर वानर-भालुओं का समूह आता हुआ दिखायी दिया।

उन्हे देखकर सुग्रीव ने श्री रघुनाथ जी से कहा 'प्रभो ! ये समस्त वानर-भालू आपकी आज्ञा के पालक एवं फल-मूल आदि खाने वाले हैं। ये रीछों के अधिपति जाम्बवान् अत्यन्त बलवान्, अद्भुत योद्धा एव परम बुद्धिमान् है। ये एक करोड़ भालुओ के यूथपति और मेरे मन्त्रियों मे अग्रगण्य है। इनके अतिरिक्त नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, मैन्द, गज, पनस, बलीमुख, दधिमुख, सुषेण, तार तथा हनुमान के

पिता महाबली और परम धीर केसरी—ये मेरे प्रधान यूथपति हैं। इनके अधीन पर्वत-तुल्य विशालकाय कोटि-कोटि वानर-वीर हैं। ये सब-के-सब युद्धभूमि में आपके लिए सहर्ष प्राण दे देंगे। आप इन्हें इच्छानुसार आज्ञा प्रदान कीजिए।'

सर्वशक्ति सम्पन्न श्री रघुनाथजी ने सुग्रीव से कहा—'सुग्रीव ! तुम मेरा कार्य जानते ही हो। यदि उचित समझो तो इन्हें यथाशीघ्र जानकी को खोजने के लिए नियुक्त कर दो।'

सुग्रीव ने समस्त यूथपतियों को सावधानी पूर्वक सर्वत्र श्री सीता जी का पता लगाने के लिये आज्ञा देते हुए कहा

'मेरी आज्ञा से तुम सब लोग बड़े प्रयत्न से जानकी जी की खोज करो और एक मास के भीतर ही लौट आओ। यदि श्री सीताजी को बिना देखे तुम्हें एक मास से एक दिन भी अधिक हो जायेगा तो हे वानरो ! याद रखो, तुम्हें मेरे हाथ से प्राणान्त दण्ड भोगना पड़ेगा।'

इसप्रकार सुग्रीव ने वानर और भालुओं के यूथपतियों को सीता का शीघ्र पता लगाने के लिये कठोरतम आदेश प्रदान किया। उन्होंने समस्त दिशाओं में अनेकों वानरों को भेजकर दक्षिण दिशा में अधिक प्रयत्न के साथ महाबली युवराज अङ्गद, जाम्बवान्, हनुमान, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और द्विविद आदि को भेजा। उस समय उन्होंने वीरवर हनुमान की प्रशंसा करते हुए उनसे कहा—

'कपिश्रेष्ठ ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देव लोक अथवा जल में भी तुम्हारी गति का अवरोध मैं कभी नहीं देखता हूँ। असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, देवता, समुद्र तथा पर्वतों सहित सम्पूर्ण लोकों का तुम्हें ज्ञान है। वीर ! महाकपे ! सर्वत्र अबाधित गति, वेग, तेज और स्फूर्ति ये सभी सद्गुण तुममें अपने

महापराक्रमी पिता वायु के समान हैं। इस भूमण्डल में कोई भी प्राणी तुम्हारे तेजकी समानता करने वाला नहीं है; अतः जिस प्रकार श्री सीता जी की उपलब्धि हो सके, वह उपाय तुम्हीं सोचो! हनुमान तुम नीतिशास्त्र के पण्डित हो। एकमात्र तुम्हीं में बल, बुद्धि, पराक्रम, देश-कालका अनुसरण तथा नीति पूर्ण वर्ताव एक साथ देखे जाते हैं।'

इस प्रकार श्री पवनकुमार का गुण-गान करते हुए समस्त वानरों को श्री सीतान्वेषणार्थ आदेश देकर सुग्रीव श्री रघुनाथ जी के समीप बैठ गये। वीर वानर और भालू कमल-नयन श्री राम के चरणों में प्रणाम करके जाने लगे। सबके अन्त में जब श्री पवन पुत्र प्रभु के समीप पहुँचे, तब भगवान श्री राम ने उनसे कहा—'वीरवर! तुम्हारा उद्योग, धैर्य एवं पराक्रम और सुग्रीव का संदेश इन सब बातों से लगता है कि निश्चय ही तुमसे मेरे कार्य की सिद्धि होगी। तुम मेरी यह अँगूठी ले जाओ, इस पर मेरे नामाक्षर खुदे हुए हैं। इसे अपने परिचय के लिये तुम एकान्त में सीता को देना। कपिश्रेष्ठ! इस कार्य में तुम्हीं समर्थ हो। मैं तुम्हारा बुद्धिबल अच्छी तरह जानता हूँ। अच्छा, जाओ! तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो!'

पवन कुमार ने प्रभु की मुद्रिका अत्यन्त आदरपूर्वक अपने पास रख ली और उनके चरण कमलों में अपना मस्तक रख दिया। भक्तवत्सल प्रभु का कर-कमल स्वतः उनके मस्तक पर चला गया। बड़ी कठिनाई से हनुमान जी उठे। प्रभु-चरणों की पावनतम धूलि उन्होंने माथे चढ़ायी और प्रभु की निखिलपावन दिव्य मूर्ति को हृदय में धारण कर उत्साह पूर्वक चल पड़े। उनकी जिह्वा से श्री राम नाम का अखण्ड जप होता जा रहा था।

श्री रामभक्त स्वयम्प्रभा से भेंट

आञ्जनेय वानर-दल के साथ भगवती सीता को ढूंढ़ते हुए विन्ध्यगिरि के गहन वन में पहुँचे। उस निबिड़ वन में कण्टकाकीर्ण सूखे वृक्षों के अतिरिक्त जल का कहीं पर नाम भी नही था। वानर-भालुओं का समुदाय इधर-उधर भटकते रहने से प्यास से छटपटाने लगा। उन्हे जल कहीं दीख नहीं रहा था और तृषाधिक्य से उनके कण्ठ और तालु सूख रहे थे, किन्तु ज्ञानिनामग्रण्य संकट मोचन आञ्जनेय उनके साथ थे। उन्होंने धैर्यपूर्वक चारों ओर देखा। कुछ ही दूरी पर उन्हे तृण, गुल्म और लतादि से ढकी एक विशाल गुफा दीख पड़ी। उन्होंने उसमें से हंस, क्रौञ्च, सारस और चकवे आदि पक्षियों को निकलते हुए देखा। उन पक्षियों के पंख भीगे हुए थे, इससे जल का अनुमान कर उन्होंने सबको वहाँ चलने के लिए कहा। दुर्गम वनों के ज्ञाता पवनपुत्र श्री हनुमान के साथ वानर भालुओं के समुदाय ने एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए धीरे-धीरे उस गुफा में प्रवेश किया।

गुफा में कुछ दूर तक गहन अन्धकार था, किन्तु आगे आते ही उन्हे निर्मल जल से भरे सरोवर एवं साल, ताल, तमाल, नाग केसर, अशोक, चम्पा, नागवृक्ष, कनेर आदि पुष्पों तथा सुमधुर फलों से लदे हुए वृक्ष भी दीख पड़े। इतना ही नहीं वहाँ उन्होंने अद्भुत वस्त्रालंकारों सहित एक अत्यन्त सुन्दर भवन भी देखा, जहाँ दिव्य भक्ष्य-भोज्य आदि सभी सामग्रियाँ प्रचुर मात्रा में उपस्थित थीं। किन्तु वहाँ स्वर्ण सिंहासन पर एक अत्यन्त लावण्यमयी रमणी को अपने शरीर पर वल्कल और कृष्ण मृगचर्म धारण किये ध्यानमग्न बैठे देख वे एक-दूसरे के मुँह की ओर ताकने लगे। उस ध्यानमग्ना योगिनी

के शरीर से तेज प्रसरित हो रहा था। भयाक्रान्त बन्दरों ने उनके चरणों में अत्यन्त श्रद्धा से प्रणाम किया।

'तुम लोग कहाँ से आये हो?' उन महाभागा ने वन्दरों को प्रणाम करते देखकर अत्यन्त शान्त चित्त से मधुर वाणी में पूछा—'तुम कौन हो और किस उद्देश्य से इन दुर्गम स्थानों में विचरण कर रहे हो! मेरे इस स्थान को नष्ट क्यों कर रहे हो?'

परमादरणीया देवि!' विशालकाय श्री हनुमान ने अत्यन्त विनम्रता से उत्तर दिया—'अवध नरेश दशरथ के पुत्र श्री राम अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये अपनी धर्मपत्नी जनकनन्दिनी श्री जानकी जी और भाई लक्ष्मण के साथ वन में पधारे थे। वहाँ उनकी परमसाध्वी पत्नी को लंकाधिपति रावण हर ले गया। सुग्रीव ने श्री राम से मैत्री होने के कारण हमें श्री जानकी जी की खोज करने की आज्ञा दी है। इसी शुभ कार्य से हम इधर आ गये। क्षुधा-पिपासा से आकुल होकर हम इस पवित्र गुफा में प्रविष्ट हुए हैं।' श्री हनुमान ने पुनः कहा—'देवि! आप कौन है? कृपापूर्वक हमें भी अपना परिचय दीजिये!'

'मेरा अहोभाग्य!' तपःपूता योगिनी ने श्री हनुमान से कहा—'आज मेरी तपश्चर्या सफल हो गयी। मेरे आनन्द की सीमा नहीं। सर्वथा निश्चिन्त होकर तुम लोग सर्वप्रथम यथेच्छ मधुर फलों का आहार और अमृतमय जलका पान कर लो एवं तृप्त होकर मेरे पास बैठकर विश्राम करो। तब मैं तुम लोगों को अपना वृत्तान्त सुनाऊँगी।'

श्रीहनुमानजी वन्दरों सहित मधुर फल खाकर एवं शीतल जल पीकर तृप्त और प्रसन्न हो गये। फिर वे योगिनी के

समीप जाकर विनयपूर्वक बैठ गये।

पूर्वकाल की बात है।' भक्तिमती देवी ने वानरों सहित हनुमान जी को बताया—"विश्वकर्मा की हेमा नामक एक अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी। उसके अद्भुत नृत्य से संतुष्ट होकर आशुतोष शिव ने उसे यह विशाल दिव्य नगर रहने के लिये दे दिया। यहाँ वह सहस्रों वर्ष तक रही। वह मेरी प्राणप्रिय सखी थी। ब्रह्मलोक को प्रयाण करते समय उसने मुझे वास्तविक मुमुक्षु एवं क्षीराब्धिशायी श्री विष्णु की अनन्य उपासिका समझकर प्रेम पूर्वक मुझसे कहा—"सखी स्वयम्प्रभा! तू इस एकान्त शान्त स्थान में रहकर तप कर। त्रेता युग में स्वयं श्री नारायण भू-भार-हरण करने के लिये अवध नरेश दशरथ की परम भाग्यवती धर्मपत्नी कौसल्या के गर्भ से प्रकट होंगे। वे धर्म-संस्थापन एवं दुष्टों के विनाश के लिये वनमें भ्रमण करेंगे। उनकी परम सती पत्नी को ढूँढते हुए कुछ बन्दर इस गुफा में तुम्हारे पास आयेंगे। तुम भक्ष्य, भोज्य एवं मधुर जल से उनका स्वागत कर उन परम प्रभु श्री राम के पास चली जाना। उनके दर्शन कर उनसे प्रीतिपूर्वक प्रार्थना करना; उनकी दया से तुम योगिदुर्लभ श्री विष्णु के आनन्दमय नित्य धाम में चली जाओगी'।"

अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक श्री हनुमानजी की ओर देखती हुई तपस्विनी ने पुनः कहा—'मैं दिव्य नामक गन्धर्व की पुत्री स्वयम्प्रभा हूँ। आज यहाँ तुम लोगों के पवित्र चरण पड़ने से मेरा भाग्य-सूर्य उदित हुआ है। अब मैं अपने प्राणाराध्य परमप्रिय प्रभु भगवान् श्री राम के दर्शनार्थ जाने के लिये आतुर हो रही हूँ। तुम लोग अपने-अपने नेत्र बंद कर लो; तुरन्त इस गुफा से बाहर पहुंच जाओगे। तुम सीता जी को पा जाओगे। निराश मत होओ।'

महाभागा स्वयम्प्रभा के आदेशानुसार वानर-भालुओं का वह—विशाल समुदाय नेत्र बंद करते ही गुफा के बाहर अरण्य में पहुँच गया।

सम्पाति द्वारा सीता का पता लगना

वानर भालू पुनः श्री जनकनन्दिनी की खोज में लगे। अत्यधिक श्रमके साथ खोज करने पर भी दशानन या श्री सीता जी का कहीं पता नहीं चला। थके हुए वानर-भालू बैठकर परस्पर विचार करने लगे कि 'क्या किया जाय?' उस समय अत्यन्त दुःखित होकर अङ्गद ने कहा—'इस कन्दरा में घूमते हुए सम्भवतः एक मास बीत गया। राजा सुग्रीव की दी हुई अवधि समाप्त हो गयी और भगवती सीता का पता नहीं चला। अब किष्किन्धा लौटने पर तो हम निश्चय ही मारे जायेंगे। मुझे तो वे छोड़ ही नहीं सकते, अवश्य मार डालेंगे; कारण, मैं उनके शत्रु का पुत्र हूँ। मेरी रक्षा तो धर्मात्मा वीरवर श्री रामजी ने की है। अब प्रभु का कार्य पूरा न करने का बहाना लेकर वे मुझे किस प्रकार जीवित छोड़ सकते हैं? अतएव मैं तो लौटूंगा नहीं; किसी-न-किसी प्रकार यहीं अपना शरीर त्याग दूंगा।'

इस प्रकार साश्रुनयन युवराज को विलाप करते देखकर वानरों को बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने अत्यन्त सहानुभूति पूर्वक अङ्गद से कहा—'आप चिन्ता न करें। हम सब अपने प्राण देकर भी आपके जीवन की रक्षा करेंगे। हम सब अमरावती पुरी की सुख-सामग्रियों से सम्पन्न इस गुफा में ही सुख पूर्वक रहेंगे।'

वानरों के द्वारा धीरे-धीरे कही गयी इन बातों को सुन कर परमनीतिज्ञ पवन नन्दन ने युवराज को आश्वस्त करते हुए

अत्यन्त प्रेम पूर्वक कहा—'युवराज ! तुम व्यर्थ की चिन्ता कैसे करने लगे ? तुम महारानी तारा के प्राणप्रिय पुत्र होने के कारण सुग्रीव के भी सहज ही प्रिय हो और तुममे श्री राघवेन्द्र की प्रीति तो प्रतिदिन लक्ष्मण से भी अधिक बढती जा रही है। वानरो ने जो तुम्हे इस गुफा मे निष्कण्टक रहने का परामर्श दिया है, वह व्यर्थ है, क्योकि त्रैलोक्य का कोई भी लक्ष्य श्री रघुनन्दन के बाणो से अभेद्य नही है। स्त्री बच्चो से कभी पृथक् न रहने वाले ये वानर तुम्हे उचित परामर्श नही दे रहे हैं।'

पवन पुत्र ने अत्यन्त प्रेम पूर्वक अङ्गद को समझाते हुए आगे कहा 'इसके अतिरिक्त बेटा ! मै एक अत्यन्त गुप्त रहस्य और बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। भगवान् श्री राम कोई साधारण मनुष्य नही है। वे साक्षात् निर्विकार श्री नारायण देव है। भगवती सीता जी जगन्मोहिनी माया है और लक्ष्मण जी त्रिभुवनाधार साक्षात् नागराज शेष जी है। वे सब ब्रह्माजी की प्रार्थना से राक्षसो के विनाश करने के लिए माया-मानव रूप मे उत्पन्न हुए है। इनमे से प्रत्येक त्रिलोकी की रक्षा करने मे समर्थ हैं। हमारा तो परम सौभाग्य है कि हम परम प्रभु की लीला के कार्य मे निमित्त बन रहे है।'

इस प्रकार युवराज अङ्गद को धैर्य प्रदान करने के अनन्तर परम पराक्रमी रामदूत श्री हनुमान जाम्बवान् और अङ्गद आदि वानरो के साथ माता सीता को ढूढते हुए धीरे-धीरे दक्षिण-समुद्र के तट पर महेन्द्र पर्वत की पवित्र उपत्यका मे आ पहुँचे। वहा सामने अगाध एव असीम महासागर की भयानक लहरो को देखकर वानर-भालू घबरा गये। सीतान्वेषण के लिये सुग्रीव की दी हुई एक मास की अवधि भी समाप्त हो गयी और सामने महा समुद्र ! वीर वानर-भालुओ की बुद्धि काम नही कर रही

थी। इस कारण वानरराज सुग्रीव के कठोर दण्ड की कल्पना कर उन्होंने कहा - -

'राजा सुग्रीव बड़े दुर्दण्ड हैं; वे हमें निस्संदेह मार डालेंगे। सुग्रीव के हाथ से मरने की अपेक्षा तो प्रायोपवेशन (अन्न-जल छोड़कर मर जाने) में ही हमारा अधिक कल्याण है' ऐसा निर्णय कर वे सब जहाँ-तहाँ कुश बिछाकर मरने के निश्चय से वहीं बैठ गये।

वानरों का कोलाहल सुनकर गृध्र सम्पाति विन्ध्यगिरि की कन्दरा से बाहर निकले और जब उन्होंने अन्न-जल त्याग कर मरने का निश्चय किये वानर-भालुओं को कुशासन पर बैठे देखा तो उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही। सम्पाति ने हर्षातिरेक में कहा—

'जैसे लोक में पूर्व जन्म के कर्मानुसार मनुष्य को उसके किये का फल स्वतः प्राप्त होता है, उसी प्रकार आज दीर्घकाल के पश्चात् यह भोजन स्वतः मेरे लिये प्राप्त हो गया। अवश्य ही यह मेरे किसी कर्म का फल है। इन वानरों में से जो-जो मरता जाएगा, उसको मैं क्रमशः भक्षण करता जाऊँगा।'

भोजन के लिये लालायित महाकाय सम्पाति को देखकर वानरगण अत्यन्त भयभीत हो गये। वे सोचने लगे—'हमसे न तो श्री राम की कोई सेवा हो सकी और न सुग्रीव की ही आज्ञा का पालन हुआ; अब हम लोग व्यर्थ ही इसके पेट में चले जायेंगे।' फिर उन्होने उस पंखहीन अत्यन्त विशाल गृध्र को सुनाकर कहा—

'अहो! धर्मात्मा जटायु धन्य है, जिस बुद्धिमान् ने श्री राम के कार्य में अपने प्राण दे दिये। देखो, शत्रुदमन ने वह मोक्षपद प्राप्त कर लिया, जो योगियों को भी दुर्लभ है।'

जटायु का नाम सुनकर सम्पाति अत्यधिक दुःखी हो गये। अत्यन्त आश्चर्य से उन्होंने वानरों से कहा -

"हे कपि श्रेष्ठगण ! तुम लोग कौन हो, जो आपस में मेरे कानों को अमृत के समान प्रिय लगने वाले मेरे भाई 'जटायु' का नाम ले रहे हो। तुम मुझसे किसी प्रकार का भय न करके अपना वृत्तान्त कहो।"

सम्पाति के आश्वासन देने पर भी वानर-यूथपतियों ने उन पर विश्वास नहीं किया। वे मांस भोजी महाकाय गृध्र से अत्यन्त शङ्कित थे। बहुत सोच-विचार के उपरान्त वानर उनके समीप गये और युवराज अङ्गद ने उन्हें श्री राम के सम्बन्ध में जन्म से लेकर श्री सीता-हरण तक की सारी घटना अत्यन्त विस्तार पूर्वक सुनायी। इसके बाद जटायु के श्री सीता की रक्षा के लिये रावण के साथ युद्ध कर श्री राम की गोद में सुख पूर्वक प्राण-विसर्जन करने की बात कही। परम कारुणिक श्री राम ने जिस प्रकार उनकी अन्तिम क्रिया की थी, वह भी उन्होंने भाव-विभोर होकर बतायी और अन्त में उन्होंने यह भी कहा कि 'हमलोग वानरों के राजा सुग्रीव के आदेश से श्री सीता जी की खोज के लिए यहाँ तक आये हैं; पर अब तक उनका कोई पता नहीं लगा, इस कारण हम लोग दुःख से अधीर और व्याकुल हो रहे हैं।'

अपने प्राण-प्रिय भाई जटायु का प्रभु के लिये प्राणार्पण एवं उनकी अन्तिम गति का सुखद सवाद सुनकर सम्पाति आनन्द-विह्वल हो गये। इतना ही नहीं, महामुनि चन्द्रमा के वचनों के अनुसार अपने परम कल्याण का क्षण उपस्थित जान कर वे अपना सारा दुःख भूल गये। उनके अङ्ग-अङ्ग परमानन्द से पुलकित हो गये—

"अङ्गद के वचन सुनकर चित्त में प्रसन्न हो सम्पाति ने कहा -'हे कपीश्वरों ! जटायु मेरा परम प्रिय भाई है। आज कई सहस्र वर्षों के अनन्तर मैंने भाई का समाचार सुना है।"

"मैं वाणी और बुद्धि के द्वारा तुम, सब लोगों का प्रिय कार्य अवश्य करूँगा; क्योंकि दशरथ नन्दन श्री राम का जो कार्य है, वह मेरा ही है इसमें संशय नहीं है।'

सम्पाति ने फिर कहा–'सर्व प्रथम तुम लोग मुझे जल के पास ले चलो, जिससे मैं अपने भाई को जलाञ्जलि दे लूँ। फिर तुम लोगों की कार्य-सिद्धि के लिए मैं उचित मार्ग बताऊँगा।'

सम्पाति की इच्छा जानकर महावीर हनुमानजी उन्हें उठाकर समुद्र-तट पर ले गए। वहाँ सम्पाति ने स्नान करके जटायु को जलाञ्जलि दी। फिर वानरगण उन्हें उनके स्थान पर ले गये। वहाँ भगवान श्री राम के भक्तों को सम्मुख बैठे देखकर सम्पाति के सुख की सीमा न थी। उनका शारीरिक एवं मानसिक कष्ट तो पहले ही दूर हो गया था; उन्होंने चारों ओर अपनी दृष्टि डालकर प्रभु के प्रिय भक्तों को अत्यन्त आदर पूर्वक बताया–

त्रिकूट पर्वत पर लंका नगरी है। वहाँ रावण सहज ही निःशंक रहता है। वहाँ अशोक नामक एक उपवन है, जहाँ श्री सीता जी शोक मग्न बैठी हैं। मैं सब देख रहा हूं, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गृध्र की दृष्टि अपार–बहुत दूर तक जाने वाली होती है। मैं वृद्ध हो गया हूँ, नहीं तो तुम्हारी कुछ सहायता करता।'

फिर उन्हें प्रोत्साहित करते हुए सम्पाति ने उनसे कहा–

'तुम लोग भी उत्तम बुद्धि से युक्त, बलवान् मनस्वी तथा देवताओं के लिए भी दुर्जेय हो। इसीलिये वानरराज सुग्रीव ने

तुम्हें इस कार्य के लिए भेजा है।'

तदनन्तर उन्होंने श्री राम-लक्ष्मण के तीक्ष्ण शरों की महिमा का गान करते हुए वानर-भालुओं से कहा

'श्री राम और लक्ष्मण के कंकपत्र से युक्त जो बाण हैं, वे साक्षात् विधाता के बनाये हुए है। वे तीनों लोकों का संरक्षण और दमन करने के लिए पर्याप्त शक्ति रखते हैं। तुम्हारा विपक्षी दशग्रीव रावण भले ही तेजस्वी और बलवान् है, किन्तु तुम-जैसे सामर्थ्यशाली वीरो के लिए उसे परास्त करना आदि कोई भी कार्य दुष्कर नहीं है।'

प्रोत्साहन देने के अनन्तर सम्पाति ने कहा—'तुम लोग किसी-न-किसी तरह समुद्र लाँघने का प्रयत्न करो। राक्षस राज रावण को तो वीरवर श्री रामचन्द्रजी स्वयं मार डालेंगे। तुम लोग विचार कर लो कि तुम में ऐसा कौन वीर है, जो समुद्र लाँघकर लंका में पहुँच जाय और माता सीता के दर्शन एवं उनसे बातचीत कर पुनः समुद्र के इस पार आ जाय।'

सम्पाति के द्वारा माता सीता का पता पाकर वानर-वृन्द के हर्ष की सीमा न रही। उन्होंने कौतूहल वश सम्पाति का पूरा जीवन-वृत्तान्त जानने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने उन्हें बड़े ही आदर और प्रेम पूर्वक अपने पंख भस्म होने एवं चन्द्रमा मुनि के द्वारा कही गयी सारी बातें सुना दी। इसके अनन्तर उन्होंने कहा—"वानरो ! पंखहीन पक्षी की विवशता क्या कही जाय ? मेरी इस अत्यन्त दयनीय स्थिति मे मेरा पुत्र पक्षिप्रवर सुपार्श्व ही मुझे यथा समय आहार प्रदान कर मेरा भरण-पोषण करता आया है। हम लोगो की क्षुधा अत्यन्त तीव्र होती है। एक दिन मैं भूख से छटपटा रहा था, किन्तु मेरा पुत्र देर से रिक्तहस्त लौटा; इस कारण मैने उसे अनेक कटु बातें कहीं।

इस पर उसने अत्यन्त विनम्रता पूर्वक मुझसे कहा—'मैं आपके आहार के लिये यथा समय आकाश में उड़ा और महेन्द्रगिरि के द्वार को रोक कर अपनी चोंच नीची किये समुद्री जीवों को देखने लगा। उसी समय वहाँ मैंने एक कज्जल-गिरि की भांति बलवान पुरुष को देखा, जो अपने साथ एक अलौकिक तेजस्विनी स्त्री को बलात् लिए जा रहा था। उस स्त्री और पुरुष के द्वारा मैंने आपकी भूख मिटाने का निश्चय किया, किन्तु उस पुरुष की अत्यन्त मधुर एवं विनम्र वाणी से प्रभावित होकर मैंने उसे छोड़ दिया।

'इसके अनन्तर मुझे महर्षियों एवं सिद्ध पुरुषों से विदित हुआ कि वह अलौकिक तेजस्विनी स्त्री दशरथ नन्दन श्री राम की पत्नी भगवती सीता थीं और काला पुरुष लंकाधिपति रावण था। श्री सीता के केश खुले हुए थे। वे अत्यन्त दुःख से श्री राम और लक्ष्मण का नाम लेकर विलाप कर रही थीं और उनके आभूषण गिरते जा रहे थे। इसी कारण मुझे यहाँ आने में देर हो गयी।'

पंखहीन, असहाय और विवश मैं छटपटाकर रह गया। मैं कुछ नहीं कर सकता था। दुष्ट रावण की शक्तियों से मैं परिचित था, इस कारण जगदम्बा सीता की रक्षा न करने के कारण मैंने उसे कठोर वचन कहे।" फिर सम्पाति ने कहा—

'श्री सीता का विलाप सुनकर और उनसे बिछुड़े हुए श्री राम तथा लक्ष्मण का परिचय पाकर तथा राजा दशरथ के प्रति मेरे स्नेह का स्मरण करके भी मेरे पुत्र ने जो सीता जी की रक्षा नहीं की, अपने इस बर्ताव से उसने मुझे प्रसन्न नहीं किया—मेरा प्रिय कार्य नहीं होने दिया।'

परम भाग्यवान् सम्पाति वानरों को अपनी कथा सुना

ही रहे थे कि उनके दो नये पंख निकल आए। उनमें यौवन-काल का बल भी उत्पन्न हो गया। महर्षि चन्द्रमा की वाणी का स्मरण करके वे अत्यन्त सुखी हुए। उन्होंने वानरों से कहा—

'वानरो! तुम सब प्रकार से यत्न करो। निश्चय ही तुम्हें माता सीता का दर्शन प्राप्त होगा। मुझे पंखों का प्राप्त होना तुम लोगों को कार्य-सिद्धि का विश्वास दिलाने वाला है।'

फिर उन्होंने भगवान् श्री राम के मङ्गलमय नाम की महिमा का बखान करते हुए उनके लिए समुद्रोल्लङ्घन अत्यन्त सरल कार्य बताया। सम्पाति ने कहा—

'वानर गण! जिनके स्मरण मात्र से महान् दुष्टजन भी इस अपार संसार-सागर को पार करके भगवान विष्णु के सनातन परम पद को प्राप्त कर लेते हैं, तुम लोग त्रिलोकी की स्थिति करने वाले उन्हीं भगवान श्रीराम के प्रिय भक्त गण हो। फिर इस क्षुद्र समुद्र मात्र को पार करने में तुम क्यों समर्थ न होगे?'

विनीतात्मा परमपराक्रमी पवनकुमार भाग्यवान् सम्पाति के एक-एक शब्द अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। माता सीता का सुस्पष्ट पता विदित हो जाने पर श्री राम दूत हनुमान जी की प्रसन्नता की सीमा न रही। उनके रोम-रोम पुलकित हो गए।

उसी समय पक्षिश्रेष्ठ सम्पाति उस पर्वत-शिखर से उड़ कर चले गए।

समुद्रोल्लंघन और लंका में प्रवेश

गृध्र राज सम्पाति के द्वारा श्री जनक दुलारी का पता पाकर वानर-भालुओं का विशाल समुदाय हर्षातिरेक से उछलने-कूदने लगा; किन्तु जब वे लोग महान् जलधि के तट पर पहुँचे, तब उसका रोमाञ्चकारी स्वरूप देखकर सहम उठे। 'भयानक गर्जन करते हुए उत्तुङ्ग लहरों वाले असीम सागर के पार कैसे जाया जाय ?'—समस्त वानर-भालुओं को चिन्तित, उदास और विषाद में पड़ा देख युवराज अङ्गद ने उन्हे अनेक युक्तियों से समझाकर आश्वस्त किया। सच तो यह है, महा सागर-तुल्य वीर वानर-भालुओं की महान् सेना को अङ्गद और श्री हनुमान ही सुस्थिर रख सकने में समर्थ थे।

वालिकुमार अङ्गद ने समस्त वीर वानर-भालुओं से कहा—'बन्धुओ ! आप सब अन्यतम वीर हैं और आपलोगों में से कभी किसी की गति कहीं नहीं रुकती। आपमें ऐसे कौन-कौन महान् वीर हैं, जो जगन्माता जानकी का पता लगाने के लिये इस अपार समुद्र को लाँघकर लंका पहुँच जायेंगे ?'

अंगद का वचन सुन पहले तो समस्त-वानर चुप हो गए, किन्तु कुछ देर बाद गज नामक वानर ने कहा—'मै दसयोजन की छलाँग मार सकता हूँ।' इसी प्रकार गवाक्ष ने बीस, शरभ ने तीस, ऋषभ ने चालीस, गन्धमादन ने पचास, मैन्द ने साठ, द्विविद ने सत्तर और सुषेण ने अस्सी योजन तक छलाँग मारने की बात कही। वयोवृद्ध ऋक्षराज जाम्बवान् ने कहा—'पहले यौवन काल में मै भी बहुत लम्बी छलाँग मार सकता था,

किन्तु अब वह शक्ति मुझमें नहीं रही; तथापि वानर राज सुग्रीव और श्री कौसल्या किशोर के कार्य की उपेक्षा सम्भव नहीं। इस वृद्धावस्था में मै केवल नब्बे योजन दूर तक छलांग मार सकता हूँ। पूर्वकाल में जब भगवान् त्रिविक्रम ने अवतार लिया था, तब मैने उन प्रभु के पृथ्वी के बराबर परिमाण वाले चरण की इक्कीस बार परिक्रमा कर ली थी; परन्तु अब इस महान् समुद्र को लांघ जाना मेरे वश की बात नहीं।'

अंगद बोले—मै समुद्र तो पार कर सकता हूँ, किन्तु लौट पाऊँगा कि नही, यह कहना सम्भव नही।'

अंगद के वचन सुनकर वाक्य कोविद वृद्ध जाम्बवान् ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'अंगद ! यद्यपि तुम इस कार्य के करने में पूर्ण समर्थ हो, किन्तु तुम हम सबके नायक हो, अतः तुम्हे भेजना हमारे लिये उचित नहीं है। तुम तो प्रत्येक रीति से रक्षणीय हो।'

अंगद ने उदास होकर कहा—'तब तो समुद्रोल्लघन सम्भव नही प्रतीत होता। फिर हम लोग प्रायोपवेशन का संकल्प करके बैठ जाये।'

'नही बेटा ! भगवान् श्री राम का कार्य अवश्य होगा।' अंगद को आश्वस्त करते हुए जाम्बवान् ने श्री अञ्जनानन्दन की ओर देखा। वे सर्वथा मौन बैठे थे। ऋक्षराज को विदित था की ये वज्राङ्ग श्रीहनुमान शाप के कारण भस्माच्छादित अग्नि-तुल्य शान्त है। इन्हे अपनी अपरिमेय शक्ति की स्मृति नहीं है, अन्यथा ये अपने स्वामी सुग्रीव को संकट ग्रस्त देखकर भी चुप कैसे रहते; ये निश्चय ही बाली को दण्डित करते। जाम्बवान ने श्री हनुमान को उनकी शक्ति का स्मरण दिलाते हुए कहा—'भगवान् श्री राम के अनन्य भक्त वज्राङ्ग हनुमान! श्री राम

के कार्य के लिये ही तुमने अवतार धारण किया है, फिर चुप क्यों बैठे हो ? महावीर ! तुम पवन के पुत्र हो। तुमने माता अञ्जना का दुग्ध पान किया है। बाल्यकाल में ही तुम सूर्य देव को अरुण फल समझकर उन्हें भक्षण करने के लिए एक ही छलांग में उनके पास पहुँच गये थे। ब्रह्मादि देवताओं ने तुम्हें अलौकिक वरदान प्रदान किए हैं। महावीर केसरी किशोर ! तुम अपरिमित शक्ति-सम्पन्न हो। तुम्हारी गति अव्याहत है। यह विशाल जलधि तो तुम्हारे लिए नगण्य है। उठो और समुद्र को लांघ कर लंका पहुँच जाओ। वहाँ माता सीता के दर्शन कर तुरन्त लौट आओ। हम वानर-भालुओं के जीवन की रक्षा कर लो। विवेक और ज्ञान के निधान वायु पुत्र ! देखो, ये चिन्तित और उदास असंख्य वानर-भालू तुम्हारी ओर देख रहे हैं।'

जाम्बवान् के वचन सुनते ही भगवान् की स्मृति में तल्लीन हनुमान्‌ जी को अपने बल और पराक्रम का स्मरण हो आया। तत्क्षण उनका शरीर पर्वताकार हो गया। उन्होंने अपने में अपार शक्ति का अनुभव कर भयानक गर्जना की। उस गर्जना से धरती, आकाश तथा समस्त दिशाएँ काँप उठीं।

कनक भूधराकार पवन कुमार ने गरजते हुए कहा - 'वानरो ! मैं भगवान् की कृपा से आकाशचारी समस्त ग्रह-नक्षत्र आदि को लांघ कर आगे बढ़ जाने के लिए तैयार हूँ। मैं चाहूँ तो समुद्रों को सोख लूँ, पृथ्वी को विदीर्ण कर दूं और कूद-कूदकर पर्वतों को विचूर्ण कर डालूं। यह तुच्छ समुद्र मेरे लिए कुछ नहीं है। बताओ, मुझे क्या करना है ? कहो तो मैं लंका में जाकर उसे उठा कर समुद्र में डूबो दूँ और माता सीता को यहाँ ले आऊँ, या कहो तो रावण सहित समूची लंका को

जलाकर राख कर दूँ, अथवा कहो तो राक्षस राज रावण के कण्ठ में रस्सी बाँधकर उसे घसीटते हुए यहाँ लाकर भगवान् श्री राम के चरणों में पटक दू, या केवल जगन्माता जानकी को देख कर ही लौट आऊँ ?'

परम शक्तिशाली पवनकुमार के वचन सुन जाम्बवान् ने प्रसन्न होकर कहा 'तात ! तुम सर्वसमर्थ हो, किन्तु तुम भगवान् के दूत हो। तुम केवल सीता-माता का दर्शन कर उनका समाचार लेकर चले आओ। इसके अनन्तर भगवान् श्री राम वहाँ जाकर असुर-कुलका उद्धार करेंगे। उनकी पवित्र कीर्ति का विस्तार होगा और हम सभी प्रभु-कार्य में सहायक होकर कृतार्थ होंगे। हम समस्त वानर-भालुओं के प्राण तुम्हारे अधीन हैं। हम सब आतुरता पूर्वक तुम्हारी प्रतीक्षा करते रहेंगे। तुम शीघ्र जाओ। आकाश मार्ग से जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो !'

वृद्ध वानर-भालुओं के आशीर्वाद से प्रसन्न होकर महा-पराक्रमी, शत्रुमर्दन श्री रामदूत हनुमान उछल कर महेन्द्रपर्वत-के शिखर पर चढ़ गये। उनके चरणों के आघात से पर्वत नीचे धँसने लगा और वृक्षों सहित पर्वत-शृङ्ग टूटकर गिरने लगे। उस समय समस्त प्राणियों को वायु पुत्र महात्मा हनुमान जी महान् पर्वत के समान विशालकाय, सुवर्ण-वर्ण अरुण (बाल-सूर्य) के समान मनोहर मुखवाले और महान सर्प राज के समान दीर्घ भुजाओं वाले दिखायी देने लगे।

समुद्र पार करने के लिये प्रस्तुत आञ्जनेय ने पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता वायुदेव को प्रणाम किया, फिर उन्होंने भगवान् श्री राम का स्मरण कर वानर-भालुओं से कहा 'वानरगण ! मैं परम प्रभु श्री राम की कृपा से उनके अमोघ

बाण की गति से लंका जाकर जगजननी के दर्शन कर पुनः लौट आऊँगा। प्राणान्त काल में प्रभु के नाम का स्मरण कर मनुष्य संसार-सागर से पार हो जाता है, फिर मैं तो उनका दूत हूँ। उनकी अँगुली की दिव्य अँगूठी मेरे पास है और मेरे हृदय में उनकी मूर्ति तथा वाणी में उनका नाम विराजित है; फिर मैं इस तुच्छ समुद्र को लाँघकर कृतकार्य होऊँ, इसमें कौन बड़ी बात है ? आपलोग मेरे लौटने तक कंद-मूल का आहार करके यहीं मेरी प्रतीक्षा करें।'

उस समय श्री वायु नन्दन में तेज, बल और पराक्रम का अद्‌भुत आवेश था। देव गण जय-जयकार और ऋषि शान्ति-पाठ करने लगे। श्री आञ्जनेय ने दक्षिण की ओर अपनी दोनों भुजाएँ फैलायीं और बड़े वेग से आकाश में ऊपर की ओर उछलकर गरुड़ की भांति तीव्रता से उड़े। उनके वेग से आकृष्ट होकर कितने ही वृक्ष उखड़कर अपनी डालियों-समेत उड़ चले। पुष्पित वृक्षों के पुष्प उनके ऊपर गिरे, जैसे वे वायु पुत्र की पूजा कर रहे हों।

पवन पुत्र श्री हनुमान को पवन की गति से श्री राम-कार्य के लिये जाते देखकर सागर ने सोचा—'इक्ष्वाकुवंशीय महाराज सगर के पुत्रों ने मुझे बढ़ाया था और ये अभय वज्राङ्ग हनुमान इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न श्री राम के कार्य से लंका जा रहे हैं; अतः इन्हें मार्ग में विश्राम देने का प्रयत्न करना चाहिए।'

समुद्र ने मैनाक पर्वत से कहा—'शैल प्रवर ! देखो, ये कपि केसरी हनुमान इक्ष्वाकुवंशीय श्री राम की सहायता के लिए तीव्र वेग से लंका जा रहे हैं। इस पावन वंश के लोग मेरे पूज-नीय हैं और तुम्हारे लिए तो परम पूजनीय हैं। अतएव तुम श्री हनुमान की सहायता करो। तुम तुरन्त जल से ऊपर उठ

जाओ, जिससे ये कुछ देर तुम्हारे शिखर पर विश्राम कर सकें।'

मैनाक अपने अनेक सुवर्ण एवं मणिमय शिखरो सहित समुद्र से अत्यधिक ऊपर उठ गया और एक शृंग पर मनुष्य के वेष में खड़े होकर उसने हनुमानजी से प्रार्थना की --'कपिश्रेष्ठ! आप वायु के पुत्र हैं और उन्ही की भांति अपरिमित शक्ति-सम्पन्न है, आप धर्म के ज्ञाता हैं। आपकी पूजा होने पर साक्षात् वायु देव का पूजन हो जाएगा। इसलिए आप अवश्य ही मेरे पूजनीय हैं। पहले पर्वतो के पंख होते थे। वे आकाश मे इधर-उधर वेग पूर्वक उडा करते थे। इस प्रकार उनके उड़ते रहने से देवताओं, ऋषियों एवं समस्त प्राणियों के मन में भय व्याप्त हो गया। इस कारण कुपित होकर सहस्राक्ष ने लाखो पर्वतों के पंख काट डाले। वज्र लिए क्रुद्ध सुरेन्द्र मेरी ओर भी चले, किन्तु आपके पिता महात्मा वायु देव ने मुझे इस समुद्र में गिराकर मेरी रक्षा कर ली।'

मैनाक ने अत्यन्त आदर एवं प्रीति पूर्वक हनुमान जी से आगे निवेदन किया—'वायु नन्दन! आपके साथ मेरा वह पवित्र सम्बन्ध है और आप मेरे माननीय हैं। दूसरे, समुद्र ने भी आप को विश्राम देने के लिए मुझे आज्ञा प्रदान की है। आप मेरे यहाँ विविध प्रकार के मधुर फल ग्रहण करें, कुछ देर विश्राम कर लें। तदनन्तर अपने कार्य के लिये चले जायें।'

मैनाक के वचन सुनकर श्री आञ्जनेय ने अत्यन्त प्रेम पूर्वक उत्तर दिया—'मैनाक! आपसे मिलकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। मेरा आतिथ्य हो गया। मुझे अपने प्रभु के कार्य की शीघ्रता है, अतएव मेरे लिए विश्राम करना सम्भव नही।''

श्री केसरी किशोर ने हँसते हुए मैनाक का स्पर्श किया और तीव्रता से आगे बढ गए। उस समय शैल प्रवर मैनाक

और जलधि—दोनों ने उनकी ओर अत्यन्त आदर और प्रीति पूर्वक देखकर उन्हे बार-बार आशीर्वाद प्रदान किया।

श्री केसरी किशोर को श्री रामचन्द्र जी के कार्य के लिए वेग पूर्वक लंका की ओर उड़ते जाते देख देवताओं ने उनके बल और बुद्धि का पता लगाने के लिए नागमाता सुरसा को भेजा। देवताओं के आदेशानुसार सुरसा ने अत्यन्त विकट, बेडौल और भयानक रूप धारण किया। उनके नेत्र पीले और दाढ़ें विकराल थीं। वह आकाश को स्पर्श करने वाला विकटतम मुंह बनाकर श्री हनुमान जी के मार्ग में खड़ी हो गयी।

श्री हनुमान को अपनी ओर आते देख नाग माता ने कहा—'महामते! मैं तीव्र क्षुधा से व्याकुल हूँ। देवताओं ने तुम्हें मेरे आहार के रूप में भेजा है। तुम मेरे मुख में आ जाओ। मैं अपनी क्षुधा शान्त कर लूं।'

श्री अञ्जना नन्दन ने उत्तर दिया—'माता सुरसा! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। मैं आर्तत्राण-परायण श्री रघुनाथ जी के कार्य से लंका जा रहा हूँ। इस समय माता सीता का पता लगाने के लिए तुम मुझे जाने दो। वहां से शीघ्र ही लौटकर तथा श्री रघुनाथ जी को माता सीता का कुशल-समाचार सुना कर मैं तुम्हारे मुख में प्रविष्ट हो जाऊंगा।'

किन्तु श्री राम दूत के बल-बुद्धि की परीक्षा के लिए आयी सुरसा उन्हें किसी प्रकार आगे नहीं जाने देती थी; तब श्री हनुमान ने उससे कहा—'अच्छा, तू मुझे भक्षण कर।'

सुरसा ने अपना मुंह एक योजन विस्तृत फैलाया ही था कि श्री वायु नन्दन ने तुरंत अपना शरीर आठ योजन का बना लिया। उसने अपना मुंह सोलह योजन विस्तृत किया, तब श्री पवन कुमार तुरन्त बत्तीस योजन के हो गए। सुरसा जितना ही

अपना विकराल मुँह फैलाती, बृहत्काय श्री हनुमान उसके दुगुने आकार के विशाल हो जाते थे। जब उसने अपना मुंह सौ योजन का बनाया, तब श्री वायु पुत्र अँगूठे के समान अत्यन्त छोटा रूप धारण कर उसके मुख में प्रविष्ट हो गए।

सुरसा अपना मुंह बन्द करने ही जा रही थी कि महामति श्री आञ्जनेय उसके मुख से बाहर निकल आए और विनय पूर्वक कहने लगे—'माता! मैं तुम्हारे मुंह से जाकर निकल आया। तुम्हारी बात पूरी हो गयी। अब मुझे अपने प्रभु के आवश्यक कार्य के लिए जाने दो।'

सुरसा तो श्री राम दूत की केवल परीक्षा करना चाहती थी। उसने कहा—वायुनन्दन! निश्चय ही तुम ज्ञाननिधि हो। देवताओ ने तुम्हारी परीक्षा के लिए मुझे भेजा था। मैं तुम्हारे बल और बुद्धि का रहस्य समझ गयी; अब तुम जाकर श्री राघवेन्द्र का कार्य करो। सफलता तुम्हे निश्चय वरण करेगी। मैं हृदय से तुम्हें आशिष देती हूँ।'

सुरसा देव लोक के लिए प्रस्थित हुई और उग्रवेग श्री मारुतात्मज गरुड़ की भाँति आगे चले। मैनाकवन्दित वानर-शिरोमणि श्री राम दूत पवन के वेग से उड़ते हुए जा ही रहे थे, मार्ग में सिंहिका राक्षसी समुद्र में मिली। वह आकाश से उड़कर जाने वाले प्राणियों को उनके प्रतिबिम्ब के द्वारा खीचकर मार डालती थी। उस छाया ग्राहिणी सिंहिका आसुरी ने समुद्र से श्री पवन पुत्र की छाया पकड़ ली। हनुमान जी की गति अवरुद्ध हो गयी। आश्चर्य मे पड़े श्री राम दूत ने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, पर उन्हें कहीं कोई दीख न पड़ा। जब उन्होने नीचे दृष्टि डाली तो जल के ऊपर स्थूल शरीर वाली राक्षसी दीख पड़ी। बस, विशालकाय हनुमान जी वेग पूर्वक सिंहिका के

ऊपर कूद पड़े। भूधराकार, महातेजस्वी, महा शक्तिशाली पवन-पुत्र का भार वह राक्षसी कैसे सह पाती? पिसकर चूर्ण-चूर्ण हो गयी।

हनुमान जी का यह भयानक कार्य देखकर खेचर प्राणियों ने उनका स्तवन करते हुए कहा—'कपिवर! इस विशालकाय प्राणी को मार डालने का अद्भुत कर्म कर लेने पर अब आप आगे जा सकते हैं। वानरेन्द्र! जिस पुरुष में आपके समान धैर्य, समझ, बुद्धि और कुशलता—ये चारों गुण होते हैं, उसे अपने कार्य में कभी असफलता नहीं होती।'

आकाश में विचरण करने वाले प्राणियों के वचन सुनते हुए श्री पवनपुत्र दक्षिण दिशा की ओर अत्यन्त वेग पूर्वक जा रहे थे। कुछ ही देर में निर्विघ्न लंका के उस समुद्र-तट पर पहुँचे, जहाँ विविध प्रकार के सुगन्धित पुष्पों और फलों से लदे वृक्षों के सुन्दर बगीचे थे। वे भौंरों के गुञ्जार एवं अनेक प्रकार के सुन्दर पक्षियों के कलरव से निनादित थे। वहाँ मृग-शावक क्रीडा करते हुए प्रसन्नता पूर्वक इधर उधर दौड़ रहे थे। शीतल बयार बह रही थी। बड़ा ही मनोरम दृश्य था। वहाँ से त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बसी हुई चतुर्दिक् परकोटों एवं खाइयों से घिरी रावण की लंका पुरी स्पष्ट दीख रही थी।

आञ्जनेय ने एक बार चारों ओर देखा। फिर वे लंका में प्रविष्ट होने के लिए विचार करने लगे। उन्होंने सोचा—'दुर्धर्ष दशानन से युद्ध अनिवार्य है। अतएव यहाँ अपरिमित वानर-भालुओं की सेना के साथ प्रभु के ठहरने के स्थान और जल-फल के सुपास का भी पता लेना चाहिये। यह दुर्ग अत्यन्त दुर्गम प्रतीत होता है। अतएव आक्रमण की दृष्टि से यहाँ की एक-एक बात जान लेना नितान्त आवश्यक है। किन्तु इस विशाल वेष

में दिन के प्रकाश में तो असुरों को मेरे आगमन का रहस्य विदित हो जाएगा, अतएव रात्रि में सूक्ष्म वेष मे इस दुरूह दुर्ग के भीतर मेरा प्रवेश करना हितावह होगा।'

आञ्जनेय उछलकर एक पर्वत पर चढ गये और वहाँ से लका पुरी को देखने लगे। वह पुरी अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग थी और उसकी सुन्दरता अनिर्वचनीय थी। उसके चारों ओर समुद्र थे और उसके परकोटे सोने के बने थे। उसके सभी द्वार सुवर्ण-निर्मित थे। प्रत्येक द्वार पर नीलम के चबूतरे बने थे। वहाँ के सुविस्तृत पथ स्वच्छ एवं आकर्षक थे। रावण द्वारा पालित लका पुरी में स्थान-स्थान पर सुरम्य वन एवं निर्मल जल पूरित जलाशय विद्यमान थे। उसके निर्माण में जैसे विश्वकर्मा ने अपनी समस्त बुद्धि व्यय कर दी थी।

लका में सर्वत्र सशस्त्र विकराल सैनिकों की कठोर सुरक्षा-व्यवस्था थी। श्री विदेह नन्दिनी को हरकर लाने के बाद रावण ने वहाँ की रक्षा-व्यवस्था और सुदृढ़ कर दी थी। उसके चारो ओर विशाल धनुष-बाण धारण किये अनेक भयानक राक्षस सजग होकर अहर्निश घूमते रहते थे।

राक्षस राज रावण की पुरी लंका का यह दृश्य देखते हुए महावीर हनुमान सायकाल की प्रतीक्षा कर रहे थे। धीरे-धीरे सूर्यास्त हुआ।। श्री पवन नन्दन ने अणिमा-सिद्धि के द्वारा अत्यन्त छोटा रूप धारण कर मन-ही-मन श्री रघुनाथ जी के चरणों मे प्रणाम किया और उनकी पावनतम मूर्ति को हृदय में धारण करके लंका में प्रविष्ट हुए।

हनुमान जी के अत्यन्त लघु रूप धारण करने पर भी लका की अधिष्ठात्री देवी लंकिनी ने उन्हे देख लिया। उसने उन्हे डाँटते हुए कहा—'अरे तू कौन है, जो चोर की तरह इस

नगरी में प्रवेश कर रहा है। अपनी मृत्यु के पूर्व तू अपना रहस्य प्रकट कर दे।'

कपिश्रेष्ठ श्री हनुमान ने सोचा–'पहले ही इससे विवाद करना उचित नहीं। यदि और राक्षस आ गये तो यहीं युद्ध छिड़ जाएगा और माता सीता का पता लगाने के कार्य में विघ्न पड़ेगा।' बस, उन्होंने उसे स्त्री समझ कर उस पर बायें हाथ की मुष्टि से धीरे से प्रहार किया, पर वज्राङ्ग श्री हनुमान का मुष्टिक-प्रहार ! लंकिनी के नेत्रों के सम्मुख अँधेरा छा गया। वह रुधिर वमन करती हुई पृथ्वी पर गिरकर मूच्छित हो गयी, किन्तु कुछ ही देर बाद वह पुनः सँभली और उठकर बैठ गयी।

अब लंकिनी ने उन अम्भोधिलङ्घक वानर शिरोमणि से कहा–"श्री राम दूत हनुमान ! तुमने लंका पुरी पर विजय प्राप्त कर ली। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो ! अब सीता के कारण दुरात्मा रावण का विनाशकाल अत्यन्त निकट आ गया है। बहुत पहले चतुर्मुख ब्रह्मा ने मुझ से कहा था कि 'त्रेतायुग में साक्षात् क्षीरोदधिशायी अविनाशी नारायण दशरथ कुमार श्री राम-रूप में अवतीर्ण होंगे। उनकी सहधर्मिणी महामाया-रूपिणी सीता देवी का रावण हरण करेगा। उन्हें ढूंढ़ते हुए जब रात्रि में एक वानर लंका में प्रवेश करेगा और उसके मुष्टि-प्रहार से तू व्याकुल हो जाएगी, तब समझना कि अब असुर-वंश के ध्वंस होने में विलम्ब नहीं।' पर मेरा परम सौभाग्य है कि दीर्घ काल के अनन्तर आज मुझे उन भवाब्धिपोत श्री राम के प्रिय भक्त का अति दुर्लभ सङ्ग प्राप्त हुआ है। आज मैं धन्य हूँ। मेरे हृदय में विराजमान दशरथ नन्दन श्री राम मुझ पर सदा प्रसन्न रहें।"

परम बुद्धिमान् वानर शिरोमणि वायु नन्दन ने अत्यन्त

छोटा रूप धारण कर लिया और फिर वे करुणामय प्रभु का मन-ही-मन स्मरण कर विकट असुरों से सुरक्षित दुर्भेद्य लंका में प्रविष्ट हुए।

श्री केसरी-किशोर के समुद्रोल्लंघन एवं लंका-प्रवेश के साथ ही जगजननी जानकी एवं लंकाधिपति रावण की बायी भुजा और बायें नेत्र तथा समस्त सुरवन्दित दशरथ कुमार श्री राम के दायें अङ्ग फड़क उठे।

विभीषण से मिलन

कपिकुञ्जर श्री पवनपुत्र त्रैलोक्य वन्दनीया माता जानकी के दर्शनार्थ अत्यधिक व्याकुल और चिन्तित थे। इस कारण वे विकट असुरों से छिपते हुए विचित्र पुष्पमय आभरणों से अलङ्कृत लंका के प्रमुख स्थलों को अत्यन्त सावधानी पूर्वक देखने लगे। नगर के मध्य भाग में उन्हें रावण के बहुत से गुप्तचर दिखाई दिये। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक लाख सशक्त रक्षकों को रावण के अन्तःपुर के अग्रभाग में अत्यन्त सावधानी के साथ स्थित देखा। श्री अञ्जना नन्दन ने दशानन की वृहद् अश्वशाला गजशाला, अस्त्रागार, मन्त्रणा-गृह, छावनी आदि को अत्यन्त ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने माता सीता को ढूंढते हुए असुरों की अट्टालिकाओं में घूम-घूमकर उनके आहार-विहार, शयन तथा मनोरञ्जनादि के स्थल भी देखे। वहां वीरवर पवनपुत्र ने कितने ही ऐश्वर्य मद से मत्त निशाचरों एवं मदिरा पान से मतवाले राक्षसों को देखा। श्री राम दूत हनुमान ने उस त्रैलोक्यविजयी राक्षसराज रावण की लंका में बहुत से उत्कृष्ट बुद्धिवाले, सुन्दर बोलने वाले, सम्यक् श्रद्धा रखने वाले, अनेक प्रकार के रूप-रंग वाले और सुन्दर नामों से विभूषित प्रख्यात असुर देखे। पर

उन्हें श्री जनकनन्दिनी के न तो कहीं दर्शन हुए और न कहीं किसी के वार्तालाप से ही उनका कुछ संकेत प्राप्त हुआ।

अतएव इच्छानुसार रूप धारण करने वाले एवं अमित बल वैभव सम्पन्न श्री पवनकुमार माता सीता को ढूंढ़ते हुए सुवर्णमय परकोटों से घिरे राक्षसराज रावण के महलों में प्रविष्ट हुए। उस राजोचित सामग्रियों से पूर्ण, श्रेष्ठ एवं सुन्दर भवन को देखकर श्री समीर कुमार आश्चर्यचकित हो गये। उस भवन के द्वार पर चमचमाता सुवर्ण मढ़ा हुआ था और चाँदी से मढ़े चित्रों से उसकी शोभा अदभुत हो रही थी। उसकी रक्षा के लिये शस्त्र धारण किये लक्षाधिक प्रख्यात वीर सजग खड़े थे। समस्त सैनिकों ने अभेद्य कवच धारण कर रखे थे। हाथी, घोड़े, और रथ से भरे उस महल के अनूप रूप को देखकर श्री पवन कुमार अत्यन्त चकित हो रहे थे, किंतु उनके नेत्र श्री जनक दुलारी के अन्वेषण में ही लगे थे।

सर्वविद्याविशारद हनुमान जी उस भवन के आस पास के भवनों में घूम-घूमकर माता सीता का पता लगाने लगे। वे महाकपि कूदकर कुम्भकर्ण के भवन में पहुँचे। वहाँ से उछलते हुए वे महोहर, विरूपाक्ष, विद्युजिह्व और विद्युन्माली के घर गये। उन असुरों की अमित सम्पत्ति एवं महान् वैभव देखते हुए निर्भीक हनुमान जी उछलकर वज्रदंष्ट, शुक तथा बुद्धिमान् सारण के घरों में भी गये। वे माता सीता को ढूंढते हुए इन्द्रजीत जम्बुमाली तथा सुमाली के घर गये। वहाँ माता सीता को न देखकर अमित विक्रमशाली श्री राम भक्त हनुमान रश्मिकेतु, सूर्य शत्रु और वज्रकाय के महलों में जा पहुँचे। माता जानकी का पता लगाने के लिये श्री पवननन्दन अथक परिश्रम कर रहे थे। उन्होंने धूम्राक्ष, सम्पाति, विद्युद्रूप, भीम, घन, विघन,

चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, लोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, पिशाच और शोणिताक्ष नामक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध असुरों के घरों में जाकर अत्यन्त सावधानी पूर्वक देखा, किंतु वहाँ कहीं भी श्री जानकी के दर्शन न होने से वे पुनः रावण के भवन के समीप शीघ्रता से चले आये।

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी कूदकर रावण के महल के भीतर पहुँचे। वहाँ उन्होंने हाथों में शूल, मुग्दर, शक्ति, गदा, पट्टिश, कोदण्ड, मूसल, परिघ, भिन्दिपाल, भाले, पाश और तोमर आदि अस्त्र-शस्त्र धारण किये अगणित राक्षस एवं राक्षसियो को देखा। उन विशालकाय वीर राक्षस-राक्षसियो में अपार शक्ति थी। उनकी दृष्टि बचाते पिङ्गकेश श्री हनुमान अत्यन्त छोटे रूप में रावण के प्रत्येक कक्ष को ध्यानपूर्वक देखते जा रहे थे। वहाँ उन्होंने सुवर्ण के समान कान्तिवाला, अनेकानेक रत्नों से व्याप्त, भाँति-भाँति के पुष्पों से आच्छादित तथा पुष्पों के पराग से भरे हुए पर्वत शिखर के समान अत्यन्त उत्तम और अनुपम पुष्पक विमान को देखा। वह अपनी दिव्य कान्ति से प्रज्वलित-सा हो गया था। इस अद्भुत एव परम मनोहर विमान को देखकर हनुमान जी अत्यन्त विस्मित हुए, किंतु चारों ओर घूमकर देखने पर भी परमपूजनीया माता सीता को न पाकर उनकी चिन्ता बढ गयी।

चिन्तित श्री हनुमान जनक किशोरी को ढूँढने के लिये सहस्र प्रहरी राक्षसो से बचते राक्षसराज रावण के निजी आवास मे पहुँचे। रावण के उस निवास में राक्षसजातीय पत्नियाँ एवं हरकर लायी गई सहस्रो राजकन्याएँ रहती थीं। वहाँ पंक्तिबद्ध सुवर्णमय दीपक जल रहे थे। वहाँ के फर्श स्फटिक मणि से निर्मित थे और सीढ़ियाँ भी मणियों से ही बनी

थीं। वहाँ की खिड़कियाँ सोने की थीं। रावण का वह आवास स्वर्ग से भी श्रेष्ठ प्रतीत हो रहा था।

रात आधी से अधिक बीत चुकी थी। उस भवन में श्री पवनकुमार ने रंग-बिरंगे वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये अनेक प्रकार की वेष-भूषा से विभूषित सहस्रों सुन्दरी स्त्रियाँ देखीं। वे मद्यपान एवं अत्यधिक जागरण के कारण यत्र तत्र गाढ़ निद्रा में पड़ी थीं। उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। उन्होंने माता सीता को पहले कभी देखा तो था नहीं किंतु परम सती जननी का परम सात्विक एवं तेजस्वी रूप स्वयं पहचान में आ जाता, इस कारण श्री अञ्जनीकुमार उन सुन्दरियों को ध्यान पूर्वक देख रहे थे।

इधर उधर देखते हुए श्री केसरी-किशोर ने स्फटिक मणि से निर्मित एक दिव्य एवं श्रेष्ठ वेदी देखी, जिस पर महान् ऐश्वर्यशाली राक्षसाधिप रावण का रत्नों से निर्मित अत्यन्त अद्भुत एवं परम सुखद पर्यङ्क था। पर्यङ्क के चारों ओर खड़ी हुई बहुत सी स्त्रियाँ हाथों में चँवर लिये व्यजन डुला रही थीं। उस प्रकाशमान पर्यङ्क पर लंकाधिपति रावण सुखपूर्वक शयन कर रहा था। वहाँ ब्रह्मचारी हनुमान जी ने उसकी पत्नियों को भी देखा, जो उसके चरणों के आस-पास ही सो रही थीं। समीप ही उसको प्रसन्न करने वाली वीणावादिनी सुन्दरियाँ भी गम्भीर निद्रा में पड़ी थीं और अब भी कुछ के वक्ष पर उनकी वीणा पड़ी थी तथा उनकी सुकोमल अँगुलियाँ वीणा के तारों को स्पर्श कर रही थीं।

उन सबसे पृथक् अत्यन्त सुन्दर शैया पर सोई हुई एक अनुपम रूप लावण्य सम्पन्ना युवती को हनुमान जी ने देखा। उसके सुकोमल अङ्गों पर मोतियों और मणियों से जड़े हुए

विविध प्रकार के आभूषण सुशोभित थे। उसकी अंगकान्ति सुवर्ण की भाँति दमक रही थी। वह अनुपम रूपवती रावण की पत्नी मन्दोदरी थी। उसे देखकर हनुमान जी ने अनुमान किया कि ये ही जनकदुलारी सीता है। फिर तो उनके हर्ष की सीमा न रही। हर्षोन्मत्त होकर वे अपनी पूँछ पटकने और उसे चूमने लगे। वे वानरों की प्रकृति के अनुसार इधर उधर दौड़ने लगे। वे कभी खंभो पर चढ़ते तो फिर दूसरे ही क्षण कूदकर नीचे उतर आते।

किन्तु कुछ ही देर बाद सद्गुणगणनिलय पवन कुमार ने सोचा—'परम सती माता सीता परम प्रभु श्री राम के वियोग मे कभी शृंगार करके वस्त्राभरण धारण नहीं कर सकतीं वे न तो भोजन ही कर सकती हैं और न सुख पूर्वक शयन ही, मदिरा पान तो वे स्वप्न मे भी नहीं कर सकती, परम प्रभु श्री रघुनाथ जी के सौन्दर्य की तुलना देव, दानव, नाग, किन्नर अथवा धरित्री के किसी पुरुष से नहीं की जा सकती, फिर माता सीता जैसी पतिव्रता नारी परपुरुष के पास कैसे जा सकती है? अतएव निश्चय ही ये सीताजी नहीं हैं।'

फिर महामति हनुमान जी ने रावण के उस महान् भवन मे घूम-घूमकर सोती हुई सहस्रों सुन्दरियों को ध्यानपूर्वक देखा। सहसा उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ—'मैं यद्यपि बालब्रह्मचारी हूँ और भगवान् श्री राम का दूत हूँ। मैं जगदम्बा को ढूढने निकला हूँ, किंतु यहाँ मैंने जिस तरह गाढ निद्रा में सोयी हुई परायी स्त्रियों को देखा है, वह मेरे लिये उचित नहीं। मेरी दृष्टि अब तक कभी अपनी माता को छोड़कर किसी भी नारी पर नही पडी है, किंतु आज मैं धर्म से च्युत हो गया।'

धर्ममूर्ति वीरकर्मा हनुमान जी धर्म के भय मे शंकित हो

उठे, किंतु उनके तन, मन और प्राण में सर्वान्तर्यामी श्री राघवेन्द्र विराजमान थे। अतः दूसरे ही क्षण उनके मन का समाधान हो गया। वे विचार करने लगे—'इसमें संदेह नहीं कि रावण की स्त्रियाँ निःशंक होकर सो रही थीं और उसी अवस्था में मैंने ध्यान पूर्वक देखा है; किन्तु मेरे मन में किसी प्रकार का कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है। शुभारम्भ का प्रेरक तो मन है और मेरा यह मन पूर्णतया शान्त और स्थिर है; उसका कहीं राग या द्वेष नही है। इसलिये मेरे इस स्त्री-दर्शन से धर्म का लोप सम्भव नहीं। मै तो स्वेच्छा से उन स्त्रियों को देखना नहीं चाहता था, माता श्री जानकी को ढूँढ़ने और पहचानने के लिये ही उन पर दृष्टि डाली थी और स्त्री होने के कारण माता जानकी जी को स्त्रियों में ही ढूंढ़ा जा सकता था। मैंने श्री जनक नन्दिनी का अन्वेषण शुद्ध मन से ही किया है, अतएव मै सर्वथा निर्दोष हूँ।'

कामजित् श्री हनुमान जी माता जानकी जी को अन्य स्थलों में ढूंढ़ने लगे। उन्होंने लंका के बचे-खुचे गृह, वन, बाग, उपवन, वाटिका, वापी, कूप, मन्दिर, पशुशाला, अखाड़ा, सभाभवन, सैन्य-क्षेत्र एवं गुप्त-से-गुप्त स्थानों को भी देख लिया। इस प्रकार वे अत्यन्त सजग होकर सम्पूर्ण रात्रि माता सीता को ढूंढ़ते ही रहे, किन्तु उनका कहीं पता न चला। वायु पुत्र उदास हो रहे थे और इधर रात्रि बीत रही थी। ब्रह्म-मुहूर्त समीप आ रहा था।

सहसा हनुमान जी की दृष्टि एक अतिशय पवित्र भवन पर पड़ी, जहाँ श्री भगवान का एक मन्दिर भी सुशोभित था। उस भवन की दीवार पर सर्वत्र अनेक अवतारों तथा लीलाओं के चित्र और राम-नाम अंकित थे तथा उसके द्वार पर श्री

राघव के आयुध--धनुष-बाण बने हुए थे। वहाँ मणियों के प्रकाश में केसर और पुष्पों के साथ क्यारियों में तुलसी के पौधे स्पष्ट दीख रहे थे। यह देखकर हनुमानजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। अरे ! यहाँ धर्म-कर्म, वेद-पुराण, यज्ञ-याग, गौ, द्विज, देव एवं श्री भगवान के सहज शत्रु राक्षसों की पुरी में यह मन्दिर कैसे ?

उसी समय रावण के अनुज महात्मा विभीषण शय्या त्यागकर भगवान् श्रीराम का स्मरण करने लगे। उनके मुंह से श्री राम का नाम सुनते ही श्री पवनपुत्र के मन मे विश्वास हो गया कि ये निश्चय ही भगवद्भक्त पुरुष हैं। शरणागत वत्सल हनुमानजी तुरन्त ब्राह्मण का वेष धारण कर भगवान का नाम लेने लगे।

'राम'-नाम सुनते ही विभीषण तुरन्त बाहर निकले। उन्होंने ब्राह्मण-वेषधारी विश्व-पावन पवनपुत्र के चरणो मे अत्यन्त आदर पूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने पूछा 'ब्राह्मण देवता ! आप कौन है ? मेरा मन कहता है कि आप श्री भगवान के भक्तो मे कोई हैं। आपके दर्शन कर मेरे हृदय मे अतिशय प्रीति उत्पन्न हो रही है। अथवा आप अपने भक्तो को सुख प्रदान करने वाले स्वय मेरे स्वामी श्री राम ही तो नहीं है, जो मुझे कृतार्थ करने यहाँ पधारे हैं ! कृपया मुझे अपना परिचय दीजिए।'

ससार-भय-नाशन श्री अञ्जना नन्दन ने अत्यन्त प्रेमपूर्ण मधुर वाणी मे उत्तर दिया--"मैं परमपराक्रमी पवन देव का पुत्र हूँ। मेरा नाम 'हनुमान' है। मैं भगवान् श्री राम की पत्नी जगजननी जानकी जी का पता लगाने के लिए उनके आदेशानुसार

यहाँ आया हूँ। आपको देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कृपया आप भी अपना परिचय दीजिये।"

भगवान् श्री राम की स्मृति से एवं उनके दूत हनुमानजी को संम्मुख देखकर विभीषण की विचित्र स्थिति हो गयी। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आए, अङ्ग पुलकित हो गए और वाणी अवरुद्ध हो गयी। किसी प्रकार अपने को संभाल कर उन्होंने अत्यन्त आदर पूर्वक कहा - 'हनुमान जी! मैं राक्षस राज रावण का अनुज अधम 'विभीषण हूँ। किन्तु आज आपके दर्शन कर मैं अपने सौभाग्य की प्रशंसा करता हूँ। मैं तो इस असुर-पुरी में दाँतों के मध्य जीभ की भाँति जीवन के दिन व्यतीत कर रहा हूँ।'

विभीषण ने हनुमान जी से कहा 'पवन पुत्र! मैं राक्षस-कुलोत्पन्न तामसिक प्राणी हूँ। मुझसे भजन होता नहीं और अशरणशरण भवाब्धिपोत प्रभु के चरणों में मेरी प्रीति भी नहीं है। फिर क्या दयाधाम सीतापति श्री राम कभी दीन-हीन, असहाय, निरुपाय और सर्वथा अनाथ जान कर मुझ पर भी कृपा करेंगे? क्या मुझे भी उनके सुर-मुनि-सेवित चरण कमलों की पावनतम रज प्राप्त हो सकेगी? इतना तो मेरे मन में सुदृढ़ विश्वास हो गया कि भगवत्कृपा के विना संतों का दर्शन नहीं होता। आज जब करुणामय श्री राम ने मुझ पर अनुग्रह किया है, तभी आपने कृपा पूर्वक स्वयं मुझ अधम के द्वार पर पधारने का कष्ट स्वीकार किया है।'

भक्तानुकम्पी श्री पवन पुत्र भक्त विभीषण की भगवत्-प्रीति देखकर मन-ही-मन पुलकित थे। उन्होंने विभीषण से अत्यन्त प्रीति पूर्वक मधुर वाणी में कहा - 'विभीषणजी! आप बड़े भाग्यवान् हैं। जिन करुणावतार प्रभु की भक्ति योगीन्द्र-मुनीन्द्रों

को भी सुलभ नहीं, वह प्रभु-चरणों में अद्भुत भक्ति आपको सहज प्राप्त है। भगवान्-श्री राम जाति-पाँति, कुल, मान-बड़ाई आदि की ओर भूलकर भी दृष्टि-नहीं डालते। वे तो बस, निश्छल हृदय की प्रीति–केवल शुद्ध प्रीति चाहते हैं और इस प्रीति पर वे भक्तो के हाथो बिक जाते है, उनके पीछे-पीछे डोलते हैं। आप देखिये न, भला मैंने किस श्रेष्ठ वंश में जन्म लिया है। सब प्रकार से नीच चञ्चल वानर हूँ ! यदि प्रातःकाल कोई हम लोगो का नाम भी ले ले तो उसे उपवास करना पड़े। इस प्रकार के मुझ अधम पर भी भक्तवत्सल प्रभु ने कृपा की। उन्होंने मुझे स्वजन और सेवक बना लिया। फिर आप तो उन्हे अपना सर्वस्व समझ रहे है; निश्चय ही आप पर उनकी अद्भुत कृपा है। आप बड़े भाग्यवान् है। इस असुरपुरी मे आपसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह भी मेरे स्वामी श्री रघुनाथ जी की ही कृपा का फल है।'

श्री राघवेन्द्र के शील-स्वभाव के गुण-गान मे दोनो भक्त इतने तल्लीन थे कि उन्हें समय तो क्या, अपने शरीर का भी भान नहीं था। दोनो के अङ्ग पुलकित थे, दोनो के नेत्र प्रेमाश्रुओ से भरे थे। दोनो एक-दूसरे को पाकर अत्यन्त सन्तुष्ट, सुखी एवं आनन्द विह्वल थे।

कुछ सावधान होकर श्री पवन पुत्र ने उनसे कहा –'भाई विभीषण ! मैं तो प्रभु के आदेशानुसार माता का पता लगाने यहाँ आया हूं। अब समय बहुत कम है। सूर्योदय के अनन्तर प्रकाश में जननी के समीप पहुँचना कठिन होगा। उधर समुद्र के उस पार तट पर बैठे कोटि-कोटि वानर-भालू उत्सुकता से मेरे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे है। मे स्वयं मातृ दर्शन के लिए

अधीर हो रहा हूँ। आप मुझे जननी का पता बतायें। उनके दर्शन कहाँ होंगे ?

विभीषण ने बताया—'यहाँ से थोड़ी दूर राज सदन के समीप रावण की सर्वाधिक प्रिय अशोक-वाटिका है। उस वाटिका में विविध प्रकार के सुगन्धित सुमनों एवं अनेक प्रकार के सुस्वादु फलों से लदे सहस्रों वृक्ष हैं। वाटिका में सर्वत्र भ्रमर गुञ्जार एवं पक्षी कलरव करते रहते है।

'वाटिका के मध्य मे निर्मल जल से पूरित एक अतिशय सुन्दर सरोवर है, सरोवर के तट पर असुरों के कुलपूज्य भगवान् शंकर का एक विशाल एवं रमणीय मन्दिर है। वहाँ प्रख्यात सशस्त्र असुर योद्धा एवं प्रसिद्ध सशस्त्र राक्षसियाँ अहर्निश पहरा देती रहती है।

'शिव-मन्दिर से कुछ ही दूर अत्यन्त सघन और ऊँचा एक अशोक का वृक्ष है। माता सीता उसी अशोक तरु के नीचे बैठी हुई प्रभु के वियोग में रोती रहती है। उनके लंबे काले केश उलझकर एक जटा के रूप में बन गये है। अन्न-जलका त्याग करने के कारण उनका शरीर सूख गया है। वे पीली पड़ गयी हैं उनके शरीर पर एक मैली साड़ी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

'अत्यन्त क्रूर राक्षसियाँ उन्हें रात-दिन डराया-धमकाया करती हैं। उनके पास पहुँचना भी कठिन है। मेरी पत्नी और ज्येष्ठ पुत्री कला कभी-कभी उनके दर्शनार्थ वहाँ जाकर उन्हें कुछ संतोष दे आती हैं। मै तो माँ की करुण दशा की स्मृति से सिहर उठता हूं। सशस्त्र प्रहरी क्रूरतम राक्षस है आप अत्यन्त सावधानी पूर्वक जाइये।'

जगजननी श्री जानकी की करुण दशा सुनकर दया

मूर्ति श्री अञ्जनानन्दन दुःख से छटपटा उठे। उन्होंने विभीषण को गले लगाते हुए कहा 'विभीषण जी ! आप चिन्ता न करें। उन सर्व समर्थ प्रभु की दया से मैं जननी के दर्शन कर लूंगा।'

श्री हनुमान जी ने पुनः छोटा रूप धारण किया और अशोक-वाटिका के लिए तीव्र गति से चल पड़े।

सीता माता के चरणों में

ब्रह्म-वेला! असुर यत्र-तत्र निद्रामग्न थे। श्री राम परायण पवन पुत्र को अशोक-वाटिका पहुँचने में कोई विघ्न नहीं हुआ। वहाँ वे वाटिका, निर्मल सरोवर एवं अद्भुत देवालय आदि की अमित शोभा की ओर कैसे दृष्टिपात करते ? वे तो माता सीता के दर्शनार्थ आतुर थे; सीधे अशोक-वृक्ष पर पहुँचे और उसके सघन पत्तों में छिपकर बैठ गये। उन्होंने नीचे देखा—

करुणा एवं सतीत्व की परम तेजस्विनी मूर्ति माता सीता चरणों की ओर नेत्र झुकाये चुपचाप बैठी थीं। उनके नेत्रों से रह-रहकर अश्रुपात हो रहा था।

जगज्जननी श्री जानकी के दर्शन कर श्री राम-भक्त अञ्जना नन्दन अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके आह्लादकी सीमा न थी। अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए उन्होंने मन-ही-मन कहा 'आज जानकी जी को देखकर मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया। अहा! परमात्मा श्री राम के कार्य की सिद्धि में मैं ही निमित्त बना।'

माता की दयनीय दशा देखकर हनुमानजी दूसरे ही क्षण अत्यन्त दुःखी हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि क्या करूँ ? उसी समय कोलाहल सुनकर श्री पवन नन्दन अशोक के सघन

पत्तों में सावधान होकर छिप गये और माता जानकी जी उरसे सिकुड़कर बैठ गयीं। श्री पवन पुत्र ने दूर से देखा अनेक सुन्दरी राक्षसियों से गिरा कज्जलगिरि-तुल्य दशमुख रावण चला आ रहा है। उन स्त्रियों के साथ रावण की महारानी मन्दोदरी भी थी।

जनक दुलारी के समीप आकर रावण कहने लगा—'जनकनन्दिनी ! तुम मुझसे क्यो डरती हो ? मैं तुम्हे प्राणों से अधिक चाहता हूँ; तुम व्यर्थ ही क्यों कष्ट सह रही हो ? तुम्हारा दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। उस वनवासी राम में क्या रखा है ? उसमें यदि किसी प्रकार की शक्ति होती तो वह अब तक कभी का आकर तुम्हें ले गया होता; किन्तु मै त्रैलोक्य-विजयी हूं। मनुष्य तो क्या, देवता, असुर, नाग और किनरादि सभी मेरे नाम से कांपते हैं। इस त्रिकूटस्थित लंका के दुर्भेद्य दुर्ग में एक पक्षी का भी प्रविष्ट होना सम्भव नहीं, फिर वह वनवासी राम शतयोजन सागर पार कर यहाँ कैसे आ सकेगा ? वह तो सर्वथा असमर्थ, निर्मम, अभिमानी, मूर्ख और अपने को बड़ा बुद्धिमान् मानने वाला है; पर अब उससे तुम्हें क्या लेना है ? तुम मेरी बनकर रहो; फिर देव, गन्धर्व, नाग, यक्ष और किन्नर आदि की स्त्रियां तुम्हारी सेवा करेंगी। मै पूर्ण समर्थ हूँ। यदि चाहूं तो तुम्हे बलपूर्वक ग्रहण कर सकता हूं, किन्तु मैं तुम्हे हृदय से प्यार करता हूं, इस कारण क्लेश देना उचित नहीं समझता। तुम स्वयं मान जाओ, इसी में तुम्हारा कल्याण है।

माता सीता के मन पर प्रलोभन का कोई प्रभाव होते न देख दशानन ने आगे कहा—'सुन्दरी सीता ! देख, जब तक मुझे रोष नहीं आता, तब तक मेरे पक्ष में निर्णय कर ले; अन्यथा यदि मुझे तनिक भी क्रोध उत्पन्न हुआ तो मै अपनी तीक्ष्ण

तलवार के एक ही वार से तेरा मस्तक धड़ से अलग कर दूँगा। तेरे शरीर का मांस गीध और कौए खायेंगे या राक्षस और राक्षसियाँ तुझे कच्चा ही चबा जायेंगी।

क्रूरतम दशमुख की विष-दग्ध शर-तुल्य वाणी से माता जानकी जी तनिक भी भयभीत एवं विचलित नहीं हुई। उन्होंने अपने सम्मुख एक तृण रख सिर नीचा किये कहा—'अधम राक्षस! तुझे जो कुछ करना है, शीघ्र कर ले। तेरे-जैसे पापी के द्वारा यन्त्रणा पाने की अपेक्षा मृत्यु कही अच्छी है। अपने को त्रैलोक्य विजयी बताने वाले नीच कुत्ते! तू मेरे प्राणनाथ की अनुपस्थिति में मुझे चुरा कर ले आया और यहां अपने घर में असहाय नारी के सामने डींग हाँक रहा है ? तू तभी तक प्रलाप कर रहा है, जब तक श्री राघवेन्द्र लंका में पदार्पण नहीं करते। पर तू देखेगा, निकट भविष्य में तेरी सोने की लंका अग्नि में जलकर राख हो जाएगी और तू अपने बान्धवो एवं कुटुम्बियों सहित मेरे स्वामी के अमोघ शरकी भेंट चढ़ जाएगा। जिस समय श्री कोशलेन्द्र की बाण-वर्षा से विदीर्ण होकर तू यमलोक को जायेगा, उसी समय उनके प्रताप को समझ सकेगा। वे प्रभु जब तक यहाँ से दूर हैं, तब तक तू पागलो की तरह इच्छानुसार प्रलाप कर ले।'

श्री राम-वियोगिनी सती सीता जी के कठोर वचन सुनते ही दशानन के नेत्र लाल हो गये। क्रोधोन्मत्त रावण तलवार निकालकर श्री जनक किशोरी की ओर दौड़ा, किन्तु उसे रोकती हुए उसकी पत्नी मन्दोदरी ने प्रेम पूर्वक समझाया—'नाथ! आप इस दीना, क्षीणा, दुखिया एवं कातर मानवी को छोड़ दीजिये। इसमें क्या रखा है ? आपको तो वरण करने के लिये देव,

गन्धर्व एवं नागादिकों की परम लावण्यवती स्त्रियां प्रतिक्षण प्रस्तुत हैं।'

मन्दोदरी के पैरों पड़ने एवं अनुनय विनय करने से रावण ने पुनः क्रोध पूर्वक भगवती श्री सीता से कहा—'जानकी! देख, आज तो मैं तुझे छोड़ देता हूं, किन्तु यदि एक मास में तू मेरी बात नहीं मानेगी तो मैं निश्चय ही तुझे अपने हाथों मार डालूँगा। अच्छा तो यही है कि तू यथाशीघ्र निर्णय कर ले।'

तदनन्तर दशानन ने अत्यन्त भयानक बदन वाली राक्षसियों को आदेश देते हुए कहा -'निशाचरियो! यह सीता आदर, प्रलोभन, भय या जिस प्रकार से मेरे अनुकूल हो जाय, वही प्रयत्न करो। यदि एक मास के भीतर यह मेरे वश में हो गयी, तब तो यह मेरे महान् राज्य-सुख का उपभोग करेगी और यदि इसने अपना निश्चय नहीं बदला तो इकतीसवें दिन इस मानवी को मारकर मेरा प्रातः कालीन कलेवा बना देना।'

रावण चला गया और उसके इच्छानुसार अनेक भयानक राक्षसियाँ दुःखिनी श्री जनक किशोरी को विविध प्रकार से डराने-धमकाने लगीं। यह दृश्य देखकर श्री पवनात्मज क्षुब्ध हो उठे। उनके जी में आया—इन नीच राक्षसियों को अभी मसलकर फेंक दूँ; किन्तु नीतिनिपुण मेधावी हनुमान जी ने भगवान श्री राम का कार्य पूरा करने के लिए धैर्य से काम लिया।

उन अत्यन्त निर्मम एवं दुष्टा राक्षसियों के द्वारा पति-वियोगिनी माता सीता को डरायी जाते देख बूढ़ी राक्षसी त्रिजटा, जो तत्काल सोकर उठी थी, उन सबसे कहने लगी—अधम निशाचरियो! निश्चय ही तुम लोगों के बुरे दिन समीप

आ गये है, अन्यथा तुम लोग दौर्भाग्य-नाशन श्री राम की पत्नी देवी सीता के सम्मुख इस प्रकार का दुःखद आचरण नहीं करतीं। देखो, मैंने अभी-अभी एक भयकर और रोमाञ्चकारी स्वप्न देखा है, जो दशानन सहित समस्त राक्षस-वंश के विनाश एव देवी सीता के अभ्युदय का सूचक है।'

त्रिजटा की बातों को सुनकर राक्षसियाँ भयभीत हो गयी और वे स्वप्न के सम्बन्ध मे उससे आग्रह पूर्वक बार-बार पूछने लगीं। त्रिजटा ने उन्हें बताया 'मैंने स्वप्न मे मूड़, मुडाये, तेल से नहाकर काले कपडे पहने हुए मदिरा से उन्मत्त रावण को मैंने पुष्पक-विमान से धरती पर गिरते हुए देखा। मुण्डित मस्तक रावण ने काले वस्त्र पहन रखे थे और उसे एक स्त्री कही खीचे लिये जा रही थी। शरीर पर लाल चन्दन का लेप किये और लाल पुष्पों की माला धारण किये रावण तेल पीता, हंसता, नाचता गधे पर बैठ कर दक्षिण दिशा की ओर जा रहा था। एक मात्र विभीषण को छोडकर मैंने स्वप्न में रावण के समस्त पुत्रों एवं सेनापतियो को मुण्डित मस्तक और तेल मे नहाये देखा है। मैंने यह भी देखा है कि रावण सुअर पर, मेघनाद सूस पर और कुम्भकर्ण ऊँटपर सवार होकर दक्षिण दिशा को गये है। इतना ही नही, मैंने स्वप्न मे यह भी देखा है कि एक मूँगे के समान लाल मुख वाले महा-तेजस्वी वानर ने अनेक असुरो को मृत्यु के मुख मे ढकेल कर लंका मे आग लगा दी है। वह जलकर भस्म हो गयी। मेरे विचारानुसार प्रातःकाल का यह स्वप्न शीघ्र ही सत्य सिद्ध होगा।'

बुद्धिमती वृद्धा त्रिजटा ने अन्त मे राक्षसियो को उपदेश देते हुए कहा निशाचरियों! जो चक्रवर्ती सम्राट् की पुत्र वधू

सती सीता राज्य के समस्त सुख और वैभव को ठोकर मारकर अपने वीर पति के साथ अरण्य में चली आयी, श्री रघुनाथ जी के साथ कुश, कण्टक और कंकरीले बीहड़ पथ में कष्ट उठाती हुई सुख का अनुभव करती रही, उस अपनी पतिव्रता भार्या और परमादरणीया प्रियतमा सीता का, इस प्रकार धमकाया और डराया जाना कौसल्या नन्दन श्री राम किस प्रकार सहन कर सकेंगे ? तुम सबकी दुर्दशा होगी। तुम्हें कहीं शरण नहीं मिलेगी। अत: इन्हे कठोर एवं दुर्वचन कहना छोड़ कर इनका सम्मान करो। इनके साथ मधुर वाणी का व्यवहार करो और इन विदेह-नन्दिनी से कृपा और क्षमा की याचना करो, इसी में तुम लोगों का हित है।'

वृद्धा राक्षसी त्रिजटा के वचन सुनकर राक्षसियाँ भयभीत हो गयीं और वे माता सीता के चरणों में सिर रखकर उनसे क्षमा की प्रार्थना करके वहाँ से चली गयीं। माता सीता के दु:ख की सीमा न थी। उन्होंने व्याकुल होकर त्रिजटा से कहा—'माता ! तुम इस विपत्ति काल में मेरी सहायिका सिद्ध हुई हो, किन्तु अब प्राणनाथ के वियोग में इन भयंकर राक्षसियों के बीच में जीवित रहने से कोई लाभ नहीं। तुम मेरी थोड़ी और सहायता करो। कुछ सूखी लकड़ियां जुटा दो और थोड़ी-सी आग ला दो, जिससे मैं चिता बनाकर उसमें अपना यह शरीर जला दूं। मैं तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलूंगी। अब यह कष्ट मुझसे नहीं सहा जा रहा है !'

माता सीता फूट-फूट कर रो रही थीं। उनके दु:ख से दु:खी वृद्धा त्रिजटा ने उन्हें अनेक युक्तियों से समझाया और फिर वहाँ से चली गयी। माता का रुदन सुनकर वृक्ष पर छिपे बैठे वज्राङ्ग श्री हनुमान का हृदय जैसे विदीर्ण होने लगा।

उनके नेत्रों में अश्रु भर आये, पर उन्होंने माता के डर जाने की आशंका से सहसा उनके सम्मुख जाना उचित नहीं समझा। माता सीता ने दुःख के आवेग में शरीर छोड़ देना ही उचित समझा। उन्होंने सोचा—फाँसी लगा कर मर जाने के लिये तो मेरी वेणी ही पर्याप्त होगी। प्राण त्याग देने का निश्चय कर दुःखिनी श्री विदेह नन्दिनी उठकर खड़ी हो गयीं; उनके नेत्रों से आँसू बह रहे थे।

माता को इस प्रकार प्राणान्त करने का निश्चय करते देख सूक्ष्म रूप धारी पवन पुत्र अत्यन्त मधुर स्वर में कहने लगे—'प्रख्यात इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे। उनके त्रैलोक्य-विख्यात श्री राम लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न देवताओं के समान शुभ लक्षणों से सम्पन्न चार पुत्र हैं। उनमे बड़े भाई श्री राम अपने अनुज लक्ष्मण तथा अपनी प्राणाधिका सहधर्मिणी जनक दुलारी के साथ पिता की आज्ञा का पालन करने लिये राज्य त्यागकर वन में आये। वे ऋषि-मुनियों का दर्शन करते दण्डकारण्य में पहुँचे। वे करुणावतार श्री राम गौतमी नदी के तट पर पञ्चवटी आश्रम में रहते थे। श्री राम की अनुपस्थिति मे लंकापति दुष्ट दशानन उनकी सती पत्नी सीता देवी को छल पूर्वक हर ले गया। लौटने पर कुटिया में श्री सीता को न पाकर श्री राम व्याकुल हो गये। लक्ष्मण के साथ श्री सीता को ढूँढ़ते हुए शोका-कुल श्री राम मार्ग में जटायु को परमधाम भेजकर ऋष्यमूक पर्वत पर आये। वहाँ कपिराज सुग्रीव से उनकी मैत्री हुई। सुग्रीव का बड़ा भाई बाली उसका शत्रु था। प्रलम्बाहु श्री राम ने वीरवर बाली को एक ही बाण से मार डाला और सुमित्रा कुमार ने सुग्रीव को किष्किन्धा के राज्यपद पर अभिषिक्त

किया। किष्किन्धा के राजा वानरराज सुग्रीव ने विदेहनन्दिनी श्री सीता का पता लगाने के लिये कोटि-कोटि वीर वानर-भालुओ को चारो दिशाओ मे भेजा है। मैं उन्हीं कपिराज सुग्रीव का भेजा हुआ एक तुच्छ वानर हूं। मार्ग में जटायु के भाई सम्पाति से भेंट हुई। उन्होंने जनकनन्दिनी का पता बताया। उन्हीं के निर्देशानुसार माता सीता को ढूढते हुए विभीषण से भेंट हो गयी। उनके बताये अनुसार मैने यहाँ महारानी सीता का दर्शन प्राप्त किया। उनका दुःख देखकर मेरा धैर्य छूट रहा है, पर मेरी यात्रा सफल हो गयी।'

प्राणाराध्य श्री राम का वृत्तान्त सुनकर माता जानकी के आश्चर्य की सीमा न रही। वे मन-ही-मन सोचने लगीं–यह सत्य है, अथवा मै स्वप्न देख रही हूं, पर नीद तो मुझे आती नहीं, फिर स्वप्न कैसे देख सकती हू ? जब मैं सुस्पष्ट वाणी सुन रही हूं, तब यह भ्रम भी नही। माता ने कहा–'जिन महा-भाग ने मेरे प्राणनाथ का अमृतोपम सवाद सुनाया है वे मेरे सम्मुख आयें।'

माता सीता का आदेश पाते ही श्री राम भक्त हनुमानजी धीरे-धीरे वृक्ष से उतरे। उन्होने अत्यन्त श्रद्धा और विनयपूर्वक माता के चरणो मे मस्तक झुकाकर प्रणाम किया।

अत्यन्त कुटिला राक्षसियो के बीच पति-वियोग से दुःखिनी श्री जनक नन्दिनी अपने सम्मुख विद्युत्पुञ्ज के समान, अत्यन्त पिङ्गलवर्ण वाले एव पक्षी के बराबर आकार के वानर को देखा तो वे सहम गयीं। वानर के नेत्र तपाये हुए सुवर्ण के समान चमक रहे थे। उस टेढ़े मुखवाले नन्हे-से वानर को देखकर माता ने सोचा 'मुझे छलपूर्वक फंसाने के लिये मायावी रावण ने यह

माया रची है।' अवनतवदना माता सीता व्याकुल होकर सिसकने लगीं।

भगवती सीता को नीचे मुख किये रोते देखकर श्री अञ्जना नन्दन ने व्याकुल होकर कहा—'माता ! आप किसी प्रकार की शङ्का न करें। मैं करुणा-निधान श्री राम की शपथ लेकर कहता हूं कि मैं प्रभु श्री राम का दास और कपिराज सुग्रीव का सचिव हू। उनके भेजने से आपका पता लगाने के लिये ही मै यहाँ आया हूं। मेरे पिता परमपराक्रमी पवन देवता हैं।'

अपने सम्मुख श्रद्धापूर्वक सिर झुकाये बद्धाञ्जलि श्री पवन नन्दन को देखकर माता जानकी ने कहा—'तुम अपने को श्री रघुनाथ जी का दास कहते हो; किन्तु मनुष्य और वानर का साथ कैसे सम्भव है ?'

हाथ जोड़े हनुमान जी ने अत्यन्त विनय पूर्वक उत्तर दिया—'माता ! शबरी की प्रेरणा से सानुज श्री राम ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुचे। गिरि-शिखर पर बैठे सुग्रीव ने मुझे उनका पता लगाने के लिए भेजा। मै ब्राह्मण के वेष से प्रभु के समीप पहुचा। परिचय हो जाने पर मै लक्ष्मण सहित प्रभु श्री राम को अपने कंधे पर बैठाकर सुग्रीव के पास ले गया। वहाँ मैंने प्रभु की सुग्रीव से मैत्री करा दी। राज्य से बहिष्कृत सुग्रीव प्रभु-कृपा से ही राज्य सुख का उपभोग कर रहे है। उन्हीं की आज्ञा से मै यहाँ आया हूं। आते समय प्रभु ने पहचान के लिए अपनी मुद्रिका भी मुझे दी थी।'

हनुमान जी ने माता जानकी को मुद्रिका दे दी। प्रभु की प्रकाश विखेरने वाली रत्न-जटित राम नामांकिता दिव्य अंगूठी को जानकी जी ने ध्यान पूर्वक देखा। फिर तो उनके

आनन्द-की सीमा न रही। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे।

श्री राम दूत हनुमान पर पूर्ण विश्वास हो जाने पर माता जानकी ने उनसे कहा—'पवन पुत्र! तुमने मेरा प्राण बचा लिया। निश्चय ही तुम मेरे स्वामी के अनन्य भक्त हो। मेरे स्वामी तुम्हारा पूर्ण विश्वास करते हैं; अन्यथा वे किसी पर-पुरुष को मेरे पास नहीं भेजते। हनुमान! तुमने मेरी विपत्ति देख ली है। इन क्रूरतम निशाचर-निशाचरियों के बीच में किस प्रकार जीवित हूं, यह तुम्हारे सामने है। तुम श्री रघुनाथ जी से निवेदन करना कि आपके वियोग में मैं किस प्रकार जीवन धारण करूं? अवधि बीतने पर पापी राक्षस मुझे मार डालेगा। यदि वे प्रभु मुझे जीवित देखना चाहते हों तो इस एक मास के भीतर ही यहाँ पधारकर राक्षस-वंश का संहार करें। अञ्जना नन्दन! तुम भी उनसे इस युक्ति से बात करना, जिससे मेरे प्राणनाथ तुरन्त यहां आकर असुरों को मार कर मेरा उद्धार करें।

भगवती सीता ने व्याकुल होकर आगे कहा—'हनुमान! मुझ डूबती हुई के तुम बड़े सहायक सिद्ध हुए। मै तो प्रभु के बिना जल-हीन मीन की तरह तड़फ रही हूँ; पर क्या दयानिधान प्रभु भी कभी मेरा स्मरण करते हैं?'

बद्धाञ्जलि श्री हनुमान ने विनय पूर्वक उत्तर दिया—"जननी! आपके वियोग में श्री रघुनाथ जी के दुःख का वर्णन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। आर्ये! आपको न देखने के कारण श्री रघुनाथ जी का हृदय शोक से भरा रहता है। उनका चित्त सदा आप में ही लगा रहता है, इस कारण उन्हें अपने शरीर पर चढ़े डांस, मच्छर और कीड़े आदि को हटाने की भी सुध

नहीं रहती। श्री राम निरन्तर आपके वियोग-वह्नि में जलते रहते हैं। आपके अतिरिक्त वे अन्य कुछ सोचते ही नहीं। आपकी चिन्ता के कारण एक तो उन्हें नींद नहीं आती और कुछ देर के लिए आयी भी तो वे 'सीता-सीता' कहते हुए जग जाते है। माता! आप प्रभु के सम्बन्ध में तनिक भी ग्लानि मत कीजिए। उन प्रेम मूर्ति प्रभु के हृदय में आपके प्रति आप से दूना प्रेम है। करुणा निधान प्रभु ने सजल नेत्रों से आपको संदेश भेजते हुए कहा है—'सीते! तुम्हारे बिना मुझे सृष्टि की समस्त वस्तुएँ दुःखदायिनी हो गई है। मन का दुःख कहने से कुछ कम हो जाता है; पर किससे कहूँ? मेरा दुःख जानेगा कौन? प्रिये! मेरे और तेरे प्रेम का तत्व (रहस्य) एक मेरा मन जानता है और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ लेना।''

जीवन धन श्री रघुनाथ जी का सन्देश सुनकर श्री सीता जी आनन्द-मग्न हो गयी। उन्होंने हनुमान जी से कहा—'सुव्रत! अब तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिससे प्रभु यथाशीघ्र मुझे यहाँ से ले जायँ। देर न हो।'

विनीतात्मा श्री पवनपुत्र ने उत्तर दिया 'माता! अब आप चिन्ता मत कीजिये। आप हृदय मे धैर्य धारण कीजिये और परम प्रभु श्री राम का स्मरण करती रहिये। प्रभु के चरणो में केवल मेरे पहुँचने मात्र की देर है। आपका पता मिलते ही सर्व समर्थ दयाधाम श्री राम यहाँ आकर राक्षसों को दण्ड देंगे और आपको अत्यन्त आदर और प्रीति पूर्वक यहाँ से ले जायेंगे। स्वामी ने मुझे आज्ञा नहीं दी है; अन्यथा मै अभी आपको अपनी पीठ पर बैठाकर ले जाता और श्री भगवान् के चरणों में पहुंचा देता।'

टेढे मुखवाले छोटे-से वानर हनुमान के मुख से इस प्रकार की वाणी सुनकर माता सीता को हँसी आ गयी। उन्होंने पूछा—'बेटा हनुमान ! यहां के वीर राक्षसों को तुमने देख ही लिया है। उनकी शक्ति की सीमा नहीं है। पर सुग्रीव के साथ क्या सभी वानर तुम्हारी ही तरह लघुकाय हैं ? मेरे मन में बड़ा सन्देह हो रहा है।'

फिर क्या था ? देखते-ही-देखते श्री पवनकुमार का शरीर सुमेरु पर्वत के समान आकाश से जा लगा। प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, पर्वत-तुल्य विशालकाय, तांबे के समान लाल मुख, वज्र के समान दंष्ट्रा और तीक्ष्ण नखवाले भयानक महाबली वानर वीर हनुमान विशालकाय होकर माता सीता के सामने खड़े हो गये और उन्होंने दोनो हाथ जोड़कर अत्यन्त विनय पूर्वक श्री जानकी जी से कहा—'माता ! मै वन, पर्वत, अट्टालिका, चहारदिवारी और नगर द्वार सहित समूची लंका को उसके स्वामी रावण-सहित उठाकर साथ ले जा सकता हूँ। अतएव आप अपने मन में तनिक भी संदेह न करें। शाखामृग में बुद्धि कहाँ, किंतु परम प्रभु की कृपा से साँप का छोटा बच्चा भी गरुड़ को खा सकता है। फिर इस तुच्छतम कीट-तुल्य रावण की क्या गणना है ? जननी ! मैं वानरराज सुग्रीव का एक तुच्छ सेवक हूँ। उनके यहाँ कोटि-कोटि महाशक्ति सम्पन्न विशालकाय और भयानक वानर-भालू हैं।'

वानरशिरोमणि विशालकाय हनुमानजी की वाणी सुनकर माता जानकी के मन का संदेह तो दूर हुआ ही, वे अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। उन्होंने श्री राम भक्त को आशीर्वाद प्रदान किया—'हे तात ! तुम बल और शील के निधान होओ। हे

पुत्र ! तुम अजर (जरारहित) अमर और गुणों की निधि होओ ! श्री रघुनाथजी तुम पर बहुत कृपा करें।'

'प्रभु कृपा करें, जगजननी के मुखारविन्द से आशीर्वाद प्राप्त कर श्री पवनपुत्र कृतार्थ हो गये, उन्हें जैसे निखिल सृष्टि की बहुमूल्य निधि प्राप्त हो गयी। वे माताजानकी के चरणों में लोटने लगे। उनके प्रेमानन्द की सीमा नहीं थी। उनके अङ्ग-अङ्ग मे पुलक एव नेत्रो से अश्रु प्रवाह चल रहा था। भुवन पावनी माता जानकी की चरण रज उनके मुख मण्डल से लिपट गयी थी। हाथ जोडकर गद्गद वाणी में हनुमानजी ने भगवती सीता से कहा 'माता ! मै कृतार्थ हो गया। मेरा जीवन एव जन्म सब सफल हो गया। आपका आशीर्वाद अमोघ होता है, यह जगतप्रसिद्ध है।'

हनुमान जी ने फिर कहा 'माँ ! मुझे भूख लगी है और मेरे सम्मुख इस वाटिका मे विविध प्रकार के मधुर फल लटके दीख रहे हैं। यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं इन्हे खाकर क्षुधा-निवारण कर लू।'

जानकी जी ने कहा—'बेटा ! तुम फल खाकर तृप्त हो जाओ, यह तो मैं चाहती हूँ, किंतु यहाँ बडे बलवान् और शूर-वीर सशस्त्र सैनिक सदा पहरा देते रहते हैं।'

अभय हनुमान ने कहा—'माँ ! यदि आप प्रसन्नमन मुझे आज्ञा दे दें तो मुझे इन असुरो की तनिक भी चिन्ता नहीं है।'

भगवती सीता ने महावीर हनुमान को बल और बुद्धि से सम्पन्न देखकर कह दिया—बेटा ! जाओ। श्री रघुनाथ जी का स्मरण करते हुए इच्छानुसार मधुर फलो को खाकर पेट भर लो।'

अशोक-वाटिका-विध्वंस

समस्त शास्त्रों के पारंगत विद्वान् श्री समीर कुमार ने मन ही मन विचार किया—'दूत का कार्य स्वामी के हित के लिये मार्ग प्रशस्त करना है। राक्षसराज रावण का यह दुर्ग अभेद्य है। इसके प्रत्येक द्वार पर इतने अद्भुत और शक्तिशाली यन्त्र लगे हैं, जिनके रहते किसी भी वीर-वाहिनी का इसमें प्रवेश सम्भव नहीं। दूसरे, इस अगम लंका को मैंने रात्रि में देखा है। दशग्रीव के व्यक्तित्व एवं उसके योद्धाओं का कैसे पता चले? शत्रु की सैन्य-शक्ति की जानकारी आवश्यक है; इतना ही नहीं, रावण को आतङ्कित कर उसका मनोबल गिराने से भी लाभ होगा। माता सीता भी दिए गये आश्वासन का विश्वास दिलाने से धैर्यपूर्वक अपने दिन काट सकेंगी। अतएव लंका को भलीभाँति देखकर इसके अधिपति रावण से मिलकर ही जाना अधिक उपयोगी होगा। पर दशमुख से भेंट कैसे हो? यदि ये असुर किसी प्रकार उत्तेजित हो जायें तो निश्चय ही मैं रावण के सम्मुख पहुँचा दिया जाऊँगा।'

बस, अपने मन में इस प्रकार की योजना बनाकर श्री पवनपुत्र उछल कर एक वृक्ष पर चढ़ गये। वे मधुरफलों को खाने लगे। वे कुछ फलों को कुतरकर और कुछ को वैसे ही धरती पर फेंक देते। किसी वृक्ष की डाल तोड़कर फेंकते तो कोई समूचा वृक्ष ही उखाड़ देते। इस प्रकार वे सम्पूर्ण अशोक वाटिका को नष्ट करने लगे। जिस शिशपा (अशोक) वृक्ष के नीचे माता सीता रहती थीं, उसके अतिरिक्त पवनपुत्र ने

वाटिका के समस्त पुष्पों एवं फलों के वृक्षों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अत्यन्त सुन्दर वाटिका कुछ ही देर में उजाड़ हो गयी। इतना ही नहीं, परम शक्ति सम्पन्न महादेवात्मज श्री हनुमान असुरों के गगनचुम्बी चैत्य-प्रासाद पर उछलकर चढ़ गये। वे परम तेजस्वी शिवावतार कपीश्वर विशाल शरीर धारण करके लंका को प्रतिध्वनित करते हुए उस प्रासाद को तोड़-फोड़कर नष्ट करने लगे।

विशालकाय हनुमान जी की गर्जना सुन तमोगुणी राक्षस भयभीत होकर जग पड़े। वे नाना प्रकार के प्रास, खड्ग, फरसे तथा अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर चैत्य प्रासाद की ओर दौड़े। अत्यन्त मनोहर अशोक वाटिका की दुर्दशा देखकर वे चकित हो गए। असुरों ने कुपित होकर पवन पुत्र पर आक्रमण कर दिया, किंतु अनन्त शक्ति सम्पन्न श्री हनुमान के सम्मुख वे क्षण भर भी टिक न सके। प्रासाद के कंगूरों एवं वृक्षों के आघात से वहीं मर मिटे।

कुछ विकट मुखवाली भयानक राक्षसियों ने श्री जनकनन्दिनीके पास जाकर उससे पूछा–'यह वानराकार विकट वीर कौन है?'

माता सीता ने उत्तर दिया 'राक्षसों की माया तो तुम्हीं जानती हो। मैं दुःखिनी क्या बताऊँ?'

मृत्यु से बचे दो चार असुर प्रहरी और राक्षसियाँ रावण के समीप पहुँचीं। उन्होंने कहा –'प्रभो! एक वानराकार प्राणी पता नहीं, कहाँ से आकर अशोक-वाटिका में प्रविष्ट हो गया है। उसने पहले तो सीता जी से बात की और फिर हमारे देखते ही देखते सम्पूर्ण अशोक वाटिका को ध्वस्त कर दिया। वाटिका का एक वृक्ष भी सुरक्षित नहीं रह पाया है इतना ही

नहीं उस दुस्साहसी ने हमारे मणिनिर्मित चैतन्य प्रासाद को भी तोड़ डाला है और हमारे समस्त रक्षकों को मारकर अब भी वहां सर्वथा निर्भय और निश्चिन्त बैठा हुआ है। प्रहरी सैनिकों में हम दो तीन ही किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर यहाँ आ सके हैं।'

रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने अभी-अभी दुःस्वप्न देखा था। स्वप्न में भी एक विकट वानर उसे बुरी तरह तंग कर रहा था। उसने तुरंत सशस्त्र सैनिकों की एक विशाल वाहिनी भेजी।

उस समय स्वर्णशैलाभ कपिश्रेष्ठ लोहे के विशाल खंभों को लेकर टूटे-फूटे मन्दिर के सामने बैठे असुरों की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन महातेजस्वी श्री पवनपुत्र का मुख अरुण-वर्ण और आकृति अत्यन्त भयानक थी। असुरों की विशाल वाहिनी आती देख उग्रवेग हनुमान जी ने भयानक गर्जना की। मल्ल-विद्या के परमाराध्य श्री आञ्जनेय की विकट मूर्ति देखकर एवं उनकी भयानक गर्जना सुनकर राक्षस वीरों का हृदय काँप उठा। उन्होंने वानरेश्वर हनुमान जी पर एक साथ ही अपने अस्त्र शस्त्रों की वर्षा प्रारम्भ कर दी; किंतु अमितविक्रम क्रोध संरक्त लोचन श्री पवनपुत्र के प्रहार के सम्मुख वे विवश होकर कुछ ही क्षणों में मृत्यु मुख में प्रविष्ट हो गये।

असुरों की विशाल वाहिनी के विनाश की सूचना रावण के पास पहुँची। वह इस संवाद से अत्यन्त चकित हुआ। उसने अपने मन्त्री प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को शत्रु वानर को बंदी बनाकर या मृत रूप में लाने के लिये भेजा। जम्बुमाली विशालकाय, क्रोधी और संग्राम में दुर्जय था। वह क्रोध में उन्मत्त होकर अशोक वाटिका के लिये चला। चैत्य-प्रासाद-

भञ्जक हनुमान जी फाटक के छज्जे पर खड़े थे। सशस्त्र असुर वीर को अपनी ओर आते देखकर वे प्रसन्नता पूर्वक गर्जना करने लगे। जम्बुमाली ने श्री पवनपुत्र पर तीक्ष्णतम शरों की वर्षा की। हनुमान जी घायल हुए, किंतु उन्होंने एक ही झटके में उसका गर्व मिटा दिया। असुर का प्राणहीन शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली और अपने किंकरों की मृत्यु की सूचना पाकर राक्षसाधिप रावण आश्चर्य में डूब गया। उसने अपने मन्त्री के अमित तेजस्वी, अत्यन्त बलवान्, धनुर्धर, अस्त्र-वेत्ताओं में श्रेष्ठ तथा परस्पर होड़ लगाकर शत्रु पर विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले सात पुत्रों को भेजा। वे सातों अद्भुत वीर अपनी सशस्त्र वाहिनी के साथ एकाकी रुद्रांश को मारने चले। वे पराक्रमी मन्त्रिकुमार तपाये हुये सुवर्ण से चित्रित अपने धनुषों को टंकार करते हुये बड़े हर्ष और उत्साह से आगे बढ़े। उधर सूर्य के समान तेजस्वी श्री पवन कुमार प्रचण्ड लौह स्तम्भ लिये असुर सेना की प्रतीक्षा में बैठे थे। असुरों ने उन पर एक साथ भयानक बाण वर्षा की। समरप्रिय परम पराक्रमी श्री हनुमान जी ने उनके तीक्ष्णतम शरों से अपनी रक्षा करते और घोर गर्जना द्वारा उन्हें भयभीत करते हुए उन पर आक्रमण किया। कुछ ही देर में सहस्रों सैनिकों के साथ सातों मन्त्रि कुमार धराशायी हो गये। बची-खुची सेना भयाक्रान्त होकर भाग गयी।

पुनः रावण के पास सूचना पहुँची। इस संवाद से वह भयभीत हो उठा, किंतु उसने मन को संयमित कर अपने कर्त्तव्य का निश्चय किया। उसने अपने महान् वीर, नीति निपुण एवं धैर्यवान् विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भास-

कर्ण नामक पाँच सेनापतियों को श्री हनुमान जी को पकड़ लाने की आज्ञा दी।

दशग्रीव के पाँचों सेनापति अपनी विशाल सेना के साथ अशोक वाटिका पहुँचकर उग्रनेत्र हनुमान जी पर एक साथ ही, टूट पड़े। उस समय हरांशज हनुमान जी का आकार भयानक पर्वत तुल्य हो गया। उनकी भीषणतम आकृति एवं आकाश को विदीर्ण करने वाले गर्जन से असुर निष्प्राण हो गये। उनके अस्त्र शस्त्र परम शक्ति सम्पन्न श्री अञ्जनानन्दन को खिलौने तुल्य प्रतीत हुए। उन्होंने कुछ ही क्षणों में समूची सेना के साथ पाँचों सेनापतियों को रौंद डाला। उनकी लाशों से वहाँ की धरती पट गई। वानराधीश श्री पवननन्दन लौह स्तम्भ लिये मुख्य फाटक पर खड़े होकर अन्य राक्षस वीरों के आने की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय क्रोध संरक्तलोचन कपिसत्तम असुरों का संहार करने के लिये उद्यत भयानकतम काल तुल्य प्रतीत हो रहे थे।

राक्षसराज दशानन ने अपने पाँचों सेनापतियों के सैनिकों एवं वाहनों सहित मारे जाने का दुःसंवाद सुनकर अपने वीर-पुत्र अक्षयकुमार की ओर देखा। युद्ध के लिये उत्कण्ठित रहने वाला वीरवर अक्षयकुमार अत्यन्त उत्साहपूर्वक उठ खड़ा हुआ। वह महापराक्रमी राक्षस-शिरोमणि सुवर्ण मण्डित रथ पर आरूढ़ होकर कपीश्वर की ओर चला। उसके रथ में धनुष, बाण, तरकस, तलवार, शक्ति, तोमर आदि समस्त अस्त्र शस्त्र यथा-स्थान यथाक्रम से रखे हुए थे।

अक्षय कुमार ने समर शूर हनुमान जी पर प्रचण्ड वेग से आक्रमण किया, किंतु भूधराकार श्री महादेवांशज आकाश से सीधे उसके रथ पर कूद पड़े। उसके रथ, अश्व और सारथि–

सभी समाप्त हो गये। वीरवर अक्षय कुमार रथ से कूदकर श्री पवन पुत्र पर अस्त्र प्रहार करना ही चाहता था कि वे पुन: आकाश मे उड गये। उनके पीछे राक्षस अक्षय कुमार भी दौडा। हनुमान जी ने अत्यन्त फुर्ती से उसके दोनो पैर दृढता पूर्वक पकड लिये और उसे आकाश मे ही हजारो बार वेग पूर्वक घुमाकर जोर से पृथ्वी पर पटक दिया। आकाश से नीचे गिरने पर असुरराज के प्राण प्रिय पुत्र के किसी भी अङ्ग का पता नहीं चला। केवल यत्र तत्र खून की क्षीण धारा बहती दीख पडी।

हनुमान जी के द्वारा अक्षय कुमार के मारे जाने पर नक्षत्र मण्डल मे विचरने वाले महर्षियो, यक्षों, नागो, भूतो तथा इन्द्रसहित देवताओ ने वहाँ एकत्र होकर विस्मय के साथ परम तेजस्वी साक्षात् काल तुल्य श्री रुद्राशज का दर्शन किया। श्री पवनपुत्र पुन युद्ध की प्रतीक्षा करते हुए वाटिका के उसी द्वार पर जा डटे।

अक्षय कुमार की मृत्यु का अत्यन्त दु खद समाचार रावण के पास पहुँचा। उसने बडी कठिनाई से अपना मन स्थिर किया प्रज्वलित रोषानल मे दग्ध होता हुआ महाकाय रावण स्वय हनुमान जी को पकडने चला, किंतु इन्द्रजीत ने उन्हे रोककर कहा—'महाभाग! मेरे रहते आप क्यो दु खी होते है! मै अभी उस वानर की चचलता शान्त करता हूँ।'

इन्द्रजीत को वानरराज श्री हनुमान के साथ युद्धार्थ जाने के लिये उद्यत देखकर रावण ने उसे सावधान करते हुए कहा बेटा! उस वानर की गति अथवा शक्ति का कोई माप तौल या सीमा नहीं है। वह अग्नि तुल्य तेजस्वी वानर किसी साधन विशेष से मारा नही जा सकता। अतएव तुम प्रतिपक्षी मे अपने

समान ही पराक्रम समझकर अपने धनुष के दिव्य प्रभाव को याद रखते हुए आगे बढ़ो और ऐसा पराक्रम कर दिखलाओ जो व्यर्थ सिद्ध न हो।

अपने पिता के ये वचन सुन वीरवर मेघनाथ ने युद्ध के लिये निश्चित विचार करके दशग्रीव की परिक्रमा की और वह अपने अद्भुत रथ की ओर चला।

महापराक्रमी इन्द्रजीत अपने तेजस्वी रथ पर बैठकर अनेक राक्षसों के साथ पवनपुत्र के समीप पहुंचा। उसका भयंकर सिंहनाद सुन सर्वप्रथम श्री हनुमान जी लौह-स्तम्भ लिये आकाश में उड़ गये। धनुर्धर मेघनाथ ने अपने तीक्ष्ण शरों से हनुमान जी को बींध दिया। उनके शरीर से रक्त की धारा बह चली। बृहतकाय हनुमान जी ने कुपित होकर लौह-स्तम्भ के प्रबल प्रहार से उसके सारथि को मारकर रथ को चूर्ण विचूर्ण कर दिया। मेघनाथ के कितने ही वीर राक्षस रक्त वमन करते हुए यमलोक सिधारे।

महाकपीश्वर की शक्ति के सम्मुख कोई वश चलता न देख इन्द्रजीत ने ब्रह्मपाश छोड़ा। नित्यमुक्त श्री पवन कुमार को विधाता ने ब्रह्मपाश से मुक्त रहने का वरदान पहले ही दे दिया था, किंतु श्री अञ्जनानन्दन मर्यादा का अतिक्रमण करना नहीं जानते। वे ब्रह्मपाश को सम्मान प्रदान करने के लिये उसमें बंध गये।

मायातीत पवनपुत्र के पृथ्वी पर गिरते ही सभी असुर उनके समीप आकर उन्हें डाँटने-फटकारने लगे; उन्होंनें प्रसन्नात्मा हनुमान जी पर अपशब्दों की वर्षा करते हुए उन्हें वल्कल की रस्सियों से अच्छी तरह कसकर बांध दिया और श्री राम भक्त हनुमान जी ब्रह्मपाश से स्वतः मुक्त हो गये।

उन राक्षसो को यह पता नहीं था कि ब्रह्मपाश का बन्धन दूसरे बन्धन के साथ नहीं रहता।

ब्रह्मपाश से मुक्त वानर शिरोमणि को केवल वृक्षों के वल्कल से बँधा देखकर मेघनाथ अत्यन्त उदास और चिन्तित हो गया। मन्त्र शक्ति से परिचित इन्द्रजीत अच्छी प्रकार जानता था कि एक बार विफल होने पर इसका प्रयोग दूसरी बार सम्भव नही। उसे अपनी विजय सन्दिग्ध सी प्रतीत हुई।

अनन्त मङ्गलालय ज्ञानमूर्ति श्री पवननन्दन यद्यपि ब्रह्म-पाश से मुक्त हो चुके थे, किंतु उन्होंने ऐसा बर्ताव किया, जैसे वे इस बात को जानते ही न हो। वे डरे हुए से प्रतीत हो रहे थे। राक्षस श्री पवनपुत्र को रावण के समीप ले चले। मार्ग मे उन्हे देखकर पुरवासी दौड़े आते और उनके पीछे चलते हुए उन्हे घूँसे मारते, गालियाँ देते और उनके बाल नोच लेते थे। किंतु श्री राम दूत हनुमान जी अपने स्वामी का कार्य सम्पादन करने के लिये सब कुछ सुन, सह रहे थे। वे लका के मार्गों एव सैन्य सचालन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलो को ध्यान पूर्वक देखते जा रहे थे। इस प्रकार मेघनाथ उन्हे रावण के पास ले गया।

रावण की सभा मे

पिता के सम्मुख पहुँचकर मेघनाथ ने कहा—'इस असा-धारण वानर ने हमारे अनेक वीर राक्षसो के प्राण ले लिये है। मै इसे ब्रह्मा के वर प्रभाव से बाँधकर ले आया हूँ। अब आप मन्त्रियो से परामर्श कर जैसा उचित समझें, करें।'

नीति-निपुण हनुमानजी ने राक्षसराज रावण की अद्भुत सभा को ध्यानपूर्वक देखा। तपते हुए सुवर्ण के समान तेज और

बल से सम्पन्न राक्षसराज दशानन नाना प्रकार के रत्नों से चित्रित स्फटिक मणि के बने हुए विशाल एवं सुन्दर सिंहासन पर बैठा था। उसके मस्तक सोने के बने हुए बहुमूल्य एवं दीप्तिमान मुकुटों से उद्भासित हो रहे थे। मन्त्र तत्व को जानने वाले दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व तथा निकुम्भ ये चार राक्षसजातीय मन्त्री उसके पास बैठे थे।

महावीर श्री हनुमान भयानक राक्षसों से पीड़ित होने पर भी अत्यन्त आश्चर्य के साथ दशग्रीव को देख रहे थे। दीप्तिशाली राक्षसराज के तेज से प्रभावित होकर धर्ममूर्ति श्री पवनपुत्र ने मन-ही-मन कहा 'इस अद्भुत रूप, अनुपम शक्ति, और आश्चर्य जनक तेज से सम्पन्न रावण में यदि प्रबल अधर्म न होता तो यह दशानन इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवलोक का संरक्षक हो सकता था।'

दैत्यराज रावण अपने सम्मुख पिङ्गाक्ष, पिङ्गकेश और पिङ्गरोमा वानर शिरोमणि हनुमान जी को देखकर रोष से जल उठा। उसने अपने सामने बैठे हुए कज्जल-गिरि के समान कृष्णवर्ण अपने मन्त्री प्रहस्त से कहा—'प्रहस्त ! इस बंदर से पूछो तो सही, यह कौन है ? कहाँ से आया है ? इसके यहाँ आने का उद्देश्य क्या है ? इसने अशोक वाटिका क्यों ध्वस्त कर दी तथा इसने योद्धाओं के साथ मेरे प्राणप्रिय पुत्र को क्यों मार डाला।'

प्रहस्त ने हनुमान जी से कहा—'वानर ! तुम घबराओ मत; धैर्य रखो ! तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं। तुम कौन हो ? कहां से आये हो ? तुम्हें यहां किसने भेजा है ? यदि तुम सच-सच बतला दो तो तुम्हारी कोई क्षति नहीं होगी। मैं तुम्हें छुड़ा दूंगा।'

श्री राम भक्त हनुमान जी त्रैलोक्य-विजयी रावण की सभा में भी सर्वथा निशंक और निर्भय थे। उन्होंने मन-ही-मन परम प्रभु श्री राम का स्मरण कर कहना प्रारम्भ किया—लंकाधिपति रावण! जिन अनन्त महिमामय परमप्रभु का आश्रय ग्रहणकर माया निखिल सृष्टि की रचना करती है, जिनकी शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु, और महेश क्रमशः सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं, जिनके बल से शेषजी वनों एवं पर्वतों सहित समस्त ब्रह्माण्ड को अपने सिर पर धारण करते हैं और जो प्रत्येक युग मे गौ ब्राह्मण, देव समुदाय एवं धर्म की रक्षा तथा तुम्हारे जैसे धरती के भारभूत राक्षसो को दण्ड देने के लिये पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, मै उन भगवान् श्री राम का दूत हूँ। क्या तुम्हें पता नहीं, उन श्री दशरथ कुमार ने भगवान् शंकर के उस कठोरतम धनुष को मृणाल-तुल्य तोड़ डाला, जिसे तुम हिला तक नहीं सके थे। खर-दूषण और त्रिशिरा को चौदह हजार राक्षसो के साथ अकेले मार डालने वाले श्री राम को तुम नहीं जानते? अरे! तुमको अपनी कॉख मे दबा रखने वाले बाली को उन्होंने एक ही बाण से मार डाला। तुम उन्हें न जानने का स्वाँग भले ही रच लो, पर वे तुम्हें कैसे भूल सकते हैं, जिनकी सती पत्नी को तुम चोरो की तरह चुराकर ले आये हो। रावण! तुम अच्छी प्रकार देख और समझ लो, मैं उन्हीं सर्वशक्ति सम्पन्न परम प्रभु श्री राम का दूत परम प्रतापी पवनदेव का पुत्र हनुमान हूँ।

'किष्किन्धाधिपति श्री राम सखा सुग्रीव ने सीता देवी की खोज के लिये व्यग्र होकर कोटि-कोटि वीर वानर भालुओं को चारों दिशाओ में भेजा है। उन्ही का भेजा हुआ मैं शतयोजन सागर लाँघकर यहाँ आया हूँ। मैंने माता सीता का दर्शन कर

लिया है। तुम भगवती सीता को लंका का विनाश करने वाली कालरात्रि ही समझो। सीता का शरीर धारण करके तुम्हारे पास काल की फ़ांसी आ पहुँची है। रावण! तीनों लोकों में एक भी ऐसा प्राणी नहीं है, जो भगवान् श्री राम का अपराध करके सुखी रह सके। महायशस्वी श्री रामचन्द्रजी चराचर प्राणियों सहित सम्पूर्ण लोकों का संहार करके फिर उनका नये सिरे से निर्माण करने की शक्ति रखते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा, त्रिनेत्र त्रिपुरारी, सहस्राक्ष इन्द्र, देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा यक्ष–ये सब मिलकर भी समराङ्गणमें श्री रघुनाथजी के सम्मुख नहीं टिक सकते।

'मैं तो प्रभु के आदेशानुसार माता सीता का दर्शन करने गया था। मुझे जोर की भूख लगी थी, इस कारण फल खाने लगा। अपने स्वभावके अनुसार मैंने वृक्षोंको तोड़ा; किंतु तुम्हारे सैनिक मुझ पर प्रहार करने लगे। भला अपना शरीर किसे प्रिय नहीं है! अतः जिन्होंने मुझेमारा, मैंनेभी उन्हें मारडाला। इसमें मेरा क्या दोष है? अपराध तो तुम्हारे पुत्र ने किया है तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो, मैं यहाँ अन्याय पूर्वक बांधकर लाया गया हूँ।'

कपीश्वर हनुमान जी की चतुरतापूर्ण वाणी सुनकर देव-गण प्रसन्न हो उठे और राक्षस गण भयाक्रान्त हो कांपने लगे। श्री राम की शक्ति की महिमा सुनकर उनका मनोबल गिर गया। रावण क्रोधपूर्वक दांत पीसने लगा, परन्तु परम बुद्धि-मान मङ्गलमूर्ति श्री हनुमान दशग्रीव के यथार्थ हित के लिये अत्यन्त शान्तिपूर्वक उपदेश करते रहे—

"लंकाधिपति! तुम-ब्रह्माजी के अति उत्तम वंशो में उत्पन्न हुए हो तथा पुलस्त्यनन्दन विश्रवा के पुत्र और कुबेर के

भाई हो, अतः देखो, तुम तो देहात्मबुद्धि से भी राक्षस नहीं हो; फिर आत्मबुद्धि से भी राक्षस नहीं हो, इसमें तो कहना ही क्या है? तुम सर्वथा निर्विकार हो, इसलिए शरीर, बुद्धि, इन्द्रियाँ और दुःखादि—ये न तुम्हारे (गुण) है और न तुम इसके हो। इन सबका कारण अज्ञान है और स्वप्न दृश्य के समान ये सब असत् है। यह बिल्कुल सत्य है कि तुम्हारे आत्म स्वरूप में कोई विकार नहीं है, क्योंकि अद्वितीय होने से उसमे कोई विकार का कारण ही नहीं है। जिस प्रकार आकाश सर्वत्र होने पर भी (किसी पदार्थ के गुण-दोष से) लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तुम देह में रहते हुए भी सूक्ष्म रूप होने से उसके दुःखादि विकारों से लिप्त नहीं होते। 'आत्मा देह, इन्द्रिय, प्राण और शरीर से मिला हुआ है'—ऐसी बुद्धि ही सारे बन्धनो का कारण है और 'मै चिन्मात्र, अजन्मा, अविनाशी तथा आनन्द-स्वरूप ही हूँ' इस बुद्धि से जीव मुक्त हो जाता है। पृथ्वी का विकार होने से देह भी अनात्म है और प्राण वायु रूप ही है; अतः यह भी आत्मा नहीं है। अहंकार का कार्य मन अथवा प्रकृति के विकार से उत्पन्न हुई बुद्धि भी आत्मा नही है। आत्मा तो चिदानन्द-स्वरूप, अविकारी तथा देहादि के संघात से पृथक् और उसका स्वामी है। वह निर्मल और सर्वदा उपाधि-रहित है—उसका इस प्रकार ज्ञान होते ही मनुष्य संसार से मुक्त हो जाता है। अतः हे महामते! मै तुम्हे आत्यन्तिक मोक्ष का साधन बतलाता हूँ; सावधान होकर सुनो! भगवान् विष्णु की भक्ति बुद्धि को अत्यन्त शुद्ध करने वाली है; उसी से अत्यन्त निर्मल आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञान से शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव होता है और उससे दृढ बोध हो जाने पर मनुष्य परम-पद प्राप्त करता है। इसलिये तुम प्रकृति से परे, पुराण पुरुष

सर्वव्यापक आदिनारायण लक्ष्मीपति हरि भगवान् का भजन करो ! अपने हृदय में स्थित शत्रुभाव रूप मूर्खता को छोड़ दो और शरणागतवत्सल श्री राम का भजन करो। सीता जी को आगे कर अपने पुत्र और बन्धु बान्धवों सहितभगवान् श्री राम की शरण में जाकर उन्हें नमस्कार करो। इससे तुम भय से छूट जाओगे। जो पुरुष अपने हृदय में स्थित अद्वितीय सुख-स्वरूप परमात्मा श्री राम का भक्तिपूर्वक ध्यान नहीं करता, वह दुःख-तरंगावलि से पूर्ण इस संसार-समुद्र का पार कैसे पा सकता है ? यदि तुम भगवान् श्री राम का भजन नहीं करोगे तो अज्ञान रूपी अग्नि से जलते हुए अपने आपको शत्रु के समान सुरक्षित नहीं रख सकोगे और उसे अपने किये हुए पापों से उत्तरोत्तर नीचे की ओर ही ले जाओगे; फिर तुम्हारे मोक्ष की कोई सम्भावना न रहेगी।

'असुरराज ! मैं तुमसे पुनः पुनः विनीत प्रार्थना करता हूँ कि तुम माता सीता को अत्यन्त आदर पूर्वक आगे करके भगवान् के समीप चलो और उनके चरणों में गिरकर अपने अपराधों के लिये क्षमा माँग लो। विश्वास करो, वे दयाधाम श्री राम तुम्हें निश्चय ही क्षमा कर देंगे। फिर तुम लंका में निष्कण्टक राज्यका उपभोग करो। तुम्हारा लौकिक और पार-लौकिक जीवन सुधर जायेगा सफल हो जायेगा। तुम धन्य हो जाओगे।"

भक्तवर श्री अञ्जानन्दन दशग्रीव के परम कल्याण के लिये उसे अमृतोपम उपदेश दे रहे थे, किंतु भावीवश दुर्बुद्धि राक्षसराज को वह बहुत अप्रिय लगा। उसके नेत्र लाल हो गये अत्यन्त कुपित होकर उसने कहा—'वानराधम ! दुष्टबुद्धे !! मेरे सामने तू अनर्गल प्रलाप करने का दुस्साहस कैसे कर रहा

है ? वनवासी राम और सुग्रीव की क्या शक्ति है ? पहले तो मैं यहाँ तेरा वध करता हूँ और फिर सीता को मारकर तेरे राम-लक्ष्मण और सुग्रीव को भी उसकी सेना के सहित मृत्यु मुख में झोंक दूँगा।'

दशानन की मिथ्या दर्पोक्ति को विशुद्धात्मा श्री मर्कटाधीश के लिये सह लेना सम्भव नहीं था। दाँत किटकिटाते हुए उन्होंने कहा—'अधम राक्षसराज! तेरे सिर पर मृत्यु नाच रही है, इसी कारण तू प्रलाप कर रहा है। मैं भगवान् श्री राम का सेवक हूँ। मेरी शक्ति और पराक्रम की तू कल्पना भी नहीं कर सकता। तेरे जैसे कोटि-कोटि पापात्मा मेरी समानता करने में समर्थ नहीं हैं।'

दुरात्मा रावण प्रज्वलित क्रोधाग्नि से जल उठा। उस क्रोधोन्मत्त असुर ने चिल्लाते हुए अपने असुरों को आज्ञा दी—'राक्षसों! तुम इस वानर का वध कर डालो।'

अनेक वीर राक्षस कपीश्वर की ओर झपटे ही थे कि वार्तालाप कुशल विभीषण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता रावण को शान्तिपूर्वक समझाते हुए कहा—"वीरवर लंकेश्वर! धर्म की व्याख्या करने, लोकाचार का पालन करने अथवा शास्त्रीय सिद्धान्त को समझने में आपके समान दूसरा कोई नहीं है। आप क्रोध को त्यागकर विचार करें—'सत्पुरुषों का कथन है कि दूत कहीं, किसी समय भी वध करने योग्य नहीं होता।' वह भला हो या बुरा, शत्रुओं ने इसे भेजा है; अतः यह उन्हीं के स्वार्थ की बात करता है। दूत सदा पराधीन होता है; अतः उसे कभी मृत्यु दण्ड नहीं दिया जाता दूत के लिये अङ्ग भङ्ग आदि अन्य प्रकार के बहुत से दण्ड हैं; आप उनमें से किसी का उपयोग कर सकते हैं।"

अनुज विभीषण के देश-काल के उपयुक्त हितकर वचन सुनकर नीतिज्ञ रावण ने कहा—'विभीषण ! तुम्हारा कहना ठीक है; किंतु वध के अतिरिक्त इसे दूसरा कोई दण्ड अवश्य देना चाहिए। वानरों को अपनी पूंछ बड़ी प्यारी होती है; वही इनका आभूषण है। अतः यथाशीघ्र इसकी पूंछ जला दी जाय। यह दुमकटा बंदर अपने वनवासी स्वामी के समीप जाकर उसे स्वयं काल के गाल में खींच लायेगा।'

दुष्ट दशानन ने पुनः आज्ञा दी—'असुरगण ! तिरस्कार करते हुए इसको लंका की सड़कों, चौराहों और गलियों में घुमाओ और अन्त में इसकी पूंछ में आग लगा दो।'

लंका-दहन

सत्वगुणशाली, परमपराक्रमी, कपिकुञ्जर श्री अञ्जना-नन्दवर्धन ने प्रभु के कार्य की सिद्धि के लिये अपने दिव्य आकार को छिपा रखा था। लंकाधिपति रावण का आदेश पाते ही मूढ़ राक्षस घृत और तेल में डुबा-डुबाकर चिथड़े और वस्त्र उनकी पूंछ पर लपेटने लगे। परम कौतुकी पवनात्मज ने अपनी पूंछ लम्बी कर दी। दुष्ट दशानन के आज्ञापालक असुर हनुमान जी की पूंछ में जितने ही वस्त्र लपेटते, वह उतनी ही लंबी होती जाती। कपि की इस क्रीड़ा से लंका में वस्त्र एवं तेल-घृत का अभाव होने लगा। पर असुर कब मानने वाले थे। उक्त राक्षसपुरी में जहां से जितना वस्त्र, तेल और घृत प्राप्त हुआ, सब एकत्र कर लिया गया। वस्त्र को पूंछ में अच्छी प्रकार लपेटकर उसे दृढ़ रज्जु से बांध दिया गया और फिर असुरों ने उसे अच्छी प्रकार भिगो देने से बचे-खुचे तेल और घी को भी ऊपर से उँड़ेल दिया।

दृढ़ रज्जु में जकड़े हुए कपिकुञ्जर श्री केसरी किशोर को राक्षस पकड़कर प्रसन्नतापूर्वक ले चले। वे शंख और भेरी बजा-बजाकर उनके अपराधों की घोषणा करते हुए उन्हें गली-गली घुमाने लगे। राक्षस और उनके बच्चे शत्रुदमन, श्री हनुमान जी के पीछे-२ ताली बजाते, उन्हे गाली बकते, घूंसा मारते, उनके बाल नोंचते तथा उन पर कंकड-पत्थर फेंकते हुए चल रहे थे, किंतु परम बुद्धिमान हनुमान जी अपने प्रभु के कार्य की सिद्धि के लिये मन मे तनिक भी दुःख न मानकर सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक सह रहे थे। उन्होने रात्रि में दुर्ग-रचना की विधि पर दृष्टि रखते हुए उस नगरी को अच्छी प्रकार नही देखा था और अब वे रावण प्रदत्त इस दण्ड से राक्षसो की विशाल पुरी मे विचरते हुए उसे भली भाँति देखने लगे। इस प्रकार उन्होंने अनेक अद्भुत विमान, सुन्दर चबूतरे, वशीभूत-गृह, पंक्तियो से घिरी हुई सडकें, चौराहे, छोटी बड़ी गलियाँ, घरों के मध्यभाग, गढ, द्वार एवं प्रख्यात राक्षसों के आवास आदि सब महत्वपूर्ण स्थान ध्यानपूर्वक देख लिये।

राक्षसो ने हनुमान जी को बाँधकर लंका मे सर्वत्र घुमाया और जी भरकर उनका तिरस्कार किया। पीछे प्रमुख चौराहे पर आकर सब श्री हनुमान जी को घेरकर खडे हो गये। चारो ओर हर्षोल्लास की ध्वनि होने लगी। उसी बीच रावण के एक प्रमुख वीर ने पूँछ मे आग लगा दी। अग्नि प्रज्वलित हुई और राक्षस-राक्षसियाँ सब हर्षातिरेक से ताली पीट-पीटकर नाचने लगे।

बल-बुद्धि निधान हनुमान जी के उद्देश्य की पूर्ति हो गयी। अब उन्होने अपना आकार छोटा कर लिया। बस, असुरों द्वारा बाँधा गया बन्धन ढीला पड़ गया। श्री पवनपुत्र बन्धनमुक्त

हुए और फिर उन्होंने वृहदाकार रूप धारण कर लिया। उन्होंने वेगपूर्वक अपनी पूंछ घुमायी ही थी कि राक्षस सहमे; किंतु रुद्रांशज ने उन्हें अपनी पूंछ से ही मारना आरम्भ किया। हनुमान जी की पूंछ का आघात वज्रपात के सदृश हो रहा था। बालक, युवा एवं वृद्ध राक्षस नर-नारी भयभीत होकर भागने लगे; किंतु वे जहाँ कहीं भी भागते, पूंछ वहीं उन्हें काल सर्प की भाँति लपेट लेती। अग्नि की ज्वाला में छटपटाते हुए असुर पृथ्वी पर जोर से पटके जाते। तड़पने भी नहीं पाते, तुरंत मर जाते। इस प्रकार वहाँ एकत्रित समस्त असुरों का वध कर हनुमान जी लंका की एक अत्यन्त विशाल गगनचुम्बी अट्टालिका पर चढ़ गये।

जिस समय पवननन्दन हनुमान जी की पूंछ में आग लगायी जा रही थी, उसी समय एक भयानक राक्षसी ने दौड़ कर माता जानकी से कहा—'सीते ! तुम जिस बंदर से बात कर रही थीं, उसे बाँधकर उसकी पूंछ में आग लगा दी गयी है। उसे अत्यन्त अपमान के साथ लंका की गलियों में घुमाया गया है।'

माता जानकी सहसा काँप उठीं। उन्होंने दृष्टि उठाकर देखा—विशाल लंकापुरी में अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला फैली हुई है। उन्होने अत्यन्त व्याकुल होकर अग्निदेव से प्रार्थना की—'अग्निदेव ! यदि मैं अपने प्राणनाथ पतिदेव की विशुद्ध सेविका हूँ और यदि मुझमें तपस्या तथा पतिव्रत्य का बल है तो तुम पवनपुत्र हनुमान के लिये शीतल हो जाओ।' एक तो पतिव्रत्य की ही अमित शक्ति ! पतिव्रता देवी इच्छा होने पर सम्पूर्ण सृष्टि को उलट पुलट कर सकती हैं, दूसरे निखिल सृष्टि का स्वामिनी, जगजननी, मूल प्रकृति स्वयं शक्ति की

प्रार्थना ! तीखी लपटों वाले अग्निदेव श्री हनुमान के लिये शान्त भाव से जलने लगे। उनकी शिखा प्रदक्षिण भाव से उठने लगी। स्वयं हनुमान जी चकित होकर सोचने लगे—'अरे ! अग्नि तो प्रज्वलित है ; इसके स्पर्श से विशाल अट्टालिकाएँ धाँय-२ जल रही है, किंतु मैं बिल्कुल सुरक्षित हूँ। निश्चय ही माता सीता की दया, मेरे परमप्रभु के तेज तथा मेरे पिता की मैत्री के प्रभाव से अग्निदेव मेरे लिए शीतल बन गये है।'

'जय श्री राम ! उस विशाल गगनचुम्बी अट्टालिका में आग लगाकर भयानक-मूर्ति श्री हनुमान दूसरे महल पर कूदे। उस समय उनकी भीषण गर्जना से आकाश विदीर्ण हो रहा था। उस गर्जन मात्र से कितने ही असुरो का प्राणान्त हो गया, राक्षस-पत्नियो के गर्भ गिर गये और बड़े वीर राक्षसो का हृदय काँप उठा।

'जय श्री सीताराम' रावण के महान् दुर्ग का ध्वंस करते हुए मैनाकवन्दित महान् वेगशाली कपीश्वर उछलकर प्रहस्त के महल पर पहुँच गये और उसमें आग लगाकर महापार्श्व के घर में आग लगाते हुए श्री रामदूत ने क्रमशः वज्रदंष्ट्र, शुक, बुद्धिमान् सारण, इन्द्रविजयी मेघनाथ, जम्बुमाली और सुमाली के महलो को फूँक दिया। उस समय अग्नि की भयानक लपटों में अरुणवर्ण श्रीमारुतात्मज प्रत्यक्ष कालकी मूर्ति प्रतीत हो रहे थे। अत्यन्त भयभीत असुर उनकी ओर देखने का साहस भी नहीं कर पा रहे थे।

अमित वेगशाली कपीश्वर में अद्भुत स्फूर्ति थी। वे एक महल पर जाकर अपनी प्रज्वलित पूँछ से उसके आँगन द्वार और वातायनो में प्रवेश कर इतनी शीघ्रता से आग लगाकर

दूसरे महल पर कूद पड़ते कि विश्वास करना भी कठिन था कि यहां एक ही हनुमान जी हैं। राक्षसों को सर्वत्र सभी महलों पर मर्कटाधीश श्री हनुमान जी ही आग लगाते हुए दीख रहे थे।

इस प्रकार हनुमान जी ने अत्यन्त शीघ्रता से रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, राक्षस रोमश, रणोन्मत्त ध्वजग्रीव, भयानक विद्युजिह्व, हस्तिमुख कराल, विशाल, शोणिताक्ष, मकराक्ष, नारान्तक, कुम्भ, दुरात्मा निकुम्भ, यज्ञशत्रु और ब्रह्मशत्रु आदि समस्त प्रमुख राक्षसों के भवन तथा अश्वशाला, गजशाला, अस्त्रागार, सैन्य शिविर आदि में आग लगा दी।

उसी समय अपने पुत्र के कार्य में सहायता करने के लिये पवनदेव तीव्र गति से बहने लगे। इस कारण आग और भी अधिक प्रज्वलित हो गयी। सोने, चांदी तथा रत्नों के महल पिघल-पिघलकर बहने लगे। लंका के स्त्री-पुरुष और बालक वृद्ध सभी असुरों में त्राहि-त्राहि मच गई। लाखों असुर इस अग्नि दाह से ही काल के गाल में चले गए। किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था। सब को अपने प्राणों के लाले पड़े थे। अन्न वस्त्र, आभूषण, गज, अश्व, खच्चर, रथादि जहाँ के तहाँ अग्नि में जल रहे थे, अपने प्राण के सम्मुख उनकी चिन्ता कौन करता अनाथ और असहाय की भांति रावण की लंका प्रचण्ड अग्नि में धाँय-धाँय जल रही थी! पशु, स्त्री-बच्चे चीत्कार कर रहे थे, पर त्रैलोक्यविजयी असुर कुछ नहीं कर पा रहे थे। सर्वथा अवश और निरूपाय थे वे। उधर जिन घरों में अग्नि कुछ शान्त होती, मारुतनंदन उनमें पुनः अग्नि प्रज्वलित कर देते वे लंका को उलट-पलटकर जला रहे थे।

अपने दुर्लभ अलौकिक भवन को जलते देखकर दशग्रीव

का हृदय काँप उठा, पर अपना मनोगत भाव छिपाते हुए उसने राक्षसों को आज्ञा दी—वीरों ! इस अधम वानर को पकड़कर उसके टुकड़े-२ कर दो।'

स्वामी का आदेश प्राप्त कर मेघनाथ आदि वीर शस्त्र धारण कर एकत्र हुए, किंतु वे किसे पकड़ें। वे जिधर जिस जिस अट्टालिका पर दृष्टि डालते, उन्हे उधर, उसी अट्टालिका पर हनुमान जी की काल-तुल्य भयानक मूर्ति दीख पड़ती। हनुमान जी ने अपनी वज्र तुल्य प्रज्वलित पूँछ लंबी की। बस, कितने ही वीर उससे झुलस गये। कितने उस पूँछ के प्रहार से ही व्याकुल होकर गिर पड़े। प्रबल प्रभञ्जन और भयंकर ज्वाला—असुर वीर कुछ नही कर सके। उन्होने रावण के सम्मुख अपनी विवशता व्यक्त की।

रावण के वश में लोकपाल और यम थे। उसने उन्हें भेजा। लंकादाहक श्री हनुमान जी ने यम को तो अपने मुँह मे रख लिया और लोकपाल उनकी पूँछ की साधारण चोट भी सह न सके, वे प्राण लेकर भागे।

यम की अनुपस्थिति में सृष्टि का कार्य स्थगित हो गया। प्राणियों की मृत्यु कैसे हो ? देवताओ सहित हंसारूढ़ चतुर्मुख ब्रह्मा ने आकाश से कालमूर्ति श्री हनुमान की वन्दना की। मङ्गल-मोद निधान हनुमान जो ने यम को छोड़ दिया। यम ने मन-ही-मन संकल्प किया कि अब मै प्रभु भक्तों के समीप कभी नहीं जाऊँगा।

अन्त में रावण ने मेघो को वृष्टि के द्वारा अग्नि बुझा देने की आज्ञा दी। उमड़ते हुए सजल जलद लंका पर घिर आये। घनघोर वर्षा होने लगी, किन्तु उस वर्षा का हनुमान जी द्वारा लगायी गयी आग पर उलटा ही प्रभाव पड़ा। जल की बूंदें तप्त

तैल और घृत की तरह प्रज्वलित अग्नि को और भी सहायता करने लगीं ! जैसे-जैसे वर्षा होती, आग उतनी ही तीव्र होती जाती थी ।

विचित्र दशा थी । बादल इधर तो अग्नि की लपटों से जले जाते हैं और उधर उनके शरीर ग्लानि से गले जाते हैं। सब मेघ शुष्क हो सकुचाकर पुकारने लगे –'हम लोगों ने बारहों सूर्य देखे, प्रलय की अग्नि देखी और कई बार शेष जी के मुखकी ज्वाला भी देखी, परन्तु कभी जल को घृत के समान हुआ नहीं सुना । यह महान् आश्चर्य श्री केसरी नन्दन ने कर दिखलाया!' मेघों के वचन सुनकर मन्त्रीगण सिर घुमाने लगे और रावण से बोले—'यह सब ईश्वर की प्रतिकूलता का विकार–फल है !'

सोने की लंका धायं-धायं जल रही थी, वहाँ के समस्त प्राणी चीत्कार कर रहे थे, पर उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं था ! मन्दोदरी आदि रानियां बिलखती हुई चिल्ला रही थीं–'हमने पहले ही इस दसमुंहे को मना किया था कि सती जानकी को उनके पति के यहाँ भेज दो, श्री राम से वैर मत करो, किन्तु यह अहंकार के वश होकर हमारी एक नहीं सुनता था । अब उसका बल, उसकी सेना और उसका प्रताप कहाँ गया ! कोने में चोर की तरह वह मुंह छिपाकर बैठा है । अब हमारी रक्षा कैसे हो ?' इसी प्रकार बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष– जो जहाँ थे, वहीं बिलख रहे थे । उधर हाथी, घोड़े, रथ, पशु, पक्षी, वृक्ष तथा कितने ही राक्षसों सहित लंका पुरी दग्ध हो रही थी । वहाँ के निवासी दीन भाव से फूट-फूट कर रो रहे थे।

लंका को फूंकते हुए परम पराक्रमी हनुमान जी मन-ही-मन अपने परम प्रभु श्री रामचन्द्र जी का स्मरण कर रहे थे। श्री मर्कटाधीश के इस अद्भुत एवं अप्रतिम कार्य से सभी देवता,

मुनिवर, गन्धर्व, विद्याधर, नाग तथा सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त प्रसन्न हुए। देवताओं ने श्री पवनपुत्र की स्तुति की।

कहते हैं, लंकाधिपति रावण ने सूर्य पुत्र शनि देव को बन्दी बना लिया था। उस बन्दी-गृह की चहार दीवारी हनुमान जी के पैर के आघात से टूट कर गिर गयी। हनुमान जी ने शनिदेव का दर्शन किया और उन्हे रावण की सारी करतूत बता दी। शनिदेव ने मुक्ति दाता श्री हनुमान जी को आशीर्वाद देते हुए कहा—'अब लंका का सर्वनाश निकट है।' उन्होंने कनखी से लंका की ओर देखा और एक विभीषण का घर छोड़कर बची-खुची लंका जल कर राख हो गयी।

अतुलित बलशाली श्री पवन कुमार ने जब देखा कि सारी लंका जल रही है, यहाँ के सैन्य-केन्द्र, युद्धोपयोगी उपकरण तथा वाहन आदि नष्ट हो रहे हैं, यहाँ के लोग आतंकित, भयभीत एवं त्रस्त हो गये हैं, तब उन्हे माता सीता की चिन्ता हुई—'विभीषण का घर तो मैंने बचा लिया, किन्तु माता सीता, पता नहीं कैसे है? यदि कहीं भूल से अग्नि की ज्वाला मे ...?' श्री पवन पुत्र कॉप उठे। अत्यन्त चिन्तित हनुमान जी उछल कर समुद्र मे कूद पड़े। पूंछ की आग बुझा कर वे पानी से निकल ही रहे थे कि चारणो के मुख से निकली हुई शुभ वाणी सुनकर उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी।

महात्मा चारण कह रहे थे 'पवन पुत्र हनुमान जी ने सोने की लंका मे आग लगा कर बड़े दुस्साहस का कार्य किया है। घर मे से भागे हुए राक्षसों, स्त्रियो, बालको और वृद्धों का रुदन और चीत्कार सारी लंका मे छाया हुआ है। पर्वत की कन्दराओ, अटारियों, परकोटो, सैन्य-स्थलो, गुप्तागारों और नगर के प्रमुख द्वारो सहित समूची लंका जल कर भस्म हो

गयी, किन्तु अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि श्री रामवल्लभा सीता पर आँच नहीं आयी !'

माता सीता से विदाई

'जय श्री सीताराम !' हर्षातिरेक से हनुमान जी के मुंह से जयध्वनि हो रही थी। वे अत्यन्त तीव्र गति से दौड़े जग-जननी जानकी की ओर ! हनुमान जी की कुशलता की चिन्ता में माता उदास बैठी थीं, श्री पवन पुत्र ने दौड़कर 'माँ-माँ' कहते हुए उनके चरण-कमलों पर सिर रख दिया। माँ के हृदय में वात्सल्य उमड़ पड़ा और नेत्र सजल हो गये। उन्होंने परम भाग्यवान् हनुमान जी के मस्तक पर अपना अभयद कर-कमल रख दिया।

अतिशय स्नेह से माता जानकी ने पूछा -'बेटा ! तुझे सकुशल देखकर मेरा मन हल्का हो गया। तेरा कोई अङ्ग जला तो नहीं ?'

श्री पवन नन्दन तो माता का सहज स्नेह पाकर पुलकित हो गये थे। उन्होंने कहा—माँ! जब आपका परम पावन अभयद कर-कमल मेरे मस्तक पर है, तब त्रिभुवन में मेरा बाल भी बाँका कैसे हो सकता है ? आपकी दया से मेरे यहाँ आने के उद्देश्य की पूर्ति हो गयी। मैने आपके चरणों का दर्शन प्राप्त कर लिया, लंका के रहस्य एवं राक्षसों की शक्ति से मै परिचित हो गया; साथ ही यहाँ के प्रत्येक स्थल को भी मैने अच्छी प्रकार देख लिया। अब आप कृपा पूर्वक मुझे आज्ञा प्रदान करें, जिससे मै प्रभु के चरणों में पहुँचकर आपका सन्देश उन्हें सुना दूं और सर्व समर्थ करुणानिधान यथाशीघ्र लंका में प्रवेश करके इन क्रूर-तम असुरों का संहार करें।'

माता वैदेही के नेत्र बरस पड़े। उन्होंने अत्यन्त व्यथा से कहा—'बेटा ! तुम्हारे यहाँ आने से मुझे सहारा मिल गया था। अब तुम भी जा रहे हो ! तुम्हारे चले जाने के बाद मेरे लिये फिर वही दुःख के दिन और दुःख की रात्रियाँ होंगी। पर यदि तुम थक गये हो तो एक दिन यहाँ किसी गुप्त स्थान में ठहर जाओ। आज विश्राम करके कल चले जाना।'

अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक पवनकुमार ने निवेदन किया—'माँ ! प्रभु का कार्य सम्पन्न हुए बिना मुझे विश्राम कहाँ! आपका अमोघ आशीर्वाद मेरे साथ है। मै जिस वेग से यहाँ आया था, उसी वेग से समुद्र पार कर जाऊँगा। वहाँ कोटि-कोटि वानर-भालू मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। आपका समाचार पाकर उन सबके प्राण लौट आयेंगे। फिर तो वानरी सेना के साथ प्रभु यहाँ आयेंगे ही। आप दोनों को दिव्य सिहासन पर एक साथ विराजमान देखकर ही हम लोग सुखी होगे।'

भगवती सीता ने स्नेह पूर्वक पूछा - 'बेटा मेरे मन मे एक सदेह अभी तक बना हुआ है। मै समझती हूँ, तीन ही प्राणियों में समुद्र को लाघने की शक्ति है—तुममे, गरुड मे और पवन देवता में। फिर बड़े-बड़े वानरों और रीछों के सहायक होने पर भी महाबली सुग्रीव इस दुर्लंघ्य समुद्र को कैसे पार करेंगे ? उनकी विशाल वाहिनी सहित सानुज प्रभु सागर कैसे लाँघ सकेंगे ?'

हनुमान जी ने विनय पूर्वक उत्तर दिया—'माता ! वन्दरो की शक्ति ही कितनी है ! वे इस डाल से कूदकर उस डाल पर चले जाएँगे, बस ! किन्तु परम प्रभु श्री राम की अपरिसीम शक्ति से सब सम्भव है। उनकी कृपा की कोर से अत्यन्त छोटा सर्प भी महाबली गरुड को खा सकता है; सर्वथा पङ्गु गगन-

स्पर्शी गिरिवर को लाँघने में समर्थ हो सकता है। उन मन-बुद्धि से परे अचिन्त्य प्रभु के दर्शन कर समुद्र स्वयं मार्ग दे देगा। यदि उसने मार्ग देने में आनाकानी की तो उसे शुष्क कर देने के लिये सुमित्रा कुमार का ही शर पर्याप्त है।-दूसरे, वानरराज सुग्रीव सहस्रों कोटि वानरों से घिरे है। उन शक्तिशाली कपि राज ने आप के उद्धार की प्रतिज्ञा कर ली है। उनके पास साधनों का अभाव नहीं है। आप धैर्य रखें। अब मेरे स्वामी यहाँ यथा शीघ्र पहुँच कर आपका उद्धार करेंगे।'

श्री अञ्जनानन्द वर्धन के उत्तर से माता को संतोष हुआ। उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से हनुमान जी से कहा—'बेटा! प्रभु के चरणों में मेरा प्रणाम निवेदन कर उन्हें मेरी दयनीय स्थिति बता देना और उनसे मेरी ओर से बद्धाञ्जलि प्रार्थना करना कि वे तुरन्त आयें। मैं प्रतिक्षण उन्हीं की प्रतीक्षा करती हुई जी रही हूँ; अवधि समाप्त होने पर मेरे प्राण नहीं टिक सकेंगे।'

दुःखिनी माता के नेत्रों से आंसू बहते जा रहे थे। उन्हें पोंछ-पोंछ कर वे धैर्य पूर्वक अपने प्राणनाथ के लिये संदेश दे रही थीं—"बेटा! मेरे प्रिय देवर लखनलाल से कहना कि मुझसे अपराध हो गया; वे मुझे क्षमा कर दें। मेरा आशीर्वाद उन्हें देना। वानरराज सुग्रीव, जाम्बवान्, युवराज अङ्गद आदि सब को मेरा आशीर्वाद देना। उन सबसे कहना कि 'मैं आप लोगों के साथ प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा में एक-एक पल बिता रही हूँ।" इतना कहकर कमल-लोचना माता सीता ने अञ्चल से मुँह ढक लिया।

माता की यह विवश अवस्था देखकर महावीर श्री हनुमान का धैर्य जाता रहा। वे भी फफक कर रो पड़े। बड़ी कठिनाई

से वे बोल सके-'माँ ! आप धैर्य धारण कीजिये, मेरे पहुँचते ही प्रभु यहाँ के लिये प्रस्थित हो जायेंगे।'

कुछ रुककर धैर्य पूर्वक हनुमान जी ने कहा-'माता ! प्रभु ने जैसे आपके लिए अपनी मुद्रिका भेजी थी, उसी प्रकार आप भी मुझे अपना कोई चिह्न दे दें, जिसे मैं प्रभु को दिखा सकूँ।'

माता सीता ने अपने केश-पास से चूडामणिको निकाला और उसे पवनकुमार को देते हुए कहा-"बेटा ! इससे श्री आर्य पुत्र और लक्ष्मण तुम्हारा विश्वास कर सकेंगे। उनके विश्वास के लिये मैं तुम्हे एक बात और बतला देती हूँ। तुम मेरे प्राणधन से निवेदन कर देना-'चित्रकूट पर्वत की बात है। एक दिन मेरे जीवन-सर्वस्व एकान्त मे मेरी गोद मे सिर रखे सो रहे थे। उसी समय इन्द्र-पुत्र (जयन्त) काक वेष में वहाँ आया और मांस के लोभ से उसने मेरे लाल-लाल अँगूठे को अपनी तीखी चोंच तथा पंजों से फाड डाला। निद्रा से उठते ही स्वामी ने मेरे पैर का अँगूठा देखा तो व्याकुल होकर उन्होंने पूछा-'प्रिये ! यह किस दुष्ट की करनी है ?' और उसी समय उन्होंने सामने रक्त मे सनी चोंच वाले काक को बार-बार मेरी ओर आते देखा। फिर क्या था ? क्रुद्ध प्रभु ने एक तृण उठाया और उस पर दिव्यास्त्र का प्रयोग करके उस प्रज्वलित अस्त्र को लीला से ही उस कौए की ओर फेंक दिया। भयभीत काक प्राण लेकर भागा। वह तीव्रतम गति से भागता हुआ जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ वह प्रज्वलित अस्त्र उसके पीछे लगा दीख पड़ता था। जयन्त इन्द्र और ब्रह्मादि के समीप गया, किन्तु रामास्त्र के सम्मुख उसे किसी ने आश्रय नहीं दिया। [illegible]-वश होकर 'प्रभो! क्षमा करें। प्रभो! अपराध क्षमा हो।'-कहता हुआ वह प्रभु के

चरणों में गिर पड़ा। दयानिधान प्रभु ने उससे कहा–'यह मेरा अस्त्र अमोघ है अतएव तू अपनी एक आँख देकर चला जा।' उस काक ने अपनी बायीं आँख दे दी और प्रभु से बार-बार क्षमा-याचना करता हुआ वह चला गया। बेटा! उन अपरिसीम-अचिन्त्य-शक्ति सम्पन्न प्रभु से कहना–'वे शीघ्र पधारें।''

पवन नन्दन ने माता के चरणों पर सिर रख दिया और और कहा–'माँ! अब मुझे आज्ञा प्रदान कीजिए।'

माता के नेत्र पुनः बरस पड़े। आँसू पोंछते हुए उन्होने कहा–'बेटा हनुमान! जाओ, पर प्रभु के साथ शीघ्र लौटना। देर न करना। तुम्हारा सर्वविध मङ्गल हो।'

हनुमान जी ने सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी जननी का आशीर्वाद प्राप्त कर मन-ही-मन श्री रघुनाथ जी के चरणों में प्रणाम किया और फिर उछलकर उत्तम अरिष्ट-गिरि पर चढ़ गये। उस शैलराज पर आरूढ हो वायु नन्दन कपि श्रेष्ठ श्री हनुमान ने अपना शरीर बहुत विशाल बना लिया। वे दक्षिण से उत्तर दिशा में सागर पार करने के लिये बड़े वेग से उछले। हनुमान जी के पैरों का दबाव पड़ने के कारण तीस योजन ऊँचा और दस योजन चौड़ा वह शोभाशाली महीधर वृक्षों और ऊंचे शिखरो सहित तत्काल धरती में धँस गया।

अरिष्ट-गिरि से उछलकर आकाश में पहुंचते ही महाबली वज्राङ्ग श्री हनुमान ने भयानक गर्जना की, जिससे दिशाएं थर्रा उठी, आकाश जैसे फट गया, मेघ तितर-बितर हो गये, समुद्र उछलने लगा, गिरि-शृङ्ग टूट-टूट कर गिरने लगे और समूची लंका हिल उठी। असुरों ने समझा कि भूकम्प आया है। वीर राक्षस जहाँ थे, वहीं काँप कर गिर पड़े। गर्भवती राक्षसियो का गर्भपात हो गया। सभा-सदों सहित स्वयं दशग्रीव भी सिंहासन

से नीचे लुढक पडा। उसके बहुमूल्य मुकुट सिर से खिसक कर नीचे गिर गये। इस अपशकुन की असुरों मे सर्वत्र चर्चा होने लगी। सब मे भय और आतक व्याप्त हो गया।

समुद्र मध्य मे पर्वत राज सुनाभ (मैनाक) को स्पर्श कर अत्यन्त वेगशाली पवन कुमार धनुष से छूटे हुए बाण-तुल्य सागर के उत्तरी तट के समीप पहुँचे। महेन्द्र पर्वत पर दृष्टि पडते ही उन्होंने गम्भीर स्वर मे बार बार गर्जना की।

समुद्र के उस ओर

लका-दाहक कपिश्वर के सिहनाद को सुनकर समुद्र के उत्तरतटवर्ती कोटि-कोटि वानर-भालू प्रसन्नता से किलकारी मारते हुए उछलने-कूदने लगे। उन्हे विश्वास हो गया कि हनुमान जी माता सीता के दर्शन कर वापस लौट रहे हैं। शूर-वीर महाबली वानर और भालुओ का समुदाय उत्तर तट पर बैठा हुआ कन्दर्प-कोटि-लावण्य श्री रामदूत की अपलक नेत्रो से प्रतीक्षा कर रहा था। कपिप्रवर श्री मारुतात्मजका सिहनाद समझ कर उन्हें देखने की इच्छा से वीर वानर-भालू एक वृक्ष से दूसरे वृक्षो पर तथा एक शिखर से दूसरे शिखरो पर कूदने लगे। कुछ वानर सर्वोच्च गिरि-शिखरो पर चढकर अतिशय प्रीति पूर्वक स्पष्ट दिखायी देने वाले वस्त्र हिलाने लगे। उसी समय परम वेगशाली बृहत्काय हनुमान जी महेन्द्रगिरि के शिखर पर उतरे।

× × ×

गो-द्विज-हितकारी परम प्रभु पाप-ताप के निवारण, धर्म की स्थापना एव उसके अभ्युदय के लिये प्रत्येक युग मे अवतार धारण करते है। उन प्रभु की मधुर एव मङ्गलमयी लीलाएँ

आश्चर्य जनक होती हैं; किन्तु उनसे सम्पूर्ण धरा का परम हित होता है। आनन्द रामायण में भगवान् श्री राम के किसी कल्प की अवतार-लीला में पवन पुत्र की एक अद्भुत कथा उपलब्ध होती है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

दशग्रीव की सोने की लंका फूंक कर श्री केसरी किशोर जगजननी जानकी के समीप पहुँचे। उन्होंने माता के चरणों में प्रणाम निवेदन कर कहा—'माँ! आप मेरे कंधे पर बैठ जायें। मै आज ही समुद्र पार कर आपको प्रभु के दर्शन करा देता हूँ।'

वैदेही ने उत्तर दिया—'बेटा हनुमान! मेरे अनुपम शूरवीर प्राणनाथ को यह स्वप्न में भी सह्य न होगा कि मुझे अन्य कोई मुक्त कर ले जाय। रावण-वध एवं मेरा उद्धार उन्हीं के कर-कमलों से होने में उनकी और मेरी शोभा है। इससे तुम्हारे स्वामी की कीर्ति भी बढ़ेगी। तुम यह चूड़ामणि और मुद्रिका ले जाकर प्रभु को दे देना और उनसे प्रार्थना करना कि वे यहाँ पहुँचने में तनिक भी विलम्ब न करें।'

श्री आञ्जनेय ने मातृ प्रदत्त चूड़ामणि और मुद्रिका अत्यन्त आदरपूर्वक ले ली और माता के परम पावन पाद पद्मों में प्रणाम् कर लौट पड़े। हनुमान जी उछलकर समुद्र-तटवर्ती गिरि-शिखर पर चढ़ गये। पर्वत उनका वेग सह न सका, चूर्ण हो गया। उसी समय लोकपितामह ने श्री पवनात्मज के द्वारा लंका दहन के विस्तृत विवरण से पूर्ण एक पत्र श्री राम को देने के लिये हनुमान जी को दिया। श्री रामदूत चतुरानन का पत्र एवं माता जानकी की चूड़ामणि और मुद्रिका लेकर समुद्र के ऊपर वेग पूर्वक उड़ते हुए चले। वे भयानक सिंहनाद करते जा रहे थे।

उत्तर दिशा में समुद्र के पार जाने पर वे नीचे उतरे। वहाँ उन्होंने भजन करते हुए एक मुनि को देखा। हनुमान जी ने

उन विरक्त मुनि से कहा 'मुनिवर ! मैं भगवान् श्री राम के आदेशानुसार उनकी प्राणप्रिया जनक दुलारी का पता लगाकर समुद्र पार से आ रहा हूँ। मै तृषाधिक्य से व्याकुल हूँ। कृपया कोई जलाशय बताइये।'

तपस्वी मुनि ने जप करते हुए अपनी तर्जनी अँगुली से जलाशय की ओर सकेत कर दिया।

जब हनुमान जी तपस्वी मुनि को अपनी लका-यात्रा का विवरण सुना रहे थे, तब अपनी उपलब्धियो की स्मृति से उनके हृदय मे बडप्पन की भावना का स्फुरण हो आया। भगवान् ठहरे भक्त-गर्वापहारी ! वे श्री हनुमान जैसे आदर्श सेवक के हृदय मे बडप्पन की भावना का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म स्फुरण भी कैसे सहन कर सकते थे ! तत्काल उन्होंने उसके प्रशमन की व्यवस्था कर दी।

श्रीपवन पुत्र चूडामणि, अँगूठी और विधाता प्रदत्त पत्र जप करते हुए मुनि के समीप रखकर तृषा शान्त करने के लिये जलाशय की ओर चले गये। उसी समय मुनि के समीप उछलता कूदता एक बन्दर आया। उसने उस मुद्रिका को उठाकर साधु के समीप रखे हुए कमण्डल मे डाल दिया और फिर वहाँ से चला गया।

जल ग्रहण कर हनुमानजी लौटे। उन्होने चूडामणि और पत्र के साथ मुद्रिका न देखकर मुनि से पूछा—'मुनिनाथ ! वह मुद्रिका क्या हुई ?'

मुनि ने कमण्डलु की ओर सकेत किया। हनुमान जी ने कमण्डलु मे हाथ डाला तो एक ही साथ उसी आकार प्रकार एव रूप रग की श्री राम नामाङ्कित शत शत मुद्रिकाए निकल आयीं। श्री पवनपुत्र ने पुन कमण्डल मे हाथ डाला। फिर

वैसी ही सैकड़ों मुद्रिकाएं निकलीं। उन्होंने कमण्डल से सहस्रों अंगूठियाँ निकालीं, पर कमण्डलु की अंगूठियाँ समाप्त ही नहीं हो रही थीं। उनकी लायी हुई अंगूठी कौन सी थी, महावीर अञ्जनानन्दवर्धन समझ न सके। उनके आश्चर्य की सीमा न रही।

चकित श्री पवन नन्दन ने मुनि से पूछा—'मुनिराज! इतनी मुद्रिकाएं कहाँ से आयीं और इनमें मेरे द्वारा लायी हुई मुद्रिका कौन सी है ?'

वयोवृद्ध मुनि ने उत्तर दिया—'प्रत्येक अवतार में श्री सीता हरण के उपरान्त जब जब श्री राघवेन्द्र सरकार ने पवन कुमार को उनका पता लगाने के लिए भेजा है, तब तब हनुमान लंका में सीता से मिलकर यहाँ अंगूठियाँ रखी हैं और बन्दरों ने उन को उठाकर इस कमण्डलु में डाल दिया है। इनमें तुम अपनी अंगूठी पहचान कर ले लो।'

हनुमान जी का गर्वांकुर नष्ट हो गया। आश्चर्य चकित हनुमान जी ने मुनि से पूछा—'मुनीश्वर ! आज तक कितनी बार श्री राम ने अवतार ग्रहण किया है ?'

मुनि ने उत्तर दिया—'कमण्डलु से मुद्रिकाएं निकाल कर गिन लो।'

हनुमानजी अञ्जलि भर भर कर अंगूठियाँ निकालने लगे, किन्तु उनका अन्त नहीं हुआ। उन्होंने मुनि के चरणों में प्रणाम किया और फिर मन ही मन कहने लगे—'भगवान् श्री राम की लीला, गुण एवं शक्ति का अन्त नहीं। उनके अवतारों की भी संख्या नहीं। मेरे पूर्व भी प्रभु श्री राम की आज्ञा से सहस्रों हनुमान माता सीता का पता लगा चुके हैं, फिर मेरी क्या गणना है !'

गलित अभिमान आञ्जनेय ने मन ही मन श्री सीताराम के चरणों में प्रणाम किया। ××× फिर हर्षोन्मत्त पर्वत शिखर से पृथ्वी पर कूद पड़े उन्हें देखते ही वानरों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया।

'मैंने माता सीता के दुर्लभ चरणों का दर्शन और स्पर्श प्राप्त कर लिया!'–पवन कुमार ने इतना कहा ही था कि जाम्बवान् ने उन्हें वक्ष से लगा लिया। उनके नेत्रों मे प्रेमाश्रु भर आये। उन्होंने गद्‌गद कण्ठ से कहा 'पवन पुत्र! तुमने हम सब के प्राणों की रक्षा कर ली!'

माता सीता का पता लग जाने के संवाद से वानर प्रसन्नता से किलकारी मारते हुए कूदने लगे। हर्षातिरेक के कारण बहुत से वानर अपनी पूँछ ऊपर उठा कर नाचने लगे। कितने ही अपनी लंबी और मोटी पूँछें घुमाने लगे। कुछ वानर हनुमान जी की पूँछ चूमने लगे और कुछ उनके सम्मुख विविध प्रकार के मधुर फल मूल रखकर उन्हें सुख पहुंचाने के लिए अनेक प्रकार से उनकी सेवा करने लगे। हनुमान जी ने किसी के चरणों में प्रणाम किया तो किसी का आलिङ्गन किया, किसी के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया तो किसी की पीठ ठोक कर उसकी प्रशंसा की। समर्थ श्री रुद्रांश कुछ ही क्षणों में समस्त वानर भालुओं से मिल लिये।

शोकहरण श्री कपिसत्तम से भगवती सीता के दर्शन, रावण से वार्तालाप एवं लंका दाह का समाचार सुनकर प्रसन्नता से उल्लसित युवराज अङ्गद ने हनुमान जी से कहा 'वानर श्रेष्ठ! बल और पराक्रम में तुम्हारे समान कोई नहीं है, क्योंकि तुम इस विशाल समुद्र को लाँघकर फिर इस पार लौट आये। कपि शिरोमणे! एक मात्र तुम्हीं हम लोगों के जीवन दाता हो। तुम्हारे

प्रसाद से ही हम सब लोग सफल मनोरथ होकर श्री रामचन्द्र जी से मिलेंगे। अपने स्वामी श्री रघुनाथ जी के प्रति तुम्हारी भक्ति अद्भुत है। तुम्हारा पराक्रम और धैर्य भी आश्चर्यजनक हैं! अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि तुमने परम वैदेही का दर्शन प्राप्त कर लिया। अब इस सुखद संवाद से श्री राघवेन्द्र का वियोगजनित शोक भी दूर हो जायेगा।'

फिर जाम्बवान् एवं युवराज के परामर्श से यशस्वी हनुमान सहित समस्त वानर समुदाय भगवान् श्री राम को सुखदायक समाचार सुनाने कपिराज सुग्रीव के पास चल पड़ा। हनुमान जी आगे आगे चले और उनके पीछे प्रसन्नता में भरा हुआ वानरों का विशाल समुदाय उछलता कूदता चलने लगा। उस समय सिद्ध आदि भूतगण अत्यन्त वेगशील महाबली बुद्धिमान् पवननन्दन की ओर अपलक नेत्रों से देखते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

आकाश में छलांग मारते हुए हर्षोन्मत्त वानर भालू स्वर्ग के नन्दन वन के तुल्य मनोहर मधुवन के समीप पहुँचे। किष्किन्धाधिपति सुग्रीव के मधुवन की रक्षा उनके मामा महाबली दधिमुख नामक वानर सदा किया करते थे। उस मनोरम वन को देखकर वानर समुदाय मधु पीने एवं फल खाने के लिये लालायित हो उठा। हर्षोन्मत्त वानरो ने इसके लिये युवराज अङ्गद से आज्ञा माँगी। उन्होंने वृद्ध जाम्बवान् से पूछा। जाम्बवान् एवं महावीर श्री हनुमान के अनुमोदन से युवराज ने उन्हें आज्ञा दे दी।

फिर क्या था? प्रसन्नता से भरे हुए पिङ्गल वर्ण वाले वानर मधुवन के सुगन्धित फल मूलो का भक्षण एव मधु का पान करने लगे। वानर मधु पीकर मत्त हो गये। माता सीता

का संवाद प्राप्त होने की प्रसन्नता से मधुमत्त वानरों की बड़ी विचित्र स्थिति थी। आनन्दमग्न होकर कोई गाते, कोई हँसते, कोई नाचते, कोई गिरते पड़ते, कोई जोर से चलते, कोई उछलते कूदते और कोई प्रलाप करते हुए मधु पीते तथा बचा हुआ मधु फेंक देते। कोई फलों से लदे वृक्षों की डालियाँ तोड़ते और कुछ मदमत्त वीर वानर समूचा वृक्ष ही उखाड़ फेंकते। इस प्रकार अत्यन्त रमणीय मधुवन तहस नहस होने लगा।

दधिमुख और अन्य रक्षक दौड़े। युवराज अङ्गद और हनुमान की आज्ञा से मधु पीकर मतवाले वानर उलटे रक्षको को ही डाँटने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने मधुवन के रक्षकों को मारना पीटना भी प्रारम्भ कर दिया।

विवशतः दधिमुख ने वानरराज सुग्रीव के समीप जाकर निवेदन किया –'राजन्! आपने जिस सुन्दरतम मधुवन की चिरकाल से रक्षा की है, उसे अंगद और हनुमान जी की आज्ञा से वानरों ने नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। इतना ही नही, उन्होंने रक्षकों को बुरी तरह मारा पीटा भी है।'

सुग्रीव के हर्ष की सीमा न रही। उन्होंने दधिमुख से कहा– 'मामा जी! निश्चय ही हनुमान जी माता सीता का दर्शन कर चुके हैं, अन्यथा मधुवन के फल खाने और मधु पीने का साहस वानरो में नहीं होता। युवराज ऐसी आज्ञा कदापि नही देते। मधुवन युवराज का ही है। आप उन्हें क्षमा कर दें।'

भगवान् श्री राम ने सुग्रीव से पूछा–'राजन! तुम यह सीता सम्बन्धी क्या बात कर रहे थे?' सुग्रीव ने विनय पूर्वक उत्तर दिया 'प्रभो! लगता है, हनुमान जी माता सीता का दर्शन प्राप्त कर चुके हैं, अन्यथा वे लोग मधुवन के फल खाने और तहस नहस करने का साहस नही कर सकते थे।'

सुग्रीव ने दधिमुख से कहा –'मामाजी ! आप जाकर उन लोगों से कह दें कि वे माता सीता का समाचार सुनाने के लिए प्रभु-चरणों में यथाशीघ्र उपस्थित हों ।

दधिमुख चले गये । भगवान् श्री राम और लक्ष्मण के मुखपर प्रसन्नता की लहर देखकर वानरराज सुग्रीव भी आनन्द-मग्न हो गये ।

श्री हनुमान का परम सौभाग्य

महाबली दधिमुख के द्वारा वानरराज सुग्रीव का आदेश प्राप्त होते ही महामति जाम्बवान्, युवराज अङ्गद और श्री हनुमान जी विशाल वानर-समुदाय के साथ आकाश में उड़ चले ।

उस समय प्रस्रवणगिरि के शिखर पर श्री राघवेन्द्र की पर्णकुटी थी । प्रभु भाई लक्ष्मण के साथ कुटिया के बाहर स्फटिक-शिला पर आसीन थे । समीप ही वानरराज सुग्रीव बैठे थे ।

दूसरे ही प्रसन्न वानर-समूहों के साथ अङ्गद को आकाश-मार्ग से उड़ते हुए आते देखकर वानरराज सुग्रीव ने कमल-नयन श्री राघवेन्द्र से कहा - प्रभो ! धैर्य धारण कीजिए । निस्संदेह पवननन्दन ने श्री सीता देवी का पता लगा लिया है; अन्यथा अवधि समाप्त हो जाने पर युवराज इतने उल्लास से नहीं लौटते । मति सत्तम ! इस कार्य को सिद्ध करने में हनुमान जी के सिवा और कोई कारण बना हो, ऐसा सम्भव नहीं है । वानर शिरोमणि हनुमान जी में ही कार्य-सिद्धि की शक्ति और बुद्धि है । उन्हीं में उद्योग, पराक्रम और शास्त्र-ज्ञान भी प्रतिष्ठित हैं ।'

इस प्रकार वानरराज सुग्रीव परम बुद्धिमान् रघुनन्दन को

धैर्य बँधा ही रहे थे कि अंगद और हनुमान को आगे करके हर्षातिरेक से सिंहनाद करते हुए वीर वानरों का समुदाय निकट आ गया। उन्हें देखकर सुग्रीव ने प्रसन्नता पूर्वक अपनी पूंछ ऊपर उठा दी।

अंगदादि वीर श्री रघुनाथ जी को देखकर हर्षोल्लास पूर्वक आकाश से नीचे उतर आये। समस्त वानरों ने सानुज श्री राम एवं सुग्रीव के चरणों मे प्रणाम किया और पवन कुमार हनुमानजी दौड़कर राघवेन्द्र के भुवन-पावन चरण-कमलो मे लेट गये ! प्रभु के दर्शन कर उनके आनन्द की सीमा न रही। उन्होने कहा 'स्वामी ! माता सीता सतीत्व के कठोर नियमों का पालन करती हुई शरीर से सकुशल है।'

'मैने जगजननी जानकी का दर्शन किया है'— हनुमान जी के इस वचन से श्री राम, लक्ष्मण और किष्किन्धाधिपति सुग्रीव की प्रसन्नता की सीमा न रही। श्री रघुनाथ जी ने अतिशय प्रीति और आदर पूर्वक हनुमान जी की ओर देखा। हनुमानजी प्रभु-चरणो में पुनः-पुनः प्रणाम कर, सुमित्रानन्दन एवं सुग्रीव को भी प्रणाम कर हाथ जोड़े परमप्रभु के मुखारविन्द की ओर अपलक दृष्टि से देखने लगे।

भगवान् श्री राम ने हनुमानजी से पूछा—'वायुनन्दन! देवी सीता कहाँ है ? वे कैसे है ? मेरे प्रति उनका कैसा भाव है ? तुम विदेहकुमारी सीता का पूरा समाचार सुनाओ।'

श्री पवन कुमार ने पहले दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके माता सीता के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होने अत्यन्त नम्रता पूर्वक निवेदन किया 'करुणामय प्रभो ! सौ योजन विस्तृत समुद्र के पार दुरात्मा दशानन की नगरी लंका के दक्षिण-तट पर बसी हुई है। उस राक्षस-पुरी में मैने माता

सीता को अशोक-वाटिका में अशोक-तरुके नीचे अत्यन्त व्यथित अवस्था में आपका निरन्तर स्मरण करते हुए देखा है। प्रभो! आपके वियोग में जलहीन मीन की भाँति छटपटाने वाली माता सीता का दुःख न कहने में ही भला है!'

श्री आञ्जनेय के वचन सुन राघवेन्द्र अधीर हो उठे। उनके नेत्रो से आँसू बहने लगे। पवनपुत्र के नेत्र भी अश्रुपूरित थे, पर अपने अश्रुओं को रोककर वे माता का संदेश कहते जा रहे थे—'माता सीता इस समय अत्यन्त दुःख के दिन व्यतीत कर रही हैं। उन्हें दुष्ट दशानन ने अशोक-वाटिका मे रोक रखा है और क्रूर राक्षसियाँ वहाँ रात-दिन पहरा दिया करती है। उनके शरीर पर एक मैली साड़ी है और उनके सुन्दर केश उलझ-कर जटा की तरह बन गये है। इस प्रकार एक वेणी धारण किये वे सतत आपकी चिन्ता में डूबी रहती हैं। माता जानकी नीचे पृथ्वी पर सोती हैं। वे अन्न-जल को छोड़ देने के कारण अत्यन्त कृश-काय हो गयी हैं और शोक से निरन्तर 'हा राम' 'हा राम' कहती रहती हैं। इस प्रकार माता सीता को मैने आपकी भक्ति से प्रेरित कठोर तपस्या करते एवं दुःसह कष्ट सहते देखा है। प्रभो! चलते समय माता ने आपके विश्वास के लिए अपनी चूड़ामणि दी है। साथ ही उन्होंने चित्रकूट मे (इन्द्रपुत्र जयन्त) कौए की घटना का स्मरण कराते हुए कहा है कि 'स्वामी! इतनी महान् शक्ति के रहते हुए भी आप मौन क्यों है? मेरा अपराध क्षमा कर शीघ्र मेरा उद्धार करें।'

हनुमान जी के वचन सुनकर रघुनाथ जी के नेत्रो मे आँसू भर आये। वे सीता जी द्वारा प्रदत्त चूड़ामणि को हृदय से लगा कर सुग्रीव से कहने लगे—'मित्र! इस चूड़ामणि को देखकर मेरा हृदय द्रवित हो रहा है। यह सुरपूजित मणि जल से प्रकट हुई

थी और किसी यज्ञ में संतुष्ट होकर सुरेन्द्र ने इसे मेरे श्वशुर राजा जनक को दिया था। इस मणिरत्न को उन्होंने विवाह के अवसर पर सीता को दिया, जो सदा मेरी प्रिया सीता के सीमन्त पर सुशोभित होती रही।'

श्री पवन कुमार के द्वारा अपनी प्राणप्रिया सीता का समाचार पाकर प्रभु ने अत्यन्त प्रसन्नता से कहा—'हनुमान! तुमने जो कार्य किया है, वह देवताओं के लिये भी दुष्कर है, मैं नहीं जानता कि इसके बदले तुम्हारा क्या उपकार करूँ? पुत्र! मैंने मनमें खूब विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उऋण नही हो सकता। तथापि लो, मैं अभी तुम्हे अपना सर्वस्व सौंपता हूँ!'

इतना कहकर करुणावतार परमप्रभु श्रीराम ने पवित्रात्मा हनुमान जी को अपनी दोनो भुजाओं से खींचकर अपने हृदय से लगाते हुए कहा—'संसार में मुझ परमात्मा का आलिगन मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, वानरश्रेष्ठ! तुम्हे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है; अतः तुम मेरे परम भक्त और प्रिय हो।'

भगवान् श्री राम के अनन्य भक्त श्री महादेवात्मज की कामना-पूर्ति हुई। उनके वानर-शरीर-धारण का उद्देश्य पूरा हो गया। वे आनन्दमग्न होकर प्रभु के चरण-कमलो पर गिर पडे। अधीर होकर उन्होंने बार-बार प्रार्थना की—'प्रभो! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए!'

भक्तवत्सल प्रभु श्रीराम ने हनुमान जी से पूछा—'हनुमान! तुम विशाल समुद्र लाँघकर लका में कैसे पहुँचे? वहाँ तुम देवी सीता से कैसे मिले और उन्होंने क्या कहा? लंकाधिपति रावण का दुर्ग और उसकी शक्ति कैसी है? यह तुम मुझसे विस्तार पूर्वक कहो।'

लंका-यात्रा का विवरण

प्रभु के मुखारविन्द की ओर निहारते हुए हाथ जोड़े विनीतात्मा पवनपुत्र ने कहा--"प्रभो! मैं सर्वथा पशु, और उसमें भी तुच्छ चञ्चल वानर हूँ। मुझमें विद्या, बुद्धि और शक्ति ही कितनी है! किन्तु आपके प्रताप से तो रूई भी बड़वाग्नि को जला सकती है। इसी प्रकार किष्किन्धाधिपति के आदेश से माता जानकी के दर्शनार्थ मैं खेल-खेल में ही उछला और आकाश में उड़ता हुआ लंका के सागर तट पर पहुँच गया। वहाँ राक्षसों की दृष्टि से बचने के लिए रात्रि में सूक्ष्म रूप से माता जानकी को ढूंढ़ने लगा। दशानन की प्रिय अशोक-वाटिका में अशोक वृक्ष के तले शोकमग्ना माता के दर्शन कर मैं अधीर हो गया। मैं वृक्ष पर पत्तों में छिपकर बैठा ही था कि वहाँ क्रूर दशानन आ पहुँचा। उसने सतीत्व की प्रज्वलित मूर्ति वियोगिनी माता को वश में करने के लिए उन्हें बहुत डराया-धमकाया; किन्तु जब माता ने उसे कुत्ते की तरह दुत्कार दिया, तब वह अधम राक्षस माता को मारने दौड़ा। अपनी प्रिया मन्दोदरी के समझाने से वह एक मास की अवधि देकर वहाँ से चला गया। राक्षसियों ने भी माता को बहुत डराया। उन राक्षसियों के चले जाने पर माता जी असह्य दुःख के कारण प्राण त्याग देने के लिये प्रस्तुत हो गयीं।

"उस समय मैंने वृक्ष के पत्तों में छिपे-छिपे आपके जन्म से लेकर दण्डकारण्य में जाने, सीता-हरण, सुग्रीव से मैत्री, बाली-वध आदि की संक्षिप्त कथा सुनाते हुए कहा कि 'किष्किन्धाधिपति सुग्रीव ने आपका पता लगाने के लिये चारों दिशाओं

में करोड़ों वानरों को भेजा है। मैं भी उन्हीं का भेजा हुआ हूं। आज आपका दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हो गया।"

'मेरे मुख से आपकी मधुर लीला-कथा सुनकर माता ने कहा –'जिन्होंने मुझे यह अमृत-तुल्य संवाद सुनाया है, वे मेरे सामने प्रकट क्यों नहीं होते ?'

"मैंने नीचे उतर कर माता के चरणों मे प्रणाम किया। मुझ वानर को देखकर पहले तो वे सहम गयी, परन्तु मैंने उन्हे क्रमशः सब बातें बतलायी। इसके बाद मैंने आपकी मुद्रिका उन्हें दी, तब माता के मन मे मेरे प्रति विश्वास उत्पन्न हुआ।

"क्रूरतम रावण के यहाँ दुष्ट राक्षसियो के बीच अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली वियोगिनी जननी, पुत्र को देखकर रो पड़ी। उन्होंने कहा–'बेटा! जिस प्रकार इन राक्षसियो के द्वारा मैं अहर्निश सतायी जा रही हूँ, वह मेरे प्राणनाथ को बता देना।'

मैने उन्हे अनेक प्रकार से धैर्य बँधाया और कहा 'माँ! बस, मेरे प्रभु के समीप पहुँचने की ही देर है। अमित शक्ति-सम्पन्न श्रीराघवेन्द्र आपका संवाद पाते ही यहाँ पहुंच कर इस असुर-कुल का विध्वंस कर देंगे।'

"रोती हुई माता जानकी ने अत्यन्त करुणापूर्वक आपके शीघ्र आने की प्रार्थना करते हुए लक्ष्मण के लिये कहा कि 'लक्ष्मण! तुम्हे मैंने अज्ञानवश कुछ कठोर वचन कह दिया था, उसके लिए तुम मुझे क्षमा करना और श्री रघुनाथ जी के साथ शीघ्र आकर मेरी रक्षा करना, अन्यथा एक मास के उपरान्त मैं जीवित नहीं रहूँगी।"

इतना कहकर माता सीता रोने लगीं। उन्होंने वानर-राज सुग्रीव, महामति जाम्बवान्, युवराज अंगद तथा समस्त

वानरों को आशीर्वाद देते हुए सबसे शीघ्र लंका पहुँच कर राक्षसों को नष्ट करने की प्रार्थना की है।"

श्री पवननन्दन के द्वारा भगवती जानकी का समाचार सुनकर श्री राम अत्यन्त व्याकुल हो गये। लक्ष्मण के नेत्र बरसने लगे और समस्त वानरों के भी नेत्र भर आये, पर हनुमानजी धैर्यपूर्वक कहते जा रहे थे—'माता की आज्ञा से मैं अशोक-वाटिका के फल खाने चला, पर रावण से मिलने की इच्छा से मैंने वह मनोरम वाटिका विध्वंस कर दी। रावण के पुत्र अक्षयकुमार के साथ सहस्रों असुरों को मारने के बाद मैं इन्द्रजित के ब्रह्मपाश में बंधकर रावण के सम्मुख पहुँचाया गया। वहाँ उस दुष्ट ने दण्डस्वरूप मेरी पूँछ जलाने का आदेश दे दिया। बस, आपकी कृपा से सारी लंका जल गयी।'

भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण, वानरराज सुग्रीव, महामति जाम्बवान्, अङ्गद, द्विविद, मैन्द, पनस, नल और नील आदि महान् वानरगण लङ्का में घटित हुई घटनाओं को ध्यान पूर्वक सुन रहे थे। हनुमानजी सहसा श्री राघवेन्द्र के चरणों पर गिर पड़े और बोले—'प्रभो! यह सब कुछ मैंने नहीं किया है। अन्तर्यामी स्वामी! मेरे अन्तर में प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति से आपने जो लीला करायी है, मैं वही निवेदन कर रहा हूँ।'

हनुमानजी आगे कहने लगे—'करुणामय स्वामी! वहाँ मैंने त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई दिव्य लंका पुरी देखी। उस पुरी के चारों ओर लंबे-चौड़े द्वार हैं। उनमें अत्यन्त मजबूत किवाड़ और मोटी-मोटी अर्गलाएँ लगी हैं। उन द्वारों पर अत्यन्त विशाल एवं शक्तिशाली यन्त्र लगे हैं, जो बाण और पत्थरों के गोलों की वर्षा करते हैं। उनके द्वारा लंका में प्रविष्ट होना अत्यन्त कठिन है। पुरी के चतुर्दिक् सोने का परकोटा है, जिसे तोड़ना अत्यन्त

दुष्कर है। उसमें मणि, मूंगे, नीलम और मोतियों का काम किया गया है। परकोटों के चारों ओर ग्राह और विशाल मत्स्यपूरित अगाध जल वाली खाइयाँ हैं। उन चारों द्वारों के सम्मुख खाइयों पर लकड़ी के ऐसे यन्त्रमय विशाल एवं सुदृढ़ पुल बने हैं, जिन पर शत्रु सेना के आते ही उसे यन्त्रों द्वारा खाइयों मे एव चारो ओर फेंक दिया जाता है। लंका पर आक्रमण करने का कोई मार्ग नहीं है। उसके चारों ओर दुर्गम, नदी, पर्वत, वन, खाई और सुदृढ़ परकोटा आदि हैं। लंका विस्तृत समुद्र के दक्षिण तटपर बसी है अतएव लक्ष्य का किसी प्रकार पता न मिल सकने के कारण वहाँ जलयान से जाना भी बड़ा कठिन है।

"लंका के पूर्व द्वार पर दस सहस्र प्रचण्ड वीर राक्षस रहते हैं। उसके दक्षिण द्वार पर चतुरङ्गिणी सेना के साथ एक लाख राक्षस योद्धा, पश्चिम द्वार पर दस लाख राक्षस और उत्तर द्वार पर दस करोड़ राक्षस तथा मध्यभाग की छावनी में सैकड़ों सहस्र दुर्जय वीरवर निशाचर रहते हैं। हाथी, घोड़े, खाइयों और शतघ्नियों आदि से दुष्ट दशानन की लका सुरक्षित है, किन्तु आपकी कृपा-शक्ति से मैंने प्रायः सारी कठिनाइयाँ समाप्त कर दी है—लका के सुदृढ़ द्वार नष्ट कर दिये, खाइयाँ पाट दीं, परकोटों को धराशायी कर दिया, विशालकाय राक्षसी सेना का चतुर्थांश नष्ट कर दिया और समूची लंका फूंककर राख कर दी है। रावण के नागरिकों एवं उसके सैनिकों में ही नहीं, स्वय उसके मन मे भी आपका भय और आतङ्क व्याप्त हो गया है। असुर-सैन्य का मनोबल तो समाप्त ही हो गया है। अतएव अब अविलम्ब शत्रु पर आक्रमण करना ही उचित प्रतीत होता है।"

दुःखशमन महावीर हनुमान जी सारा संवाद सुनाकर नव-नीरद-वपु प्रभु श्री राम के मुखारविन्द की ओर अपलक दृष्टि से देखने लगे। हनुमान जी के वचन सुन प्रभु ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा 'हनुमान ने जो कार्य किया है, उसका करना देवताओं के लिए भी कठिन है! पृथ्वीतल पर और कोई उसका मन से भी स्मरण नहीं कर सकता। भला, ऐसा कौन है, जो सौ योजन विशाल समुद्र को लांघने और राक्षसों से सुरक्षित लंकापुरी का ध्वंस करने में समर्थ हो? हनुमान ने सुग्रीव के सेवक-धर्म को खूब निभाया। संसार मे ऐसा न कोई हुआ और न आगे होगा ही। उसने जानकी जी का पता लगा कर मुझको तथा रघुवंश, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सभी को बचा लिया है।'

इसके बाद सीता पति श्री राम ने किष्किन्धाधिपति से कहा—'मित्रवर सुग्रीव! इस समय विजय नामक मुहूर्त व्यतीत हो रहा है, अतएव तुम समस्त सैनिकों को इसी समय प्रस्थान करने के लिये आदेश प्रदान करो। इस मुहूर्त में यात्रा करके मै निश्चय ही समस्त राक्षसों सहित दुर्जय दशानन को नष्ट करके देवी सीता को ले आऊँगा।'

फिर क्या था? सुग्रीव ने तुरन्त किष्किन्धा के शासन प्रबन्ध की व्यवस्था की और अत्यन्त उल्लास पूर्वक उन्होंने समस्त यूथपतियों एवं वानरों को कूच करने की आज्ञा दे दी। वीर वानरों के मन में लंका को पीस डालने का अत्यधिक उत्साह भरा था। वे सब एक स्वर में बोल उठे—'श्री सीताराम की जय! सानुज श्री राम की जय!!'

सुग्रीव की ओर से कोटि-कोटि वीर वानरो और रीछों की महान् सेना प्रस्थित हुई। सबके मन मे हर्ष एवं उत्साह भरा था। उस विशाल सेना के मध्य वल्कल पहने, जटाजूट

बाँधे और तूणीर कसे वीरवर कमल-नयन श्री राम परम सौभाग्यशाली हनुमान जी के कधे पर बैठकर चले। वीरवर लक्ष्मण युवराज अङ्गद के कधे पर बैठे थे। सुग्रीव दोनो भाइयों के साथ चल रहे थे। गज, गवाक्ष, मैन्द, द्विविद, नल, नील, सुषेण और जाम्बवान् तथा अन्य शत्रुहन्ता सेनापतिगण सेना के चारो ओर सावधानी पूर्वक देखते जा रहे थे। अत्यन्त चञ्चल वीर वानर यूथपतियो के आदेश एव सुग्रीव के भय से सर्वथा अनुशासित, बडे वेग से उछलते-कूदते, गरजते, फल खाते और मधु पीते दक्षिण दिशा की ओर चल रहे थे।

उन वानर वीरो के सौभाग्य का क्या कहना, जो सुर-मुनि-दुर्लभ निखिल सृष्टि के स्वामी दयाधाम श्री राम के कार्य के लिये उन्हीं के साथ आनन्द पूर्वक प्रयाण कर रहे थे। उनके सौभाग्य को देख-देख कर इन्द्रादि देवगण मन-ही-मन उनकी प्रशसा कर रहे थे। भगवान् श्री राम के प्रसन्नता पूर्वक प्रस्थान करते ही माता जानकी का वाम नेत्र और उनकी बायीं भुजा फडकने लगी। उसी समय लका मे अनेक प्रकार के अपशकुन प्रारम्भ हुए, जिन्हें देख असुरकुल मन-ही-मन चिन्तित हो उठा।

वानरों की वह विशाल वाहिनी तनिक भी विश्राम किये बिना रात दिन चल रही थी। वे लोग श्री राघवेन्द्र के साथ मलयाचल और सह्याद्रि के मनोरम वनों का दृश्य देखते और उन पर्वतो को पार करते हुए अन्त मे महान् नीलोदधि के तट पर जा पहुँचे। वहाँ वानरो ने अत्यधिक प्रसन्नता से गर्जना की 'जय श्री राम! जय श्री सीता राम!!'

कोटि-कोटि वानरो की सामूहिक गर्जना के सम्मुख महा समुद्र की भयानक गर्जना मन्द पड गयी।

१ माता अजना की गोद मे बालक हनुमान ।
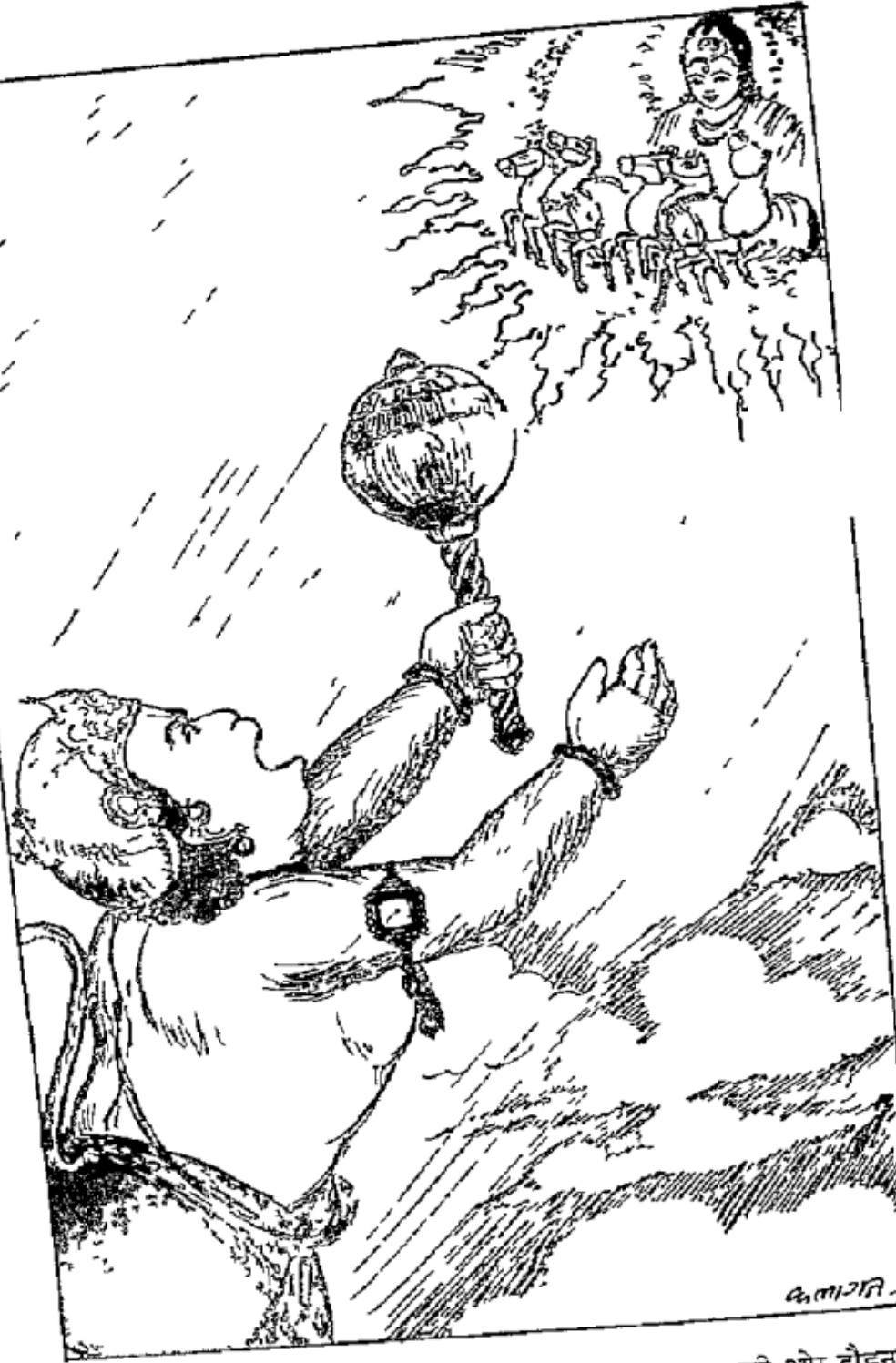
२ हनुमान जी द्वारा चमकते सूर्य को लाल फल समझकर उसकी ओर दौड़ना

३ देवराज इन्द्र द्वारा बालक हनुमान पर वज्र प्रहार करना जिससे उनकी ठुड्डी (हनु) टूट गई थी और उनका नाम 'हनुमान' पडा।

४ ऋषियो द्वारा हनुमान को श्राप देना जब तक तुम्हे कोई तुम्हारा बल याद न करायेगा तब तक तुम कुछ विशेष न कर सकोगे।

५. हनुमान जी का राम-लक्ष्मण को कन्धे पर बैठाकर सुग्रीव के पास ले जाना।

६ समुद्र पार करते हुए हनुमान जी द्वारा मैनाक पर्वत का स्पर्श करना।

७. हनुमान जी का सुरसा के मुख में घुसकर निकलना।

८ हनुमान जी द्वारा अशोक वाटिका में सीताजी को वृहदाकार शरीर दिखाना।

९ हनुमान जी द्वारा अशोक वाटिका विध्वंस

१० हनुमान जी का सजीवनी बटी का पहाड उठाकर लाना।

११. हनुमान जी का संजीवनी लेकर लौटते समय भरत-मिलन।

१२ रावण की सेना मे मारुति नन्दन का विकराल रूप।

१३ हनुमान जी द्वारा गरुड का अभिमान भंग करना।

१४ अजनी नन्दन द्वारा ज्ञानोपदेश।

१५ मारुति का अपनी छाती चीरकर 'राम-सीता' को अपने हृदय में धारण किये हुए दिखाना।

१६ श्री राम भक्ति में लीन हनुमान जी।

विभीषण पर अनुग्रह

'महान् वीर वानर-भालुओं की विशाल वाहिनी के साथ सीतापति श्रीराम समुद्र-तट पर पहुँच गये।' इस संवाद से लंका में बेचैनी फैल गयी। राक्षस और राक्षसियां अत्यन्त चिन्तित होकर परस्पर कहने लगीं—'एक वानर ने तो समूची लंका की भयानक क्षति कर दी थी, अब कोटि-कोटि वीर वानरों के समुदाय से इस राष्ट्र की क्या दशा होगी!' भयभीत तो दशग्रीव भी था, उसके भी मन में आतंक व्याप्त था; किन्तु वह उसे प्रकट नहीं होने देता था। उसने सभा-भवन में जाकर सभासदों से कहा—'वीर राक्षसो! वानरों की सेना लेकर दशरथ-नन्दन राम और लक्ष्मण लंका पर आक्रमण करने के उद्देश्य से समुद्र के उस तट पर पहुँच गये हैं। अतएव आप लोग निर्णय करें कि इन तुच्छतम नर और वानरों को किस प्रकार दण्डित किया जाय?'

राक्षसाधिपति के इन वचनों को सुनकर चाटुकार सभासद उसकी दुर्जयता, उसके अमित बल और पराक्रम की प्रशंसा करने लगे। प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, कुम्भकर्ण कुमार, निकुम्भ, इन्द्रजित्, महापर्श्व, महोदर, कुम्भ, अतिकाय आदि राक्षसों ने रावण का अभिवादन किया और उसके शौर्य की सराहना करते हुए कहा—'यह तो बड़े सौभाग्य की बात है कि हम क्षुधार्तों के प्रिय आहार नर और वानर काल की प्रेरणा से स्वयं हमारे मुँह में चले आ रहे हैं! पवनपुत्र तो हमारी उदारता और असावधानी के कारण क्षति पहुंचाकर चला गया; किन्तु अब तो वे वानर किसी प्रकार अपना अपना प्राण बचाकर भी यहां

से नहीं लौट सकेंगे। उन दशरथ कुमारों ने समराङ्गण में आपके धनुष से छूटे हुए दो जीभ वाले सर्पों के समान तीक्ष्णतम विषाक्त शरों का दर्शन नहीं किया है, इसी कारण वे प्रज्वलित दीप पर पतंग तुल्य मर-मिटने के लिये इधर आने की कुचेष्टा करने जा रहे हैं। चिन्ता की तो कोई बात ही नहीं; आप आदेश दें, हम लोग अभी समुद्र-पार जाकर वानरों को ढूँढ-ढूँढकर उन्हें पृथ्वी से मिटा दें।'

रावण के सिर पर तो मृत्यु नाच रही थी, इसी कारण इस प्रकार की चाटुकारिता भरी बातें उसे प्रिय लग रही थी। किन्तु उसी समय परम नीतिज्ञ एवं शुभैषी उसके छोटे भाई विभीषण ने उसके चरणों में सिर झुकाकर विनय पूर्वक कहा—"राजन्! आप बुद्धिमान्, विद्वान् और नीति के मर्मज्ञ हैं। आप अच्छी प्रकार विचार कर देखें, ये सभासद आपके यथार्थ हित की चिन्ता न कर केवल आपको सन्तुष्ट करने के लिए प्रलाप कर रहे हैं। श्री राम के दूत एक वानर ने दुर्लंघ्य लंका में प्रविष्ट होकर प्रमदा वन सहित सम्पूर्ण लंका को—सैन्य-स्थल, वाहन आदि महत्त्वपूर्ण स्थलों को फूँक ही नहीं दिया, सहस्रों असुरों सहित आपके वीर कुमार को मार डाला, तब यहाँ वैसे करोड़ों वानरों के आ जाने पर क्या होगा? इन बुभुक्षित सभासदों की क्षुधा उस समय कहाँ चली गयी थी, जब हमारा नगर अनाथ की भाँति प्रज्वलित अग्नि में धायँ-धायँ जल रहा था?'

"भैया! श्री राम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वे साक्षात् अव्यक्त नारायण देव हैं। उनकी यशस्विनी पत्नी सीताजी साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। सीताजी लंका में यमपाश की भाँति आ गयी हैं। अतएव जब तक श्री रामचन्द्र जी के

तीक्ष्णतम व्याल-बाण धनुष से नहीं छूटते और जब तक समर-प्रिय नखदंष्ट्रा युद्ध विशारद वानर लंका में फैलकर इसे नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ नहीं कर देते, तब तक आप विपुल रत्न-राशि के साथ श्री मिथिलेशकुमारी को उनकी सेवा में सम्मान पूर्वक सौंप दें; अन्यथा विश्वास कीजिये, स्वयं कालकण्ठ शंकर भी यदि आपकी रक्षा करना चाहें, सुरपति एवं यमराज भी आपको अपनी गोद में छिपा लें, या आप पाताल में ही प्रविष्ट हो जायें, तो भी श्रीराम के अमोघ बाण से आपके जीवन की रक्षा नहीं हो सकती।"

विभीषण ने अत्यन्त आदर-पूर्वक रावण से आगे कहा – 'भैया ! महामुनि पुलस्त्य ने भी अपने शिष्य से इसी बात को आपकी सेवा में निवेदन करने के लिये कहलवाया है कि आप अहंकार त्यागकर माता जानकी को परमप्रभु श्री राम की सेवा में लौटाकर उनका स्मरण करें; मेरे विचार से इसी प्रकार आपका, मेरा, इन राक्षसों का तथा सम्पूर्ण लंका-निवासियों का हित हो सकेगा।'

विभीषण का सत्परामर्श सुनकर उसके नाना माल्यवान्, जो बड़े बुद्धिमान् एवं उसके सचिव भी थे, बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दशग्रीव से विनम्रता पूर्वक कहा 'स्वामी ! आपके छोटे भाई परम नीतिज्ञ विभीषण ने सर्वथा उचित बात कही है। इनकी बात स्वीकार कर लेने मे ही मङ्गल है।'

किंतु काल-प्रेरित दशानन को हित के वचन प्रिय नहीं लगे। उसने क्रुद्ध होकर कहा–'अरे ! शत्रुओ की प्रशंसा करने वाले इन दोनो मूढ़ असुरो को यहाँ से निकाल बाहर करो।'

रावण के वचन सुनकर माल्यवान् तो अपने घर चले गये, किंतु विभीषण ने अपने भाई के हित के लिये पुनः विनयपूर्वक

निवेदन किया—'भैया ! आप कृपापूर्वक अपने हित की बात सोचें। आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि विदेहकुमारी सीता के लंका प्रवेश के भय से ही यहाँ बार-बार अमङ्गलजनक शकुन हो रहे हैं। उनकी सुस्पष्ट सूचना देने मे आपके मन्त्री संकोच करते हैं। मैं बार-बार आपके चरणों में विनीत प्रार्थना करता हूँ कि श्री राम बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं। आपके ये अन्यतम् वीर इन्द्रजीत, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ, अतिकाय आदि समराङ्गण मे कोसलेन्द्र के सम्मुख नहीं टिक सकते। अतएव श्रीराम के साथ शत्रुता करना उचित नहीं है। उनके अमोघ बाणों का स्मरण कर मिथिलेशकुमारी सीता को उनके पास लौटाकर उनसे क्षमा माँग लेने में ही आपकी भलाई है।'

विभीषण के हित भरे वचन सुनकर रावण अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। क्रोध से काँपते हुए उसने कहा—कुलकलंक निशाचर ! तू मेरे ही दिये हुए भोगो से पुष्ट होकर तथा मेरे ही पास रह-कर शत्रु के सम्मुख मुझे अपमानित देखना चाहता है। मेरे भय से त्रैलोक्य काँपता है, किंतु तू मुझे सामान्य मनुष्य से भयभीत करने का प्रयत्न कर रहा है। धिक्कार है तुझे ! यदि तेरे सिवा और कोई इस प्रकार का वचन बोलता तो मै उसे तत्क्षण मार डालता।'

इतना कहते हुए क्रोध के वशीभूत रावण विभीषण पर जोरो से पाद-प्रहार कर बैठा और बोला—'तू भी जा, उन्हीं वनवासी मनुष्यों मे मिल जा।'

रावण के इतने कटुवचन और पाद-प्रहार सहकर भी परम बुद्धिमान् और महाबली विभीषण ने उनके चरणों में प्रणाम किया और हाथ में गदा ले सभा से निकलकर आकाश में खड़े। अपने चार मन्त्रियो के साथ आकाश में स्थित होकर उन्होने

रावण से कहा—'राजन ! सदा प्रिय लगने वाली मीठी-मीठी बातें कहने वाले लोग तो सुगमता से मिल सकते हैं, परन्तु जो सुनने में अप्रिय किंतु परिणाम में हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुनने वाले दुर्लभ होते हैं। आप मेरे पिता तुल्य हैं। आपके पाद-प्रहार एवं धिक्कार की मुझे चिन्ता नहीं, किन्तु आपका नाश न हो जाय, मैं इसलिये व्याकुल हूँ। पर मैं देखता हूँ कि आप और आपकी यह विशाल सभा काल के वश हो गयी है, इसी कारण यहां सब कुछ विपरीत सोचा, समझा और करने का निश्चय किया जा रहा है। मैं श्री राम के द्वारा आपके पुत्र, सेना, वाहनादि, सम्पूर्ण राक्षसवंश और आपका मारा जाना नहीं देख सकता, इस कारण श्री रघुनाथ जी की शरण में जा रहा हूँ। मेरे चले जाने पर आप अपने महल में सुदीर्घकाल तक सांसारिक भोग-भोगते रहियेगा, पर पीछे मुझे दोष मत दीजियेगा।'

बस, विभीषण अपने मन्त्रियों सहित श्री राघवेन्द्र के चरणों की शरण लेने चल पड़े। उनके हृदय में आनन्द की लोल लहरियां उठ रही थीं। श्रीराम-चरणों के दर्शन की तीव्र लालसा से वे आतुर हो रहे थे। वे मन-ही-मन सोचते जा रहे थे—'आज मेरे महान् सुकृतों का उदय हुआ है, जो मै परम प्रभु श्रीराम के उन लाल-लाल चरण कमलों के दर्शन प्राप्त करूंगा, जिनके लिये देवता और मुनि जन्म-जन्मान्तरों तक कठोर तप करते हैं, फिर भी उन्हें वे भक्त-सुखदायक चरण प्राप्त नहीं होते। जिन चरण कमलों के स्पर्श से गौतम-पत्नी तर गयी, जिन अरुण चरणों को भगवती सीता ने अपने हृदय में धारण कर रखा है, कर्पूरगौर महादेव अपने अन्तर्हृदय में जिनका ध्यान करते रहते हैं और जिन लोकपावन चरणों की

पादुकाओं की भाग्यवान् भरत श्रद्धा-भक्ति पूर्वक निरन्तर पूजा करते हैं, आज मैं अधम राक्षस होकर भी उन चरणों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करने जा रहा हूँ।'

इस प्रकार मनोरथ करते हुए वज्रधारी इन्द्र के समान तेजस्वी, उत्तम आयुधधारी, दिव्य आभूषणो से अलंकृत विभीषण कवच और अस्त्र-शस्त्र धारण किये अपने चारों पराक्रमी मन्त्रियो सहित समुद्र के इस पार आ गये। वानरो ने पर्वत तुल्य महान् विभीषण को आते देखकर उन्हें रावण का दूत समझा। वे उन्हें वानरों के पहरे में ठहराकर निवेदन करने के लिये सुग्रीव के समीप पहुँचे। वानरराज सुग्रीव ने भगवान् श्रीराम से विनयपूर्वक कहा–'प्रभो! रावण का भाई विभीषण आपसे मिलने आया है।'

भगवान् श्रीराम ने किष्किन्धाधिपति सुग्रीव से पूछा–'सखे! इस विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है?'

नीति-निपुण सुग्रीव ने उत्तर दिया–'प्रभो! राक्षस अत्यन्त मायावी तो होते ही है, इनमें अन्तर्धान होने की भी शक्ति होती है। यह शूर-वीर विभीषण अत्यन्त क्रूर रावण का भाई है। अतः इसे कठोर दण्ड देकर मन्त्रियों सहित मार डालना चाहिये।'

सुग्रीव के वचन सुनकर श्री पवनकुमार व्याकुल हो गये। इनका सहज स्वभाव है कि ये अपने सम्पर्क में आये हुए व्यक्ति को चरणो में पहुँचाकर ही संतुष्ट होते हैं। लंका मे ये विभीषण से मिल चुके थे। ये उनकी निश्चला भक्ति से प्रभावित हुए थे। माता सीता का पता उन्होने ही बताया था और दुष्ट दशानन के सभाभवन मे श्री हनुमान जी का पक्ष विभीषण ने ही लिया था और अब तो वे सब कुछ त्यागकर श्री भगवान् के चरणो

में आ गये। ऐसी स्थिति में वानरराज ने ऐसे वचन कहकर यह क्या अनर्थ कर दिया ? पवनकुमार शरणागतवत्सल प्रभु के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

भक्त सर्वस्व प्रभु श्रीराम ने सुग्रीव से कहा—"सखे ! तुमने नीति की तो बड़ी सुन्दर बात कही; किंतु शत्रु दुःखी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षी की शरण में आ जाय तो शुद्ध हृदय वाले श्रेष्ठ पुरुष को अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिये। यदि शरण में आया हुआ पुरुष संरक्षण न पाकर उस रक्षक के देखते-२ नष्ट हो जाय तो वह उसके सारे पुण्यों को अपने साथ ले जाता है। इस प्रकार शरणागत की रक्षा न करने में महान् दोष बताया गया है। शरणागत का त्याग स्वर्ग और सुयश की प्राप्ति को मिटा देता है तथा मनुष्य के वल और वीर्य का नाश करता है। अतएव जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो, शरण आने पर मै उसे भी नहीं छोड़ता ! जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्योंही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। वानरराज सुग्रीव ! मेरा यह व्रत है कि जो एक बार मेरी शरण आकर शुद्ध हृदय से 'मै आपका हूँ'—यह कहता है मैं उसे सम्पूर्ण प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ। मैं तो इच्छा होने पर क्षणार्द्ध में ही लोकपालों सहित सम्पूर्ण लोकों को ध्वंस कर उन्हें पुनः रच सकता हूँ और पृथ्वी पर जितने असुर हैं, उन सबको मेरे भाई लक्ष्मण अकेले ही क्षण भर में मार सकते हैं। अतएव तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। विभीषण को ले आओ।"

भक्तिसुधा पानेच्छु प्रभु श्रीराम के वचन सुन पवन-नन्दन के आनन्द की सीमा न रही। उनके रोम-रोम पुलकित हो गये और नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये।

'भक्तवत्सल श्री राम की जय !' हनुमान जी ने सिंहनाद किया और अङ्गदादि वानरों के साथ अत्यन्त उल्लासपूर्वक उछलकर सबसे पहले विभीषण के समीप जा पहुँचे और उन्हें आदरपूर्वक प्रभु के समीप ले आये। विभीषण ने जटाजूट धारण किये श्याम-गौर श्री राम-लक्ष्मण के अलौकिक सौन्दर्य को देखा तो देखते ही रह गये। कुछ क्षणों तक इस स्थिति में रहने के अनन्तर वे साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए कहने लगे-- 'पद्मपत्राक्ष प्रभो ! मैं आपकी पत्नी भगवती सीता को हरण करने वाले राक्षसकुलोत्पन्न दुष्ट दशानन का छोटा भाई विभीषण हूँ। मैं अत्यन्त तामसिक प्रकृतिवाला अधम राक्षस हूँ। मैंने अपने भाई राक्षसराज से विदेहनन्दिनी सीता को आपके पास भेजने की प्रार्थना की थी, किंतु वे कालवश मुझ पर कुपित हो गये। तब मैं आपके यश का स्मरण कर अपने स्त्री-पुत्रों को वहीं छोड़ अपने मन्त्रियों के साथ संसार पाश से मुक्त होने के लिये मुमुक्षु के रूप मे आपके चरणो की शरण आ गया। करुणानिधान ! आप मुझ अधम पर भी करुणा की वृष्टि कर मेरा जीवन और जन्म सफल करें। मुझे अपने चरणों की छाँह से रख लें !'

विभीषण की भक्तिपूर्ण वाणी सुनते ही लक्ष्मण सहित भक्त-प्राणधन प्रभु ने तुरंत उठकर उन्हें उठाया और अपनी लंबी भुजाओं को फैलाकर हृदय से लगा लिया। फिर प्रभु ने उन्हें अतिशय प्रीतिपूर्वक अपने समीप बैठाकर सर्वप्रथम सम्बोधित किया--'लंकेश !'

गदगद कण्ठ से भगवान का स्तवन करते हुए विभीषण ने निवेदन किया--'प्रभो ! मैं आपके सुर-मुनि दुर्लभ, त्रयताप हर चरण कमलो का दर्शन करके कृतार्थ हो गया। मैं धन्य हो

गया। मुझे सर्वस्व प्राप्त हो गया। राजराजेश्वर श्रीराम! मुझे विषयजन्य सुख की इच्छा नहीं है, मुझे तो आपके चरण-कमलों में आसक्ति रूपा भक्ति ही अभीष्ट है।'

किंतु श्री राघवेन्द्र ने अनुज सौमित्र से कहा–'लक्ष्मण! मेरे दर्शन का फल इन्हें अभी प्राप्त होना चाहिये। तुम सिन्धु का जल ले आओ।'

सीतापति श्रीराम की आज्ञा प्राप्त होते ही लक्ष्मण कलश में समुद्र का जल ले आये और प्रभु के आदेश से मुख्य-२ वानरों के बीच विभीषण को लंका के राज्य पद पर अभिषिक्त कर दिया। जिस सम्पत्ति को रावण ने अपने दसों सिर चढ़ाकर भगवान् शंकर से प्राप्त किया था, वही महान् सम्पत्ति हनुमान जी के अनुग्रह से भगवान् श्री राघवेन्द्र ने विभीषण को अत्यन्त संकोचपूर्वक प्रदान कर दी।

यह देखकर समस्त वानर-भालू प्रसन्न हो गये, किन्तु हनुमानजी की प्रसन्नता की तो सीमा ही नहीं थी। सच तो यह है कि हनुमान जी की कृपा से ही असुर विभीषण परम-प्रभु के प्रीति-भाजन हुए। लंकाधिपति रावण से तिरस्कृत, निराश्रित विभीषण श्री अञ्जनानन्दन की कृपा से निखिल सृष्टि के स्वामी प्रभु के समीप ही नहीं पहुँचे, लंकाधीश ही नहीं हुए, प्रभु के सर्वथा आत्मीय और स्वजन बन गए। दया-द्रंहृदय हनुमान की दया का यह सजीव निदर्शन है।

सेतु निर्माण

सर्वसमर्थ भगवान् श्रीराम ने लंका में पहुँचने का मार्ग माँगने के लिये तीन दिनों तक समुद्र से प्रार्थना की, किन्तु मूढ़ जलनिधि पर विनय का कोई प्रभाव न पड़ते देखकर वे कुपित

हो गये । उनके विशाल नेत्रों मे लालिमा छा गई और उन्होंने ब्रह्मदण्ड के समान भयंकर बाणो को अभिमन्त्रित करके अपने श्रेष्ठ धनुष पर चढ़ाकर खीचते हुए कहा–'आज समस्त प्राणी रघुकुलोद्भव राम का पराक्रम देख लें। मै समुद्र को अभी सुखा देता हूँ, फिर हमारे कोटि-२ वीर वानर भालू पैदल ही इसे पार कर जायेंगे।'

अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न महाबाहु श्री राम के धनुष की प्रत्यञ्चा खींचते ही पृथ्वी काँपने लगी, पर्वत डगमगाने लगे और सूर्यदेव की उपस्थिति में ही आकाश और दसो दिशाओं में अन्धकार फैल गया। अन्तरिक्ष से कर्कश ध्वनि के साथ वज्रपात होने लगे। समुद्र क्षुब्ध हो उठा और वह भय के कारण मर्यादा त्यागकर अपने तट से एक योजन आगे बढ़ आया। मत्स्य और मकर आदि जल-जन्तु व्याकुल हो गये। तब जम्बूनद-नामक सुवर्ण-निर्मित आभूषण धारण किये, स्निग्ध वैदूर्यमणि के समान दिव्य श्यामरूपधारी समुद्र हाथों में अपने ही अन्तराल में स्थित दिव्य रत्नो का उपहार लिये सीतापति श्री राम के सम्मुख उपस्थित हुआ।

सागर ने अपरिमित शक्ति-सम्पन्न प्रभु के चरणों मे अनुपम उपहार रखकर उन्हे साष्टांग प्रणाम किया। फिर उसने अत्यन्त विनयपूर्वक स्तुति करते हुए कहा–'प्रभो! सृष्टि रचना के समय आपने ही मुझे जड़ बनाया था। अतएव मेरी जड़ता पर दृष्टि न डालकर कृपापूर्वक मुझे क्षमा प्रदान करें। आपकी सेना मे समस्त शिल्पकला में निपुण नल और नील दो वानर है। ऋषियो के आशीर्वाद से इनके स्पर्श कर लेने से बड़े-२ पर्वत भी आपके प्रताप से जल मे तैरने लगेंगे। ये सुन्दर और सुदृढ़ पुल का निर्माण करने में पूर्ण समर्थ हैं। साथ ही मै

भी अपनी ओर से सहायता करूंगा। इस प्रकार मेरी मर्यादा तो सुरक्षित रहेगी ही, सब लोग अनन्तकाल तक आपकी संसार-मलापहारिणी कीर्ति का गान करते रहेंगे।'

भगवान् श्री राम ने समुद्र के कथनानुसार अपना अमोघ वाण 'द्रुमकुल्य' नामक देश की ओर छोड़ दिया। वह वाण एक क्षण में ही वहाँ का सर्वनाश करके पूर्ववत् उनके तूणीर में लौट आया। प्रभु ने सेतु-निर्माण की आज्ञा दी।

'जय श्री राम ! जय श्री सीताराम !!' और जय 'श्री लक्ष्मण !!!' का उच्च घोष आकाश में व्याप्त हो गया। उस समय हनुमान जी के उत्साह की सीमा न थी। वे स्वयं तो वृक्षों और पर्वतों को ला-लाकर नल-नील को देते तथा उनके संकेत पर समुद्र में डालते ही, अत्यन्त चञ्चल वानरों से भी संयम और उत्साहपूर्वक यही कार्य कराते। हनुमान जी के सङ्ग उनकी दक्षता, उनके श्रम, उत्साह तथा प्रोत्साहन से समस्त वानर भालू उछलते कूदते हुए जाते और शीघ्रतापूर्वक वृक्षों एवं पर्वतों को ले आते। श्री पवनकुमार की अध्यक्षता में उनके प्रोत्साहन से वानरों ने बड़ा परिश्रम किया। नल और नील ने भी अथक परिश्रम करके पहले ही दिन चौदह योजन लंबा और दस योजन चौड़ा पुल तैयार कर दिया।

हनुमान जी को इतने से ही संतोष नहीं हुआ। दूसरे दिन उन्होंने वानर-भालुओं को और प्रोत्साहित किया। वृक्षों और पर्वतों को लिये पवनपुत्र प्रायः समस्त वानरों के शौर्य, वीर्य, लगन एवं श्रम की प्रशंसा करते। फलस्वरूप दूसरे दिन बीस योजन सेतु और तैयार हुआ। हनुमान जी को अब भी संतोष नहीं था। जगजननी जानकी की करुणमूर्ति उनके हृदय में

व्याकुलता उत्पन्न कर रही थी। इस कारण वे यथाशीघ्र माता सीता को प्रभु चरणों में ले आने एवं लकाधिपति दशानन की मुक्ति के लिये अत्यन्त व्यग्र थे। नल-नील सेतु निर्माण के कार्य में अथक परिश्रम कर रहे थे और श्री पवन नन्दन उनकी कला एवं उनके श्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। फलतः तीसरे दिन सेतु इक्कीस योजन और बनकर तैयार हो गया। पर श्री अञ्जनानन्दवर्धन पूर्ण संतुष्ट नहीं हुए। वे वनों और पर्वतो में इतनी शीघ्रता से जाते और वानरों, भालुओं एवं नल-नील आदि के यहाँ इतनी त्वरित गति से पहुँचते कि सभी वानर-भालू समझते कि मारुतसुत मेरे ही पास है। इस कारण चौथे दिन एक योजन और अधिक--बाईस योजन पुल निर्मित हो गया।

बुद्धि, शक्ति एवं पराक्रम के सजीव विग्रह हनुमान जी ने वानरो को प्रोत्साहित करते हुए कहा--'परम भाग्यवान् वानर भालुओ ! निश्चय ही तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम जगन्नियन्ता श्री राम एवं निखिल भुवन की स्वामिनी माता जानकी के कार्य में निमित्त बन रहे हो; अन्यथा भगवान् श्री राम की इच्छा शक्ति से ही राक्षसकुल का ध्वंस हो जाता। प्रभु-चरणों में हम सबका जीवन-जन्म सफल हो रहा है। वह सुअवसर इन्द्रादि देवताओ के लिये भी दुर्लभ है। अब यह सेतु कुल तेईस योजन और शेष रह गया है। अतएव आज इसे सागर पार लंका के तट तक अवश्य ही पूरा हो जाना चाहिये।'

उपकृत गोवर्धन

कोटि-कोटि वानरों ने गर्जना की--'जय श्री राम !' हनुमानजी ने पुनः सिंहनाद किया--'जय श्री सीताराम !' और

विशाल पर्वत लेने उड़ चले। दक्षिणके समस्त पर्वत सेतुमें डाल दिये गए थे, इस कारण वे उत्तराखण्ड में हिमालय के समीप पहुँचे। उन्हें वहाँ द्रोणाचल का सात कोस का सुविस्तृत शिखर अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत हुआ। शिखर का नाम था—गोवर्धन। जब भगवान् श्री राम के अवतार के समय देवगण उनकी दुर्लभतम मङ्गलमयी लीला का दर्शन करने एवं उसमें सहयोग प्रदान करने के लिये पृथ्वी पर अवतरित हुए, उसी समय गोवर्धन भी गोलोक से पृथ्वी पर आये।

श्री पवनपुत्र ने उन्हें उठाना चाहा, किंतु अत्यन्त आश्चर्य! इनकी सम्पूर्ण शक्ति लगने पर भी द्रोणागिरि का वह शिखर टस से मस नहीं हुआ! श्री राम भक्त हनुमान ने अपने प्रभु का ध्यान किया ही था कि उन्हें उस श्रेष्ठ गिरि-शिखर की महत्ता विदित हो गयी। 'अरे! ये तो साक्षात् श्री भगवान् के विग्रह गोवर्धन हैं। इनकी प्रत्येक शिला शालग्राम-तुल्य है।'

तब तो हनुमानजी ने महिमामय गोवर्धन के चरणों में अत्यन्त आदर पूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक कहा—'पावनतम गिरिराज! मैं आपको प्रभु चरणों में उपस्थित करना चाहता हूँ, फिर आप क्यों नहीं चलते? वहाँ आप दयाधाम प्रभु की मङ्गल-मूर्ति के दुर्लभ दर्शन ही नहीं करेंगे, प्रभु आपके ऊपर अपने सुख-शान्ति निकेतन चरण कमल रखते हुए सागर पार कर लंका में जायेंगे।'

श्रीराम प्रिय पवनकुमार के वचन सुनते ही गोवर्धन आनन्दमग्न हो गये। 'वहाँ श्री भगवान् के दुर्लभ दर्शन ही नहीं होंगे, प्रभु मुझ पर अपने त्रयतापहर चरण कमलों को रखते हुए ही समुद्र पार करेंगे' इस कल्पना से उनके सुख की सीमा न रही। उन्होंने आञ्जनेय से कहा—'पवन कुमार! मैं आपका

अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। आपकी इस कृपा से मैं भी उऋण नहीं हो सकता। आप दया करके मुझे यथाशीघ्र प्रभु के समीप ले चलें। आपकी इस अहैतुकी कृपा के लिये मैं आपका सदा ही उपकृत बना रहूँगा।'

अबतो हनुमानजी ने उन्हें अत्यन्त सरलता से उठा लिया कपीश्वर के वामहस्त पर गोवर्धन पुष्प-तुल्य प्रतीत हो रहे थे। गोवर्धन की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। वे मन-ही-मन सोच रहे थे -'आज इन महावीर हनुमानजी की कृपा से कितने दिनो के बाद मेरी लालसा पूरी होगी। मङ्गल एवं परोपकारी मूर्ति इन पवन नन्दन ने इस प्रकार कितने प्राणियों का हित किया है ? मेरा सौभाग्य है, जो आज मुझे इनके दर्शन और स्पर्श का सुअवसर प्राप्त हो गया। आज इनकी कृपा से मुझे मेरे जीवन-सर्वस्व कमल नयन प्रभु के दर्शन हो जायेंगे !'

इस प्रकार गोवर्धन मन ही मन प्रभु एवं उनके भक्त का स्मरण, चिन्तन एवं गुणगान करते जा रहे थे और उधर भक्तवाञ्छाकल्पतरु परम प्रभु ने सोचा—'गोवर्धन गोलोक के मेरे मुरली मनोहर श्री कृष्ण रूप के अनन्य भक्त हैं। यहाँ उन्होंने कहीं मुझसे उसी रूप में दर्शन देने का आग्रह किया तो उनके सच्चे शुभैषी हनुमानजी की ओर देखकर मुझे मर्यादा का त्याग करना पड़ेगा। क्या किया जाय ?'

प्रभु सोच ही रहे थे कि उस पाँचवे दिन शत योजन लंबा और दस योजन चौड़ा सुविस्तृत दृढ़तम सेतु का शेष तेईस योजन भाग भी पूर्ण हो गया। फिर क्या था ? तत्क्षण श्री राघवेन्द्र की आज्ञा प्रचारित हुई—'सेतु बन्धन का कार्य पूर्ण हो गया। अतएव अब पर्वत एवं वृक्ष आदि की आवश्यकता नहीं।

जिनके हाथ में जो पर्वत या वृक्ष जहाँ कहीं हों, वे वहीं उन्हें छोड़कर तुरंत प्रभु के समीप पहुंच जायें।'

चञ्चल एवं वीर वानरों ने दौड़ते हुए सर्वत्र श्री रघुनाथ जी की आज्ञा सुना दी। उनके हाथ में जो पर्वत या वृक्ष जहाँ थे, वे उन्हें वहीं छोड़कर प्रभु के समीप दौड़ चले। आज दक्षिण भारत मे वीर वानरों के छोड़े हुए वेही पर्वत विद्यमान हैं। वहाँ के पर्वत तो पहले सेतु के काम आ चुके थे। महामहिमामय गोवर्धन को अपने हाथ में लिये केसरी-किशोर उस ब्रजधरा तक पहुँचे ही थे कि उन्होंने प्रभु की आज्ञा सुनी। हनुमान जी ने गोवर्धन को तुरन्त वहीं रख दिया, किन्तु उन्हें अपने वचन का ध्यान था। उसी समय उन्होंने देखा, गोवर्धन अत्यन्त उदास होकर उनकी ओर आशा भरे नेत्रों से देख रहे है।

हनुमान जी ने कहा 'आप चिन्ता मत कीजिये। मेरे भक्तप्राणधन स्वामी मेरे वचनों की रक्षा तो करेंगे ही।' और वे शीघ्रता से प्रभु की ओर उड़ चले।

हनुमानजी ने प्रभु के समीप पहुँचकर उनके चरणों में प्रणाम किया और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। दयामय सर्वज्ञ प्रभु ने उनका अभीष्ट पूछा तो उन्होंने अत्यन्त विनम्रता से निवेदन किया -'प्रभु! मैंने गोवर्धन को आपके दर्शन और परमपावन चरण-कमलों के स्पर्श का वचन दे दिया था, किन्तु वानरों के द्वारा आपका आदेश प्राप्त होते ही मैंने उन्हें ब्रज-भूमि में रख दिया। वे अत्यन्त उदास हो गये। मैंने उन्हें पुनः आश्वासन भी दे दिया है।'

सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल श्री राम ने हनुमान के चुप होते ही कहा-'प्रिय हनुमान! तुम्हारा आश्वासन और तुम्हारा वचन मेरा ही आश्वासन और मेरा ही वचन है। गोवर्धन को

मेरी प्राप्ति अवश्य होगी, किन्तु उन्हें मेरा मयूर कुटी वंशीविभूषित वेष प्रिय है। अतएव तुम उनसे कह दो कि जब मैं द्वापर में व्रजधरा पर उनके प्रिय मुरली-मनोहर रूप मे अवतरित होऊँगा, तब उन्हे मेरे दर्शन तो होगे ही, मैं व्रज-बालको सहित उनके फल-फूल एवं तृणादि समस्त वस्तुओं का उपयोग करते हुए उन पर क्रीड़ा करूंगा। इतना ही नहीं, अनवरत सात दिनों तक मैं उन्हें अपनी अँगुली पर धारण भी किये रहूंगा।'

'कृपामूर्ति श्री राम की जय!' पवनकुमार के मुख से स्वतः निकल पड़ा। आनन्दमग्न हनुमान जी अन्तरिक्ष से गोवर्धन के समीप पहुँचे। अत्यन्त उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हुए उनसे हनुमान जी ने कहा—'गिरिराज! आप धन्य है। भक्त-पराधीन प्रभु ने आपकी कामना-पूर्ति का वचन दे दिया। द्वापर मे मयूर-मुकुटी वंशीधर, (आपके आराध्य) वेष में वे आपके ऊपर बाल-क्रीड़ा करेंगे। वे प्रभु उस समय आपके जल, पत्र, पुष्प, फल, शिला एव तृण-लतादि प्रत्येक वस्तु का उपभोग तो करेंगे ही, सात दिनो तक निरन्तर आप उनके कर-कमल पर निवास भी करेंगे।'

गिरिराज आनन्दमग्न हो गये। नेत्रों मे प्रेमाश्रु भरे उन्होंने अत्यन्त विनम्रता पूर्वक श्री राम भक्त हनुमान से कहा—'आञ्जनेय! आपके इस महान् उपकार के बदले मै आपको कुछ भी देने की स्थिति मे नहीं हूँ। मैं आपका सदा कृतज्ञ रहूँगा।'

सहस्राब्दियों मे गिरिराज पूजित हैं। विरक्त महात्मा एवं भक्त श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उनकी परिक्रमा कर अपने अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त करते हैं। परमभाग्यवान् गिरिराज जी को यह गौरवशाली पद द्वापर मे अवतरित वंशीधर रूपी श्री राम ने

अपने भक्त आञ्जनेय के वचन की रक्षा के लिए ही प्रदान किया था।

निश्चय ही जिस भाग्यवान् को हनुमान जी का दर्शन प्राप्त हो जाय, उसे प्रभु-प्राप्ति तो होकर ही रहेगी। करुणा-मूर्ति पवनकुमार अपने भक्त को प्रभु तक पहुंचाये बिना चैन नहीं लेंगे। गिरिराज से अत्यन्त प्रेम पूर्वक मिलकर परमोपकारी हनुमान जी अपने प्रभु श्री रघुनाथ जी के चरणों में लौट आये।

× × ×

विशाल समुद्र पर सौ योजन लम्बा और दस योजन चौड़ा सुविस्तृत सेतु निर्मित हो जाने पर लीलाविहारी भक्त-वत्सल प्रभु श्री राम ने चकित होकर वानरों से पूछा–'अरे! ये पत्थर पानी पर कैसे तैरने लगे?'

वानरों ने अत्यन्त विनय पूर्वक उत्तर दिया–"प्रभो! आपके 'राम' नाम की महिमा है। उसी के प्रताप से ये पर्वत और बड़े-बड़े शिलाखण्ड समुद्र पर तैर रहे हैं।"

कौतूहलवश श्री रघुनन्दन ने छोटे-छोटे दो-तीन पत्थर उठाकर समुद्र के जल पर रखे, पर वे सब-के-सब डूबकर नीचे चले गये। तब प्रभुने कहा–'यह कैसे सम्भव है? मैं स्वयं इन पत्थरों को अपने हाथ से छोड़ रहा हूं, किन्तु ये पानी पर तैरने के बदले डूबते जा रहे हैं।'

वानर-भालू एक-दूसरे का मुंह देखने लगे, किन्तु उसी समय परम प्रभु श्री राम के अनन्य भक्त पवनकुमार ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया–'स्वामी! आप जिसे अपने कर-कमलों से छोड़ देंगे, वह तो सहज ही डूब जायगा! आपके बिना प्राणी की गति कहां?'

श्रीराघवेन्द्र मुस्करा उठे।

वानर-भालुओं की विशाल वाहिनी के साथ श्रीराम ने समुद्र को पार किया। वहाँ उन्होंने सुवेल पर्वत पर डेरा डाला। एक ऊँचे, सुन्दर एवं समतल शिखर पर सुमित्रानन्दन ने वृक्षों के कोमल पत्ते और सुन्दर सुमनों को सजाया और फिर उसके ऊपर एक सुन्दर मृगछाला बिछा दी। उसी आसन पर करुणावतार परम प्रभु श्री राम वानरराज सुग्रीव की गोद में अपना सिर रखकर लेट गये थे। उनकी बायीं ओर उनका विशाल धनुष तथा दाहिनी ओर अक्षय तूणीर पड़ा था। प्रभु एक दीप्तिमान् तीक्ष्णतम शर पर अपना कर-कमल फेर रहे थे और भाग्यवान् विभीषण जी उनसे धीरे-धीरे परामर्श कर रहे थे। अत्यन्त सौभाग्यशाली अङ्गद और हनुमान उनके परम दुर्लभ चरण-कमलों को धीरे-धीरे दबा रहे थे और उनकी दृष्टि प्रभु के मुखारविन्द पर थी। वीरवर सौमित्र धनुष-बाण धारण किये प्रभु के सिरहाने अत्यन्त सावधान होकर वीरासन से बैठे थे।

उसी समय पूर्व आशा में उदित चन्द्रमा को देखकर भगवान् श्री राम ने कहा—'आप लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार बतलायें कि इस चन्द्रमा में यह श्याम रंग कैसा है?'

सबने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिये। सबके अन्त में हनुमान जी ने उत्तर दिया—'प्रभो! चन्द्रमा आपका प्रिय दास है और आपकी सुन्दर श्यामला मूर्ति उसके हृदय में निवास करती है, वही श्यामता सुधांशु में झलक रही है।'

सच तो यह है, पवन-तनय के रोम-रोम में उनके प्राणाराध्य श्री राम ही बसे हुए थे। उन्हें सर्वत्र अपने प्रभु के ही दर्शन होते थे। अतएव शशि-मण्डल में श्रीराम-दर्शन उनके लिये स्वभाविक ही है।

समरांगण में

दूसरे दिन भगवान् श्री राम ने अपने सचिव महामति जाम्बवान् के परामर्श से दशग्रीव को समझाने के लिए दूत के रूप में युवराज अङ्गद को लंका भेजा; किंतु रावण के सिर पर जो मृत्यु नाच रही थी, इस कारण उस पर किसी बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। युद्ध प्रारम्भ हो गया। राक्षस मायावी थे और वे भिन्दिपाल, खड्ग, शूल, परशु, शक्ति, तोमर, धनुष-बाण और गदा आदि विविध अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करते थे। वे वीर एवं पराक्रमी तो थे ही, पराजय की स्थिति उत्पन्न होते ही अदृश्य हो जाते और आकाश से धूल, अस्थि एवं रक्तादि की वर्षा करने लगते। अपनी सेना को व्याकुल देखकर मायापति श्रीराम अपने एक ही शर से उन मायावी राक्षसों की माया का विनाश कर देते, तब वानर-भालू पुनः अत्यधिक उत्साह से युद्ध करने लगते।

भगवान् श्री राम की विशाल सेना में सुग्रीव, मन्त्रियों सहित विभीषण, हनुमान, अङ्गद, नील, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, पनस, कुमुद, हर, यूथपति रम्भ, जाम्बवान्, सुषेण, ऋषभ, दुर्मुख तथा शतबलि आदि प्रमुख योद्धा थे। इन परमपराक्रमी वीरों के अधीन लाखों-लाखों योद्धा वानर-भालू थे। वानर-भालुओं के पास कोई अन्य अस्त्र-शस्त्र तो थे नहीं; ये गगनचुम्बी अट्टालिकाओं पर चढ़ जाते और उनके कंगूरों को तोड़कर राक्षसों पर प्रहार करते, क्रोध से किटकिटाते हुए असुरों पर कूद पड़ते, उन्हें थप्पड़ों से मारते, उनपर वज्रतुल्य मुष्टिका से प्रहार करते, उनको लातों से

रौंदते और दाँतों से काटते। वानर असुरों की गर्दन तोड़ देते और नखों से उनका हृदय विदीर्ण कर देते। उनके गालों को फाड़ डालते, उनकी भुजाएँ उखाड़ कर फेंक देते। कुछ वानर-भालू राक्षसों को पकड़कर उन्हें रेत में गाड़ देते और कुछ उन्हें पकड़कर समुद्र में डुबा देते।

समर-भूमि में महापराक्रमी एवं महाबली पवनपुत्र तो राक्षसों के लिये साक्षात् काल-तुल्य ही प्रतीत होते थे। उन्होंने अकेले ही लंका के मनोरम प्रमदा-वन को तहस-नहस करके कितने ही शूरवीर असुरों का संहार कर दिया था। उनके हाथों रावण-पुत्र अक्षकुमार की मृत्यु एवं वैभवमयी अनुपम लंका का सर्वनाश राक्षस देख चुके थे। आकाश को विदीर्ण करने वाला श्री हनुमान का सिंहनाद उन्हें क्षणार्ध के लिये भी विस्मृत नहीं हुआ था, अतएव उनके हतोत्साह होने के लिये मर्कटाधीश का नाम ही पर्याप्त था। जहाँ प्रज्वलित अग्नि के समान दुर्धर्ष हनुमान जी स्वयं हाथों में विशाल शैल धारण कर मेघ-गर्जन करते हुए दीख जायें, वहाँ तो राक्षसों के प्राण-पखेरू ही उड़ जाते थे। ओज, तेज एवं स्फूर्ति के साकार विग्रह वज्राङ्गबली जहाँ पहुँचते, वहाँ राक्षस-सैन्यका सामूहिक संहार हो जाता। अधिकांश राक्षस उनकी झपेट से रक्त-वमन करते हुए प्राण त्याग देते और कुछ भाग कर लंका में प्रवेश कर जाते।

श्री हनुमान जी एक ही स्थान पर युद्ध करते हों, ऐसी बात नहीं, वे जब जहाँ वानर सैन्य पर असुरों का दबाव पड़ता देखते, वहीं 'जय श्री राम' का गगन-भेदी घोष करते हुए सीधे राक्षसों के मध्य उनके ऊपर कूद पड़ते। राक्षस-समूह का दलन हो जाता। वे अश्व, सारथि एवं रथ सहित वीरों को आकाश में इतने वेग से फेंकते कि वे चक्कर काटते हुए समुद्र के जल में

गिरकर समाप्त हो जाते । वे असुरों को उनकी टाँग, हाथ या सिर—जब जिसका जो अङ्ग हाथ में आया, पकड़ कर समुद्र में फेंक देते । इस प्रकार हनुमान जी त्वरित गति से सहस्रों असुरों का संहार कर देते । वे छोटे-छोटे वृक्षों को तो स्पर्श ही नहीं करते थे, सीधे छलांग मारते और समीप का बड़ा पर्वत उठाकर विद्युत्-गति से लौटते और असुरों पर फेंक देते । रह-रहकर कुछ पर्वत और विशाल शिलाखण्ड लंका में भी फेंकते रहते । सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच जाती ।

पवनपुत्र श्री हनुमान अविश्रान्त युद्ध-क्षेत्र में राक्षसों का इतना भयानक संहार करते कि रण में उपस्थित असुर-गणों के मन में रावण के सर्वनाश का निश्चय हो ही जाता । हनुमानजी अत्यन्त तीव्र गति से युद्ध के प्रत्येक स्थल पर पहुँचते । जहाँ वानर भालू दुर्बल पड़ते, वहीं वे राक्षसों पर टूट पड़ते; उनको समाप्त कर अपनी सेना में उत्साह बढ़ाते और फिर तुरंत दूसरी ओर चले जाते । उनमें इतनी स्फूर्ति थी कि एक होते हुए भी वे सभी वानरों को अपने ही समीप एवं राक्षसों को अपने ही सम्मुख दीखते ।

रावण के प्रख्यात वीर धूम्राक्ष, अवनि, अकम्पन, अतिकाय, देवान्तक और त्रिशिरा आदि प्रमुख राक्षस हनुमान जी के हाथों मारे गये, इस समाचार से रावण अधीर हो गया । वज्रधारी इन्द्र पर विजय प्राप्त करने वाले उनके प्रख्यात शूर-वीर पुत्र मेघनाद ने उसे आश्वासन दिया और युद्ध सामग्री से सम्पन्न वेगशाली रथ पर आरूढ़ होकर वह युद्ध क्षेत्र में पहुँचा ।

हनुमान जी की वीरता, पराक्रम एवं रण कौशल से स्वयं इन्द्रजित् भी मन ही मन भयभीत रहता था और युद्ध में भरसक उनसे दूर ही रहने का प्रयत्न करता था । उस दिन उसने वानर

सेना का भयानक संहार किया। उसकी बाण वर्षा से सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी, मैन्द, नल, ज्योतिर्मुख तथा द्विविद आदि सभी प्रख्यात शूरवीर वानर घायल हो गये। इतना ही नहीं, उसके ब्रह्मास्त्र से श्रीराम और लक्ष्मण भी मूर्च्छित हो गये।

अपने घायल सैनिकों को देखते हुए विभीषण जब शरविद्ध वृद्ध जाम्बवान् के समीप पहुँचे तो उनका हृदय काँप उठा। उन्हें जाम्बवान् के जीवन के सम्बन्ध में संशय उत्पन्न हो गया था। विभीषण ने उनके विशाल शरीर पर प्रेम पूर्वक हाथ फेरते हुए उनका समाचार पूछा, तब जाम्बवान् ने उत्तर में कहा— 'राक्षसराज! मेरे सभी अङ्ग तीक्ष्ण बाणों से विंधे हुए हैं; अतः कष्ट के कारण मैं तुम्हें नेत्र खोलकर देख भी नहीं सकता, केवल स्वर से तुम्हें पहचान रहा हूँ। तुम इतना ही बता दो कि वानर श्रेष्ठ अञ्जना नन्दन जीवित हैं या नहीं ?'

विभीषण जी ने चकित होकर उनसे पूछा—'ऋक्षराज! आपने वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद की बात तो दूर रही, स्वयं भगवान् श्री राम और सौमित्र तक का भी समाचार नहीं पूछा। पवनपुत्र हनुमान जी के प्रति आपका सर्वाधिक प्रेम दीख रहा है; इसका हेतु क्या है ?'

बाणविद्ध जाम्बवान् ने अत्यन्त कष्ट से उत्तर दिया— 'राक्षसराज! यदि वीरवर हनुमान जीवित हों तो वानरों की मरी हुई सेना भी जीवित ही है—ऐसा समझना चाहिए और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हम लोग जीते हुए भी मृतक के ही तुल्य हैं! तात! यदि वायु के समान वेगशाली और अग्नि के समान पराक्रमी पवन कुमार हनुमान जीवित हैं तो हम सबके जीवित होने की आशा की जा सकती है।'

उसी समय हनुमानजी वहाँ पहुँच गये और उन्होंने बूढ़े जाम्बवान् के दोनों चरणों को स्पर्श करके विनय पूर्वक प्रणाम किया। मारुतात्मज के स्पर्श से पीड़ित जाम्बवान् का मुख दीप्तिमान् हो उठा। उन्होंने हनुमान जी से कहा–'वानरसिंह! आओ, सम्पूर्ण वानरों की रक्षा करो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पूर्ण पराक्रम से युक्त नहीं है। तुम्हीं इन सबके परम सहायक हो। यह समय तुम्हारे ही पराक्रम का है। मैं दूसरे किसी को इसके योग्य नहीं देखता।'

× × ×

स्वयं कराल काल की मूर्ति कज्जलगिरि-तुल्य कुम्भकर्ण रण-क्षेत्र में उतरा। उसे देखते ही वानर-रीछ वृक्ष और पर्वत उखाड़कर उसके ऊपर डालने लगे। वे एक-एक वार में करोड़ों पहाड़ों के शिखरों से उस पर प्रहार कर रहे थे, परंतु उससे न तो कुम्भकर्ण का मन ही विचलित हुआ और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदार के फलों की मार से हाथी पर कुछ भी असर नहीं होता। वानर-भालू भयभीत हो गये। उसी समय श्री हनुमान जी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कुम्भकर्ण को एक घूँसा मारा। आञ्जनेय की वज्र-मुष्टि के एक ही प्रहार से वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। भाग्यवश वह एक ही दिन के युद्ध में भगवान् श्री राम के वाण से मुक्त हो गया।

× × ×

विवशतः क्रुद्ध रावण स्वयं युद्ध-भूमि में आया। उसके हाथ में अत्यन्त भयानक एवं दीप्तिमान् धनुष था। उसने अपने तीक्ष्णतम शरों की वर्षा से वानर-सैन्य को विचलित कर दिया। उस समय वज्राङ्गबली हनुमान कूद कर उसके रथ के समीप

पहुँच गये और अपना दाहिना हाथ उठाकर उन्होंने रावण को भयाक्रान्त करते हुए कहा – 'देखो, पाँच अंगुलियों से युक्त मेरा यह दाहिना हाथ उठा हुआ है। तुम्हारे शरीर में चिरकाल से जो जीवात्मा निवास करता है, उसे आज यह इस देह से अलग कर देगा।'

परमपराक्रमी रावण ने अत्यन्त कुपित होकर कहा– 'वानर! तुम निश्चिन्त होकर पहले मुझ पर प्रहार करलो, तब तुम्हारा पराक्रम देखकर मैं तुम्हारा प्राण-हरण करूँगा।'

हनुमान जी ने उत्तर दिया—'तुम यह क्यों भूल जाते हो कि मैंने पहले ही तुम्हारे प्राणप्रिय अक्षकुमार को मार डाला है।'

आञ्जनेय की इस उक्ति से रावण का हृदय जल उठा। उसने तुरंत हनुमान जी के वक्ष पर हाथ से प्रहार किया।

बल-विक्रम-सम्पन्न महातेजस्वी रावण की मुष्टिका के आघात से हनुमान जी क्षण भर के लिए विचलित हो गये, किन्तु वे बड़े बुद्धिमान् और तेजस्वी थे। सुस्थिर होते ही उन्होंने भी अत्यन्त क्रोधपूर्वक राक्षसराज को कसकर एक घूंसा मारा।

परमपराक्रमी वज्राङ्ग महावीर का वज्र-तुल्य घूँसा लगते ही रावण काँप उठा। कुछ क्षणोपरान्त उसने सँभलकर कहा – 'शाबास वानर! पराक्रम की दृष्टि से तुम मेरे प्रशंसनीय प्रतिद्वन्दी हो!'

वीरवर पवनकुमार ने उत्तर दिया—'अरे रावण! तुम अब भी जीवित हो, इसलिये मेरे पराक्रम को धिक्कार है! अब तुम एक बार और मुझ पर प्रहार करो। तुम्हारे प्रहार के अनन्तर जब मेरा मुक्का पड़ेगा, तब तुम यमलोक पहुँच जाओगे।'

श्रीमर्कटाधीश के वाग्बाण से राक्षसराज रावण के नेत्र लाल हो गये। उसने अत्यन्त कुपित होकर हनुमान जी के वक्ष पर अपना प्रचण्ड घूँसा मारा।

रावण के मुक्के से हनुमान जी पुनः विचलित हो गये। धैर्यपूर्वक उनके संभलते-संभलते रावण वानर-सेनापति नील पर चढ़ बैठा। हनुमान जी उधर दौड़े किन्तु रावण को नील से युद्ध करते देखकर उन्होंने कहा—'अरे निशाचर! इस समय तुम दूसरे से युद्ध कर रहे हो, इस कारण मैं तुम पर प्रहार नहीं कर रहा हूँ!'

× × ×

इस प्रकार हनुमान जी की प्रचण्ड वीरता के कारण शत्रुओं के रक्त से लिप्त उनका दर्शन होने पर रावण भी मन-ही-मन काँप उठता था। एक बार वह सुमित्रानन्दन से युद्ध करने में लगा था तथा लक्ष्मण के तीक्ष्णतम शरों से व्याकुल होकर भी वह उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचा पा रहा था। उसका सारा शरीर मेद और रक्त से सन गया था। उस अवस्था में उसने रण भूमि में ब्रह्माजी की दी हुए शक्ति बड़े वेग से श्री रामानुज पर छोड़ दी। वह शक्ति लक्ष्मण के विशाल वक्ष-स्थल में प्रविष्ट हो गयी और वे आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

रावण प्रसन्न होकर लक्ष्मण के समीप पहुँचा और उन्हें उठाने लगा; किन्तु भगवान् शिव के कैलाश पर्वत को उठा लेने वाला रावण श्री रामानुज के शरीर को हिला भी न सका। उस समय हनुमान जी दौड़े और अत्यन्त कुपित होकर उन्होंने रावण की छाती में वज्र-तुल्य मुक्के से प्रहार किया।

उस मुक्के के भयानक प्रहार से रावण को चक्कर आ गया। वह घुटने के बल बैठ गया और काँपता हुआ गिर पड़ा।

उसके मुख, नेत्र और कानों से रक्त बहने लगा। तड़पता, छटपटाता और चक्कर काटता हुआ रावण विवशतः अपने रथ के पिछले भाग में निश्चेष्ट होकर जा बैठा और कुछ ही देर में मूर्च्छित हो गया।

इधर हनुमान जी सुमित्रा कुमार को अपने दोनों हाथों से उठाकर श्री रघुनाथ जी के समीप ले गये। शत्रुओं के लिए हिल न सकने वाले शेषावतार लक्ष्मण आञ्जनेय के सौहार्द एवं उत्कट भक्ति भाव के कारण उनके लिए सहज ही हलके हो गए।

कुछ ही देर मे लक्ष्मण सर्वथा नीरोग हो गये।

× ×

रावण वानरों के प्रख्यात शूरवीरो पर आक्रमण कर उन्हें धराशायी करने लगा। यह देखकर श्रीराघवेन्द्र ने भी उस पर आक्रमण किया। उस समय भगवान् श्री राम के अनन्य सेवक पवनकुमार ने उनके समीप जाकर निवेदन किया—'प्रभो! जैसे भगवान् विष्णु गरुड पर चढ़कर दैत्यो का संहार करते हैं, उसी प्रकार आप मेरी पीठ पर चढ़कर इस राक्षस को दण्ड दें।'

आञ्जनेय की प्रार्थना सुनकर भगवान् श्री राम उनकी पीठ पर चढ़कर असुरराज रावण से युद्ध करने लगे। आवश्यकतानुसार सुमित्रा कुमार भी पवननन्दन के कंधे पर बैठकर शत्रु से युद्ध करते। इस प्रकार महावीर हनुमान युद्ध-भूमि में सर्वत्र प्रमुख भूमिका अदा कर रहे थे। उन्होने कितने राक्षसों को जीवन से मुक्त किया, इसकी संख्या नहीं। निश्चय ही युद्ध-भूमि मे असुरो को साक्षात् काल के वेष में दर्शन देने वाले हनुमान जी के हृदय में उनके प्रति अपार करुणा भरी थी। वे प्रत्येक असुर को यथा सम्भव प्रभु के सम्मुख लाकर प्रभु का स्मरण करते हुए उसका बध करके उसे सदा के लिए अक्षय

सुख-शान्ति-निकेतन प्रभु के धाम भेज देने के लिये प्रतिक्षण प्रयत्नशील थे।

संजीवनी-आनयन

युद्ध उत्तरोत्तर भयावह होता जा रहा था। रणाङ्गण में मेघनाद आया। उसके सम्मुख विशाल धनुष-वाण धारण किये लक्ष्मण थे। भयानक संग्राम हुआ। इन्द्रजित् ने अपने वाणों की वर्षा से वानर-भालुओं को अधीर कर दिया। मेघनाद का गर्जन-तर्जन देख महावीर हनुमान जी ने तुरंत एक पर्वत-शिखर उखाड़ कर उसके ऊपर फेंका। प्राण-रक्षा के लिये निशाचर आकाश में चला गया, अन्यथा अपने रथ, सारथि और घोड़ों के साथ वह भी वहीं पिस गया होता। हनुमानजी उसे बार-बार ललकारते थे, किन्तु रावण-पुत्र उनसे दूर ही रहता था। वह अच्छी प्रकार समझ रहा था कि पवनपुत्र से भिड़ना मृत्यु-वरण से कम नहीं है।

मेघनाद और लक्ष्मण में भयंकर युद्ध हुआ। मेघनाद ने सौमित्र पर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार किया, किन्तु वे सभी व्यर्थ होते गये। असुर ने अनेक छल-कपट एवं अनीति-पूर्ण कार्य किये, परन्तु श्री रामानुज ने क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण वाणों से उसके रथ को नष्ट कर दिया; सारथि की मृत्यु हो गयी।

रावणकुमार क्रोधोन्मत्त होकर लक्ष्मण को मार डालना चाहता था, किन्तु उसका कोई वश नहीं चल रहा था। उलटे वीरवर लक्ष्मण के युद्ध-कौशल से उसी के प्राण संकट में पड़ गये। अपनी रक्षा का कोई मार्ग न देखकर उस क्रूर असुर ने

लक्ष्मण जी पर ब्रह्मप्रदत्त अमोघ शक्ति फेंकी। शक्ति अत्यन्त तीव्र गति से सुमित्राकुमार के विशाल वक्ष में प्रविष्ट हो गयी। रक्त की धारा फूट पड़ी और श्री रामानुज अचेत होकर पृथ्वी पर गिर गये।

लक्ष्मण को मूच्छित देखकर मेघनाद उन्हें उठाने दौड़ा। उसी ने नहीं, उसकी तरह अनेक वीर राक्षसों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, किन्तु शेषावतार लक्ष्मण को वे हिला भी न सके। राक्षस सिर झुकाकर लौट गये। उस समय हनुमान जी दूसरी ओर राक्षसों के संहार में लगे थे। सूचना प्राप्त होते ही वे उछल कर श्री रामानुज के समीप आये। लक्ष्मण को मूच्छित देखकर वे साक्षात् यम की तरह भयानक हो गये। उनके नेत्रों से आग की ज्वाला निकलने लगी, फिर तो कुछ ही देर में वहाँ असुर-सैनिको का सर्वनाश हो गया। कुछ ही असुर पलायन कर प्राण बचा सके। तब हनुमान जी ने श्री रामानुज को सहज ही अपने अंक में उठा लिया। सुन्दरतम सुमित्राकुमार की मलिन मुखाकृति को देखकर बज्राङ्गवली के नेत्रो मे आँसू भर आये।

संध्या के अनन्तर श्री रघुनाथ जी लक्ष्मण जी की चिन्ता कर ही रहे थे कि हनुमान जी उन्हे अपने हाथो में उठाये आ गये। उन्होंने मूच्छित सुमित्राकुमार को प्रभु के सम्मुख लिटा दिया। श्री रामानुज को मूच्छित देखकर समस्त वानर-भालू चिन्तित हो गये और अपने भाई लक्ष्मण के वक्ष में इन्द्रजित् की प्रविष्ट हुई अमोघ शक्ति एव उनके उदास मुख को देखकर भगवान् श्री राम का हृदय भी व्यथा से भर गया।

श्री रघुनाथजी को अधीर होते देखकर रुद्रावतार पवन-पुत्र के नेत्र भी सजल हो गये, परन्तु इस विषम परिस्थिति में सबको संभालने का दायित्व भी उन पर ही था। अतएव अपने

मनको दृढ़ करके वे सबको उत्साहित करते हुए बोले 'प्रभो! मेरे रहते आप छोटे भाई की चिन्ता क्यों करते हैं ? यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मै अभी स्वर्ग से अमृत ले आऊँ या सुधांशु को वस्त्र की भाँति निचोड़कर उसका अमृत सुमित्रा कुमार के मुंह में डाल दूं। सुमित्राकुमार के जीवन की रक्षा के लिये मैं पृथ्वी को भेद कर तुरन्त पाताल चला जाऊँ और वहाँ नागों को मारकर अमृतकुण्ड ही लाकर लक्ष्मण को उसमें स्नान करा दूं—यही क्यों, आज मै साक्षात् काल को ध्वंस कर देता हूँ, जिससे लक्ष्मण के लिये तो चिन्ता दूर हो ही जायेगी, समस्त प्राणी भी सदा के लिए मृत्यु से मुक्त हो जायेंगे।'

हनुमानजी का प्रलयंकर स्वरूप प्रकट होता जा रहा था, पर लीला-वपु श्री रघुनन्दन को तो मनुष्योचित आचरण करना था। उन्हें रुद्र के इस वेष को देखकर चिन्ता हुई ही थी कि उसी समय विभीषण के परामर्श से महाबुद्धिमान् जाम्बवान् ने कहा—'भैया हनुमान! निस्संदेह तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम्हारे लिए कुछ भी असम्भव नहीं हैं; किन्तु तुम्हें यह सब कुछ नहीं करना है। केवल तुम लंका में चले जाओ। पहले तुमने उस नगरी को अच्छी प्रकार देख ही लिया है। वहाँ सुषेण नामक योग्यतम चिकित्सक है। तुम उसे ले जाओ। उसके बताये हुए उपचार से निश्चय ही लक्ष्मण के घाव तुरन्त भर जायेंगे और ये पूर्ववत् शक्ति-सम्पन्न भी हो जायेंगे।'

विभीषण ने श्री हनुमान को सुषेण के घर का ठीक-ठीक पता भी बता दिया। बस, हनुमान जी अत्यन्त छोटा रूप धारण कर लंका में तुरन्त प्रविष्ट हो गये। सुषेण के द्वार पर पहुँचकर उन्होंने सोचा—'सुषेण शत्रु पक्ष के चिकित्सक हैं, कहीं ये चलना अस्वीकार न कर दें।' बस, पवनकुमार ने अधिक समय नष्ट

करना उचित नहीं समझा। उन्होंने उनका सम्पूर्ण भवन समूल ही उखाड़ लिया और उसे आकाश-मार्ग से लाकर श्री रघुनन्दन के समीप कुछ दूरी पर रखकर खड़े हो गये।

सुषेण अपने भवन से निकले तो श्री राम की सेना को देखकर चकित हो गये। उन्हे समझते देर न लगी कि मुझे किस लिए लाया गया है ? विभीषण ने भी उन्हें स्थिति समझा दी। सुषेण ने तुरन्त नाड़ी, हृदय एवं घाव की परीक्षा की और बोले—'घाव गम्भीर है, किन्तु यदि संजीवनी बूटी यहाँ सूर्योदय के पूर्व आ जाय तो ये जीवित हो जायेंगे और इनकी शक्ति भी पूर्ववत् लौट आयेगी।'

सुषेण ने दृष्टि उठाकर देखा, सामने पवनकुमार सचिन्त-मुद्रा में खड़े थे। लंका-दहन के समय से ही उनकी शक्ति से परिचित होने के कारण उन्होंने कहा 'पराक्रमी पवनकुमार' यह काम आप ही कर सकेंगे। आप तुरन्त हिमालय पर्वत चले जाइये। वहाँ पहुँचने पर आपको अत्यन्त ऊँचाई पर सुवर्णमय पर्वत ऋषभका तथा कैलाश-शिखर का दर्शन होगा। उन दोनों शिखरों के बीच अत्यन्त दीप्तिमान् औषधियों का पर्वत द्रोण दिखायी देगा। उसकी दीप्ति अद्भुत हैं और वहाँ सभी औषधियाँ सुलभ हैं। वहाँ सजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और सधानी नामक महौषधियाँ प्रकाशित रहती हैं। आप उन्हे शीघ्र लाकर लक्ष्मण को प्राण-दान करें। स्मरण रहे, ये औषधियाँ सूर्योदय के पूर्व तक ही उपयोगी सिद्ध हैं। सूर्योदय के अनन्तर सुमित्राकुमार की रक्षा असम्भव हो जायेगी।'

'जय श्रीराम!' श्री रघुनन्दन के चरणों में प्रणाम कर अञ्जनानन्दन ने गर्जना की और वायु वेग से उड़े। उन्हें हिमालय के समीप पहुँचते देर न लगी। उन्होंने हिमालय की तराई मे

एक सुन्दर तपोवन देखा। वह तपोवन एक योजन विस्तृत था और उसमें पके हुए सुन्दर फलों से लदे कदली, शाल, खजूर और कटहल आदि के वृक्ष लगे थे। उक्त तपोवन के एक सुरम्य आश्रम में एक तेजस्वी मुनि भगवान् शंकर की पूजा कर रहे थे।

हनुमानजी तृषा का अनुभव कर रहे थे। उन्होंने सोचा, यहाँ जल पीकर तब द्रोणगिरि पर चलूँ। उन्होंने मुनि के चरणों में नमस्कार कर कहा—'भगवन्! मैं भगवान् श्री राम का दूत पवनपुत्र हनुमान हूँ। स्वामी के आवश्यक कार्य से जा रहा हूँ। मुझे अत्यधिक प्यास लगी है। कृपया मुझे जल बता दीजिये।'

'तुम मेरे कमण्डलु का जल पी सकते हो।' मुनि के उत्तर में हनुमान जी ने कहा—'मुनीश्वर! कमण्डलु के जल से ही मेरा काम नहीं चलेगा। मेरी तृप्ति के लिये कोई जलाशय बताइये।'

मुनि ने दांत पीस लिये। हनुमान जी के कार्य में देर करने के लिये उसने कहा—'कपीन्द्र! मुझसे कुछ छिपा नहीं है। तपोबल से मैं त्रिकाल की बात जानता हूँ। श्रीराम का लंकाधिपति रावण के साथ युद्ध छिड़ा हुआ है। यद्यपि लक्ष्मण इन्द्रजित् की अमोघ शक्ति से मूर्च्छित हो गये हैं, किन्तु अब सुमित्राकुमार और समस्त वानर-वृन्द सचेत होकर बैठ गये हैं। अतएव तुम यहाँ स्थिरता से मधुर फलों को खाकर जल पी लो और फिर विश्राम करो। तदनन्तर लौट जाना।'

हनुमानजी बोले—'मुनिवर! आप मुझे केवल जलाशय बतला दीजिये। मैं प्रभु के दर्शन के विना एक क्षण के लिए भी विश्राम करना नहीं चाहता।'

श्री रघुनाथ के कार्य में विघ्न उपस्थित करने के लिये भेजे

गये मुनिवेषधारी मायावी असुर कालनेमि के कमण्डलु का विष व्यर्थ गया। मुनिरूपधारी असुर ने कहा—'वे औषधियाँ सर्व साधारण को नहीं दीखतीं, लुप्त हो जाती हैं; किन्तु मैं तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम जलाशय में जल पीकर स्नान कर लो। फिर तुम्हारे आने पर मैं तुम्हे एक मन्त्र का उपदेश कर दूँगा, जिससे तुम वह औषधि सहज ही देख सकोगे।'

मायावी असुर ने आगे कहा—'देखो, तुम नेत्र बंद करके जल पीना।' उसने जलाशय बता दिया।

हनुमान जी ने नेत्र बन्द करके जलाशय में जल पीना प्रारम्भ ही किया था कि एक महामायाविनी घोररूपिणी मकरी ने उनका पैर पकड़ लिया। नेत्र खोलकर पवनपुत्र ने देखा, मकरी उन्हें निगलने का प्रयत्न कर रही थी। बस, हनुमान जी ने क्रुद्ध होकर उसका मुख फाड़ डाला। वह उसी समय मर गयी।

सहसा हनुमान जी ने आकाश से एक दिव्यरूपिणी स्त्री को देखा। उनसे उसने कहा—'कपीश्वर! मैं शापग्रस्त धान्यमाली नामक अप्सरा थी। आज आपकी कृपा से मैं शापमुक्त हो गयी। अनघ! यह सुरम्य आश्रम सर्वथा कृत्रिम है। मुनि के वेष में कालनेमि नामक असुर रावण के आदेशानुसार आपके कार्य में व्यवधान डालने का प्रयत्न कर रहा है। आप इस दुष्ट को मारकर शीघ्र द्रोणाचल चले जाइये। मैं आपके पावन स्पर्श से कृतार्थ होकर ब्रह्मलोक जाती हूँ।'

अप्सरा अदृश्य हो गयी और हनुमान जी कालनेमि के समीप पहुँचे। मुनिवेषधारी असुर ने कहा—'वानरश्रेष्ठ! आओ, अब मैं तुम्हे दीक्षा प्रदान करूँगा।' उसने सोचा था कि लंबी-चौड़ी विधि बताने में ही सारी रात्रि व्यतीत हो जायेगी।

'मुनिवर ! पहले दक्षिणा ले लीजिये'–सहसा हनुमान जी के वचन सुन कालनेमि चौंका ही था कि वह पवनपुत्र की विशाल पूंछ में बंधकर पिसने लगा और जब वज्राङ्गबली ने उसे विशाल शिला पर जोर से पटका तो उसके किसी अंग का पता नहीं चला। मृत्यु के समय वह असुर वेष में प्रकट हो गया और 'राम-राम' कहते हुए उसने सद्गति प्राप्त कर ली।

'जय श्रीराम !' हनुमानजी प्रसन्नता पूर्वक द्रोणगिरि पर पहुंचे। वहाँ अनेक औषधियां प्रकाशित हो रही थीं। वे सुषेण द्वारा बतायी हुई औषधियों को पहचान न सके। इस कारण उन्होंने वृक्षों, हाथियों, सुवर्ण, अन्य सहस्रों प्रकार की धातुओं तथा औषधियों सहित पर्वत को ही सहसा उखाड़ लिया और उसे लेकर वे गरुड़ के समान भयंकर वेग से आकाश में उड़ चले।

द्रोणाचल सहित आकाश में वेगपूर्वक चलने से आँधी और तूफान की तरह ध्वनि हो रही थी। उड़ते हुए हनुमान जी अयोध्या के ऊपर पहुँचे ही थे कि श्री राम के स्मरणपरायण भरत जी ने सोचा–'विशाल पर्वत लिये सम्भवतः यह कोई असुर जा रहा है।' उन्होंने अपना धनुष उठाया और उस पर बिना नोंक का बाण रखकर उसे धीरे से छोड़ दिया।

'श्री राम ! जय राम ! ! जय श्री सीताराम ! ! !' कहते हुए हनुमानजी मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़े। उनकी मूर्च्छितावस्था में भी पर्वत सुरक्षित था।

'अरे ! यह तो कोई श्रीराम-भक्त है !'–भरतजी का हृदय कांप उठा ! वे दौड़े। उन्होंने मूर्च्छित महाकाय मर्कटाधीश का कुम्हलाया हुआ मुंह देखा। उनके अधर हिल रहे थे। और

धीरे-धीरे सुनायी दे रहा था—'श्री राम ! जय राम !! जय श्री सीताराम!!!'

जटाजूट धारी श्यामल भरतजी के नेत्र बहने लगे। उन्होंने हनुमान जी को सचेत करने के अनेक प्रयत्न किये, किंतु सब को विफल होते देखकर अन्त में कहा—'जिस निर्मम विधि ने मुझे अपने प्रभु श्री राम से पृथक् किया, उसी ने मुझे आज यह दुःख का दिन भी दिखाया है। किंतु यदि भगवान् श्री राम के चरण-कमलों में मेरी विशुद्ध निश्चल प्रीति है और श्री रघुनाथ जी मुझ पर प्रसन्न हों तो यह वानर पीड़ामुक्त होकर पूर्ववत् सचेत और सशक्त हो जाये।'

'भगवान् श्री राम की जय !'—हनुमानजी तुरंत उठकर बैठ गये। उन्हे जैसे कुछ हुआ ही नही। वे पूर्णतया स्वस्थ एवं सशक्त थे। उन्होने अपने सम्मुख भरतजी को देखा तो समझा कि मै श्री रघुनाथ जी के समीप हूं। उन्होने तुरन्त चरणों में प्रणाम किया और पूछा—'प्रभो ! मै कहाँ हूँ ?'

'यह तो अयोध्या है।' आँसू पोछते हुए भरतजी ने कहा—'तुम अपना परिचय दो।'

'यह अयोध्या है ?' हनुमानजी बोले—'तब तो मै अपने स्वामी की पवित्र पुरी में पहुँच गया हूं और जैसा मेरे प्रभु प्रायः गुण-गान किया करते हैं, लगता है कि आप भरतजी है।'

'हाँ भैया ! अधम भरत यही है !' भरतजी ने रोते हुए कहा—'इसी पातकी के कारण मेरे प्राणाधार श्री राम को चौदह वर्ष के लिए अरण्य-वास करना पड़ा है। मेरे ही कारण पिता को परलोक जाना पड़ा और जनक दुलारी को अनेक यातनाएँ सहनी पड़ रही हैं। मै वही पापात्मा भरत हूँ ! मै तुम्हारा परिचय पाने के लिये व्यग्र हूँ !'

हनुमान जी ने भरतजी के चरणों में प्रणाम किया और कहा–'प्रभो ! देवी अञ्जना मेरी माता हैं और मैं वायुदेव का पुत्र श्री रामदूत हनुमान हूं। लंकाधिपति रावण ने माता जानकी का हरण कर उन्हें अशोक-वाटिका में रख दिया है। प्रभु ने समुद्र पर सेतु-निर्माण करवाया और फिर अपने वीर वानर-भालुओं की असीम वाहिनी के साथ समुद्र के पार उतर गये। युद्ध हो रहा है। आज मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण जी मूच्छित हो गये हैं। उन्हीं के लिए मै संजीवनी बूटी लेने द्रोणाचल गया था। बूटी न पहचानने के कारण पूरा पर्वत-शिखर ही लिये जा रहा हूँ। अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि मार्ग में आपका भी दर्शन हो गया। प्रभु श्रीराम सदा ही आपका गुण-गान किया करते हैं। आज आपके दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया।'

भैया हनुमान !' रोते हुए भरतजी ने उन्हें अपने वक्ष से लगा लिया और रोते-रोते ही उन्होंने हनुमान जी से कहा–'भाई पवनकुमार ! मै प्रभु के एक भी काम न आ सका। मुझ पातकी के कारण प्रभु को समस्त विपदाएँ झेलनी पड़ रही हैं और जब भाई लक्ष्मण मूच्छित पड़े हैं, तब मैंने और व्यवधान उत्पन्न कर दिया !'

उसी समय हनुमान जी का समाचार पाकर माता कौसल्या, देवी सुमित्रा और वसिष्ठ जी तथा अन्य सभी गुरुजन वहाँ उपस्थित हो गये। माता सुमित्रा ने कहा - 'हनुमान ! श्रीराम से कह देना, लक्ष्मण ने अपने धर्म का पालन किया है, इस कारण मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सेवक को तो स्वामी की सेवा में प्राण-त्याग करना ही चाहिये। लक्ष्मण चाहे न रहे, पर सीता के बिना श्रीराम का यहाँ आगमन मैं सह न सकूंगी।

माता कौसल्या बोल उठीं –"देखो, भैया पवनकुमार !

तुम राम से इनकी एक भी बात न कहना । ये तो राम को प्राण से भी अधिक चाहती है, इस कारण इन्हें राम के बिना कहीं कुछ दीखता ही नहीं; पर तुम राम से मेरा संवाद अवश्य कहना कि 'जिस प्रकार यहाँ से जाते समय तुम लक्ष्मण को अपने साथ ले गये थे, उसी प्रकार अयोध्या आते समय अपने साथ लक्ष्मण को अवश्य लेते आना। लक्ष्मण के बिना तुम्हे अयोध्या नहीं आना चाहिए'।"

इधर पवनात्मज को समाचार दिये जा रहे थे, उधर अयोध्या की विशाल वाहिनी सेनापति के आदेश से लंका जाने के लिए प्रस्तुत हो गयी थी। सहसा शस्त्रास्त्रों से सजी विशाल वाहिनी को देखकर हनुमान जी चकित हो गये।

सेनापति की प्रार्थना सुनते ही कुलगुरु वसिष्ठ जी ने कहा—'चक्रवर्ती सम्राट् की सेना ऐसी ही होनी चाहिए, किंतु मर्यादा का उल्लंघन न हो। इस समय सेना तो क्या, शत्रुघ्न का भी वहां जाना उचित नहीं। श्री रघुनन्दन ही अकेले धरती के सम्पूर्ण राक्षसों को समाप्त करने में सर्वथा समर्थ है।'

श्री रघुनन्दन का संक्षिप्त समाचार सबने सुन लिया। सबके नेत्र आँसुओं से भरे थे। उधर रात्रि बीत जाने की आशंका थी। इस कारण भरतजी ने कहा—'भाई हनुमान! तुम मेरे बाण पर बैठ जाओ। मेरा यह बाण तुम्हे तुरन्त प्रभु के समीप पहुंचा देगा। कहीं देर न हो जाय ?'

'यह बाण पर्वत सहित मेरा भार कैसे सह सकेगा!' —हनुमान जी के मन में क्षण भर के लिये गर्व उत्पन्न हो गया, किंतु दूसरे ही क्षण उन्होंने सोचा—'अभी भी तो मैं इनके बिना नोंक के बाण के आघात से मूर्च्छित होकर गिर ही गया था। प्रभु की कृपा से सब सम्भव है।' यह सोचकर उन्होंने हाथ जोड़

कर भरत जी से कहा—'प्रभो ! स्वामी के प्रताप से आपका स्मरण करता हुआ मैं शीघ्र ही पहुंच जाऊंगा।'

हनुमान जी ने भरतजी के चरणों में प्रणाम किया और पूर्ववत् वायुवेग से आकाश में उड़ चले।

उधर रात्रि अधिक व्यतीत होते देख भगवान् श्री राम अत्यन्त दुःख से अधीर हो गये और विलाप करते हुए कहने लगे—'जिस भाई लक्ष्मण ने मेरे लिये माता-पिता-पत्नी ही नहीं सम्पूर्ण राज्य-सुख को त्याग दिया, मेरे सुख के लिए वन-वन भटकता फिरा, उसके बिना मैं अब अयोध्या में कौन-सा मुंह लेकर जाऊँगा ! वैदेही मिल भी गयी तो अब लक्ष्मण के बिना मेरा क्या होगा ? प्राण प्रिय भाई के बिना मैं निश्चय ही अपना प्राण त्याग दूंगा; फिर हमारी तीनों मातायें और भरत तथा शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रह सकेंगे। इस प्रकार अब अयोध्या का सर्वनाश हो जायेगा। मेरे न रहने पर वानरराज सुग्रीव युवराज अङ्गद के साथ किष्किन्धा में और ये वीर वानर-भालू पर्वत और वनों में चले जायेंगे; किंतु विभीषण को दिये गये मेरे वचन का क्या होगा ? विभीषण ने मेरा आश्रय ग्रहण किया है। ये मेरे शरणागत हैं। मेरा हृदय इसी चिन्ताग्नि में झुलस रहा है कि इन भक्त विभीषण का क्या होगा।'

लीलावपु भगवान् श्रीराघवेन्द्र के नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था। उन्हें बिलखते और करुण विलाप करते देखकर वानर-भालू अत्यन्त व्याकुल हो गए। सबके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। रोते हुए वे रह-रह कर आकाश की ओर देखते जाते थे। उनके मन में महावीर हनुमान के आ जाने की आशा लगी थी और वह आशा पूरी भी हो गयी।

'जय श्रीराम !' का घोष करते हुए हनुमान जी ने

द्रोणाचल को रघुनाथ जी के कुछ ही समीप एक ओर रख दिया और उनके चरणों पर गिर पड़े। वानरों की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। हर्षावेग में कोई वानर हनुमान जी का चरण दबाता तो कोई हाथ और कोई उनकी पूंछ सहला रहा था।

इधर वानर-भालू प्रसन्नता व्यक्त कर रहे थे, उधर सुषेण ने बूटी लेकर लक्ष्मण को सुंघा दी। लक्ष्मण जी जैसे नींद से जाग पड़े हों। उठते ही उन्होंने कहा—'मेघनाद कहाँ है?' कुछ देर बाद उन्हें परिस्थिति का ज्ञान हुआ।

कृतज्ञता की मूर्ति श्री रघुनाथ जी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर हनुमान जी को गले लगाते हुए कहा—'हे वत्स! हे महाकपे!! आज तुम्हारी कृपा से ही मैं अपने भाई लक्ष्मण को स्वस्थ-निरामय देख रहा हूं।'

श्री सौमित्र के पूर्ण स्वस्थ हो जाने पर सुषेण ने श्री रघुनन्दन के चरणों में प्रणाम किया। दयाधाम श्री रामने उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कुछ माँगने को कहा। सुषेण ने प्रभु से सुदृढ भक्ति की याचना की, जिसे भक्त वत्सल श्री राम ने उन्हें सहज ही दे दी। सुषेण के इच्छानुसार महावीर हनुमान उनके भवन को लंका में ले आकर पूर्ववत् यथास्थान रखकर सूर्योदय के पूर्व ही लौट आये।

वज्राङ्गबली के इस महान् कार्य की स्वयं भगवान् श्री राम और पुनर्जीवन-प्राप्त लक्ष्मण तो प्रशंसा करते ही थे, समस्त वानर-भालू सर्वत्र उन्हीं का गुण-गान कर रहे थे, किंतु अभिमान शून्य आञ्जनेय के हृदय में इसका तनिक भी विचार नहीं था, जैसे उन्होंने कुछ किया ही नहीं था। उनके हृदय में यही भाव था मानो यह सब करने वाले कोई अन्य हनुमान थे। वे तो

सबसे पृथक् मन-ही-मन प्रभु के अरुण कमल-तुल्य सुकोमल चरणों के ध्यान में तल्लीन थे।

अहिरावण-वध

रावण के सहस्रों शूर-वीर तो प्रतिदिन श्री राम के साथ होने वाले युद्ध की भेंट चढ़ ही जाते थे, उसके चुने हुए परम-पराक्रमी योद्धा भी काल के गाल में प्रवेश कर गये थे; किंतु जब उसका प्राणप्रिय पुत्र अजेय मेघनाद सुमित्राकुमार के शर से विद्ध होकर मर गया, तब दशग्रीव धैर्य धारण न कर सका। वह व्याकुल होकर मूच्छित हो गया। सचेत होने पर वह अपनी निश्चित विजय के लिये उपाय सोचने लगा। उसे अपने सहयोगी अहिरावण की स्मृति हो आयी; पर पाताल के राक्षस राज अहिरावण को संदेश कैसे भेजा जाय? लंका से बाहर जाने वाले द्वारों पर तो शत्रु के सैनिकों ने अधिकार कर रखा था?

'अहिरावण देवी-भक्त है।'—रावण ने विचार किया और वह सीधे देवी-मन्दिर में पहुँचा। वहां उसने स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण किया और देवी की पूजा में तल्लीन हो गया। दशानन की आराधना से आकृष्ट होकर अहिरावण वहाँ तुरंत आ पहुंचा। उसने आदर पूर्वक रावण के चरणों में प्रणाम कर उससे पूछा—'आपने मुझे कैसे स्मरण किया?'

'अहिरावण! मै बड़ी विपत्ति में उलझ गया हूं। इस विपत्ति से मुझे तुम्हीं उबार सकते हो?'—रावण ने अहिरावण से प्रार्थना की।

'क्या हुआ और मुझे क्या करना है, आज्ञा दीजिये।' अहिरावण ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

अयोध्या-नरेश दशरथ के दो पुत्र राम और लक्ष्मण वन से आए थे।' दशानन ने बताया—'उन्होंने मेरी बहन शूर्पणखा के नाक-कान काट डाले और खर-दूषण को मार डाला। इस पर क्रुद्ध होकर मैंने उनकी पत्नी सीता का हरण कर लिया। बस, युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में मेरे एक-से-एक वीर योद्धा मार डाले गये। यहाँ तक कि कुम्भकर्ण और मेघनाद भी नहीं बचे। अब मैंने असहाय होकर तुम्हारा स्मरण किया है।'

'आपने सीता का हरण कर उचित कार्य नहीं किया।' अहिरावण ने मन की बात स्पष्ट कह दी—'आप वीरता पूर्वक श्री राम से युद्ध करते, यह तो शोभा की बात थी; किंतु उनकी सहधर्मिणी का हरण कर आपने अनीति पूर्ण कार्य किया है। इसका परिणाम तो शुभ हो ही नहीं सकता; दूसरे खर-दूषण, कुम्भकर्ण और इन्द्रजित् को मारने वाला सामान्य पुरुष नहीं होगा किंतु आप मुझे आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूँ?'

रावण ने कहा 'और कुछ नहीं, तुम किसी प्रकार केवल राम और लक्ष्मण को अपनी पुरी में ले जाओ और वहाँ उनका वध कर डालो; फिर ये वानर-भालू तो स्वतः ही भाग जायेंगे। इसी प्रकार मेरी रक्षा हो सकेगी।'

'आपके सन्तोष के लिए मैं यही करूँगा।' अहिरावण ने राक्षसराज दशग्रीव को आश्वासन दिया—'आकाश में प्रकाश देखते ही आप समझ लीजिएगा कि मैं निर्विघ्न दोनों भाइयों को लिये जा रहा हूँ।' राक्षसकुल शिरोमणि रावण के चरणों में प्रणाम कर अहिरावण अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए चल पड़ा।

रात्रि का समय था। दिन भर के युद्ध से थकी श्रीराम की सेना शयन कर रही थी। सर्वसिद्धिमय आञ्जनेय का पहरा था। उन्होंने अपनी पूंछ बढ़ाकर वानर-भालुओं की विशाल

वाहिनी को घेरे में ले लिया था। पूंछ की प्राचीर को पार कर भीतर प्रवेश करना किसी के लिए सहज सम्भव नहीं था। अहिरावण सहम गया। कुछ क्षण सोचकर वह विभीषण का वेष धारण कर भीतर प्रविष्ट होने लगा।

'अरे भाई विभीषण ! इतनी रात तक बाहर कहाँ रहे ?' –हनुमान जी ने उससे पूछा। विभीषण का वेष बनाये हुए अहिरावण ने तुरन्त उत्तर दिया–'मै संध्या-वन्दन करने समुद्र-तटपर चला गया था। वहाँ से लौटने में देर हो गयी।'

हनुमानजी के मन में संशय तो हुआ, पर वे चुप ही रहे। अहिरावण ने भीतर जाकर देखा कि सुग्रीव, अङ्गद, मयन्द, द्विविद, नल, नील, जाम्बवान् और विभीषण आदि प्रमुख सेना-नायक श्रीराम और लक्ष्मण को अपने मध्य सुलाकर विश्राम कर रहे हैं। दिन भर के युद्ध में थके ये वीर सैनिक आञ्जनेय-जैसे प्रबल प्रहरी के संरक्षण में सर्वथा निश्चिन्त गाढ़ निद्रा में शयन कर रहे थे।

भगवान् श्रीराम की दाहिनी ओर उनका चमकता हुआ विशाल धनुष और शर-पूरित तूणीर था और बायीं ओर उनके प्रिय भाई लक्ष्मण थे। लक्ष्मण की बायीं ओर उनका धनुष और तूणीर था। भगवान् श्रीराम का कर-कमल भाई के वक्षः स्थल पर सुशोभित था।

भगवान श्रीराम और लक्ष्मण का चन्द्रविनिन्दक सुन्दर मुख ! मुखारविन्द पर बिखरी अलकें !! निद्रालु प्रभु की भुवनमोहिनी शान्त मुद्रा!!! सुग्रीवादि वानर-भालुओं के सौभाग्य का क्या कहना ? जिन त्रिभुवनसुन्दर परमप्रभु की एक झलक अनेक जन्मों के कठोरतम तपश्चरण से किसी-किसी महर्षि और मुनिपुंगव को ही प्राप्त होती है, उन्हीं करुणासिन्धु

दशरथकुमार के साथ वे वानर-भालू खाते, पीते, सोते और युद्ध करते हैं; उन्हीं के लिए संग्राम में प्राण-त्याग करते हैं।

उन दोनों अनन्त-सौन्दर्य सुधा-सिन्धु को अहिरावण ने देखा तो वह देखता ही रह गया। किंतु अपने वचन का ध्यान था और लीलानायक श्रीराम-लक्ष्मण को मानवी-लीला करनी थी। उन्हे असुर भक्तों का उद्धार करना था। समस्त सैनिको के जग जाने की आशङ्का से दुष्ट अहिरावण ने उन्हे मोहित कर दिया, जिससे श्रीराम और अरण्य-वास में सदा जागते रहने वाले सुमित्राकुमार भी जैसे सोते ही रहे। महाशक्तिशाली अहिरावण ने उन दोनो भाइयों को उठाया और वह आकाश-मार्ग से तीव्र-गति से भागा। सहसा आकाश में प्रकाश छा गया। रावण की प्रसन्नता की सीमा न थी।

अब रावण का क्रोध पवनकुमार पर था, केवल श्री पवन-कुमार पर; क्योंकि साधारण-से-साधारण और भयानक-से-भयानक परिस्थितियो और कार्यो में सफलता का श्रेय उन्हें ही प्राप्त होता था। श्री भगवान् की तुच्छ-से-तुच्छ सेवा करने में उन्हें झिझक या लज्जा का अनुभव नही होता था, अपितु वे प्रभु की सेवा करना अपना सौभाग्य समझते थे और सेवा करके ही संतुष्ट होते थे। रावण के पुत्र अक्ष, अन्यतम परमपराक्रमी असुर अकम्पन आदि का वध हनुमान जी ने ही किया था। हनुमान जी के ही मुष्टि-प्रहार से स्वयं दशानन भी मूर्च्छित हो गया था। लंका से सुषेण को ले जाकर और सुदूर उत्तर से द्रोणगिरि लाकर संजीवनी के द्वारा लक्ष्मण की प्राण-रक्षा पवनपुत्र ने ही की थी। किन्तु अब श्रीराम और लक्ष्मण के मारे जाने पर राक्षसी-माया से उसे भी समाप्त किया जा सकता है—यह सोचकर दशानन आश्वस्त हुआ और हर्षा-

तिरेक से मन-ही-मन विजयोत्सव मनाने की योजना बनाने लगा।

भगवान् श्रीराम के चरण-कमलों में सोये हुए सुग्रीव आकाश में तीव्र प्रकाश के कारण जाग पड़े। उन्होंने अपने समीप प्रभु को नहीं देखा तो चिल्ला उठे–'प्रभु कहाँ गये ? उन्हें कौन ले गया ?' वानर-सेना में अद्भुत कोलाहल मच गया। अङ्गद, विभीषण, मयन्द, द्विविद, नल, नील और जाम्बवान् आदि सभी आश्चर्य-चकित थे। सबके हृदय काँप रहे थे। सभी चिन्तित और अशान्त हो पवनात्मज का मुँह देख रहे थे। बुद्धिमान जाम्बवान् ने अञ्जना नन्दन से कहा–'भैया! अब तुम्हीं हम लोगों के प्राणों की रक्षा करो। चाहे जैसे प्रभु को लक्ष्मण सहित ले आओ। हम लोग तो किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये हैं।'

हनुमान जी ने कहा–'इस पृथ्वी पर ही नहीं, आकाश और पाताल में कहीं भी प्रभु हों, मैं तुरन्त उन्हें ले आऊँगा। प्रभु को लाने के लिये मैं काल का भी तत्काल संहार कर सकता हूँ; किंतु पता तो चले, वे कहाँ हैं ?'

'रात्रि में कोई अपरिचित तो नहीं आया था ?' जाम्बवान् ने हनुमान जी से पूछा।

'ना, रात्रि में कोई नहीं आया। हाँ, विभीषण जी अवश्य समुद्र-तट से संध्या करके देर से लौटे थे।' हनुमान जी का उत्तर सुनकर विभीषणजी अत्यन्त चकित हुए और बोले–'मैं तो सायंकाल से ही प्रभु चरणों के समीप था। क्षणार्ध के लिए भी कहीं नहीं गया। अवश्य ही किसी मायावी असुर ने षड्यन्त्र रचा है।'

कुछ क्षणों के उपरान्त चिन्तित विभीषण ने कहा–'लंका के किसी मायावी असुर की सामर्थ्य नहीं कि वह मेरा वेष धारण

कर सके। निश्चय ही यह कुकृत्य अहिरावण ने किया है। केवल वही मेरा वेष धारण करने में समर्थ है।'

'हनुमानजी!' विभीषण ने मारुतात्मज की ओर देखकर कहा—'असुर-वंश का प्रतापी राजा अहिरावण पातालपुरी में रहता है। राक्षस वंश का सर्वनाश होता देखकर रावण की सहायता करने के लिये वह सुमित्राकुमार के साथ प्रभु को उठा ले गया है। आप शीघ्र ही वहाँ जाइये और उस असुर का वध करके प्रभु को यहाँ ले आइये; अन्यथा हमारा सबका जीवन नहीं रह पायेगा।'

'विभीषण से पाताल प्रवेश का मार्ग तथा अहिरावण की राजधानी, उसके मार्ग, द्वार, राज-सदन आदि की सभी आवश्यक जानकारी प्राप्त कर हनुमान जी ने कहा—'आपलोग पूर्णतया सजग और सावधान रहिए। शत्रु को प्रभु तथा मेरी अनुपस्थिति की गन्ध न लगने पाए और असुर सेना तो क्या यदि स्वयं दुष्ट दशानन ही यहाँ युद्ध करने आ जाय तो उसका मुख मर्दन करके ही रहिएगा।' हनुमान जी ने सुग्रीव को प्रणाम किया और वे वायुवेग से उड़े। उड़ते समय सहज ही उनके मुखसे निकला—'जय श्रीराम'।

पवननन्दन को पाताल लोक पहुँचते कितनी देर लगती! वे पाताल में प्रविष्ट होकर सीधे अहिरावण के नगर के द्वार पर पहुँच गये। वहाँ ठीक उन्हीं के आकार प्रकार का एक महाकाय वानर नगरी की रक्षा के लिये नियुक्त था।

हनुमान जी सूक्ष्म रूप धारण कर द्वार के भीतर प्रवेश करने ही जा रहे थे कि गर्जते हुए वानर ने कहा—'तुम कौन हो? सूक्ष्म रूप धारण कर चोरी से कहाँ जा रहे हो? मेरे यहाँ रहते तुम द्वार के भीतर कदापि प्रवेश नहीं कर सकते मेरा नाम

मकरध्वज है और, कान खोलकर सुन लो, मैं परमपराक्रमी वज्राङ्गबली हनुमान का पुत्र हूँ।'

वज्राङ्गबली हनुमान का पुत्र?' हनुमानजी ने चकित होकर पूछा - 'अरे! हनुमान तो बालब्रह्मचारी है। तुम उनके पुत्र कहाँ से आ गये?'

मकरध्वज ने उत्तर दिया—'मेरे पिता जब लंका दहन के अनन्तर समुद्र में पूंछ बुझाकर स्नान कर रहे थे, तब श्रम के कारण उनके शरीर से स्वेद झर रहा था। वही स्वेदयुक्त जल एक मछली पी गयी। वह मछली पकड़कर मेरे स्वामी अहिरावण के भोजनागार में लायी गयी थी। काटते समय उसके उदर से मेरी उत्पत्ति हुई। अहिरावण ने मेरा पालन पोषण किया और अब उन्हीं के आदेश से मैं उनकी इस वैभवशाली नगरी की रक्षा करने में तत्पर रहता हूँ।'

'बेटा! हनुमान तो मैं ही हूँ।' हनुमान जी अपने विशाल रूप में प्रकट हो गये। मकरध्वज ने उनके चरणों में प्रणाम किया।

हनुमान जी ने उससे पूछा—'बेटा! यह तो बता दो कि अहिरावण मेरे स्वामी श्रीराम और लक्ष्मण को यहाँ ले आया है क्या?'

मकरध्वज ने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'नाम तो मुझे विदित नहीं, किंतु आज ही कुछ देर पहले वे कहीं से श्याम-गौर दो अत्यन्त सुन्दर राजकुमारों को उठाकर ले आये हैं और अभी कुछ ही देर में उन्हें देवी के सम्मुख बलि चढ़ाने वाले हैं।'

'अच्छा, अब मुझे जाने दो।' हनुमानजी के मुख से निकलते ही मकरध्वज ने उत्तर दिया—'नहीं पिताजी, आप

भीतर नहीं जा सकते और जब तक मैं जीवित हूँ, आप मुझे पराजित किये बिना भीतर किसी प्रकार प्रवेश नहीं कर सकते। यदि पिता के नाते मैंने आपको द्वार के भीतर जाने दिया तो मैं धर्म से च्युत हो जाऊँगा। मैं अपने स्वामी के साथ विश्वास-घात नहीं कर सकता।'

हनुमान जी को प्रभु के समीप पहुँचने की जल्दी थी। उन्होंने तुरन्त अपने पुत्र मकरध्वज पर मुष्टिका-प्रहार किया, पर वह भी वीर पिता का वीर पुत्र था। युद्ध छिड़ गया। जैसा पिता, वैसा ही पुत्र। किसी प्रकार हनुमानजी ने उसे पछाड़कर उसी की पूंछ से उसे कसकर द्वार पर बाँध दिया और स्वयं द्रुत गति से भीतर चले गये।

हनुमान जी सूक्ष्म रूप से देवी-मन्दिर में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा—चामुण्डा के सम्मुख प्रज्वलित अग्निकुण्ड के समीप पाद्य, अर्घ्य, स्नानार्थ जल, रक्त चन्दन, रक्त पुष्प और रक्त पुष्पों की माला तथा धूप-दीपादि पूजोपकरण प्रस्तुत हैं। अहिरावण स्नान करके रक्त वस्त्र, रक्त चन्दन एवं पुष्पों की माला धारण कर वहाँ आ गया है। पूजा प्रारम्भ होने वाली ही है। हनुमानजी सीधे देवी के पीछे चले गये। परम प्रभु श्री राम के अनन्य सेवक पवनकुमार के स्पर्श से देवी पाताल में प्रविष्ट हो गयीं और उनके स्थान पर स्वयं श्री रामदूत देवी के रूप में भयानक मुख फाड़कर खड़े हो गये।

अहिरावण ने पूजा प्रारम्भ की। उसने गन्ध, अक्षत, पुष्प, पुष्पमाला, धूप और दीप के अनन्तर जब पक्वान्न देवी को अर्पण किया, तब हनुमानजी ने उसे भक्षण कर लिया। लड्डू, खीर, पूड़ी, हलवा आदि जो भी पदार्थ अहिरावण देवी को अर्पित करता, हनुमान जी सब ग्रहण करते जाते।

''आज देवी अत्यन्त प्रसन्न हैं, तभी तो प्रत्यक्ष प्रकट होकर नैवेद्य स्वीकार कर रही हैं !'—अहिरावण मन-ही-मन प्रसन्न होकर प्रस्तुत समस्त नैवेद्य चढ़ा चुका और देवी रूपी मारुतात्मजने सबको उदरसात् कर लिया। अहिरावणने राज-सदन के सभी पक्वान्न और फलादि मँगवाये, हनुमान जी ने उन्हें भी पा लिया।

अन्त में असुर ने श्रीराम और लक्ष्मण को मंगवाया। बलि के लिये ही राक्षसों ने परमप्रभु श्रीराम एवं लक्ष्मण को स्नान कराकर उन्हें मूल्यवान् नवीन वस्त्र और आभूषण-धारण कराये थे। गन्ध, पुष्प, पुष्पमाला तथा धूप-दीपादि से सविधि उनकी पूजा की थी। इस प्रकार उन्होंने श्री रघुनाथ जी एवं सुमित्राकुमार को सजाकर देवी के सम्मुख उपस्थित किया।

काल के गाल में पड़ा हुआ अहंकारी असुर बोला—'अब कुछ ही देर में तुम दोनों भाई देवी की भेंट चढ़ा दिये जाओगे। अपने त्राता का स्मरण कर लो।'

प्रभुको सर्वथा मौन देखकर लक्ष्मणजी अत्यन्त विस्मित थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि 'प्रभु कैसी लीला कर रहे हैं ! ये स्वयं न तो असुर का संहार कर रहे हैं और न मुझे ही इसका वध करने की आज्ञा प्रदान करते हैं।'

उसी समय श्रीराघवेन्द्र ने अपने अनुज से कहा—'भाई लक्ष्मण ! आपत्ति के समय समस्त प्राणी मेरा स्मरण करते हैं, किन्तु मेरी आपदाओं का अपहरण करने वाले तो पवनकुमार ही हैं। अतः हमलोग उन्हीं का स्मरण करें।

'यहाँ पवनपुत्र हनुमान कहाँ !' लक्ष्मण जी के कहते ही भगवान् श्री राम ने उत्तर दिया—'आञ्जनेय कहाँ नहीं हैं ?

धरा के कण-कण में वे विद्यमान हैं। मुझे तो देवी के रूप में भी उन्हीं के दर्शन हो रहे हैं।'

सुमित्राकुमार ने देवी की ओर देखा और दृष्टि उठायी ही थी कि वज्राङ्गबली हनुमान जी ने घोर गर्जना की; ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस गर्जना से आकाश फट जायगा। सम्पूर्ण पातालपुरी काँप उठी। राक्षसों सहित वीर अहिरावण के नेत्र मुंद गये। इतनी ही देर में हनुमानजी ने एक ही झटके से अहिरावण के हाथ से तलवार छीन ली और श्रीराम एवं लक्ष्मण को अपने कंधों पर बैठाकर लगे असुरों का वध करने।

सहसा कैसे क्या हो गया? असुर चकित हो ही रहा था कि वहाँ के आधे राक्षस समाप्त हो गये। भयानकमूर्ति हनुमान जी से प्राण बचाकर राक्षस भाग जाना चाहते थे, किंतु पवन कुमार ने अपनी पूंछ लम्बी कर चतुर्दिक उसका इतना विशाल प्राचीर बना दिया था कि एक भी राक्षस भागकर अपना प्राण नहीं बचा सका। सभी मार डाले गये।

अहिरावण ने कुपित होकर अपनी दूसरी तीक्ष्ण तलवार से हनुमान जी पर आक्रमण किया, किन्तु रुद्र के अवतार वज्राङ्ग पर लगकर उसकी तलवार टूट गयी। अब क्रुद्ध हनुमान जी ने अपने हाथ की तलवार के एक ही झटके से अहिरावण का मस्तक उतार लिया। रक्त का फव्वारा छोड़ता और नाचता हुआ उसका कबन्ध पृथ्वी पर और मस्तक प्रज्वलित अग्निकुण्ड में गिर पड़ा। इस प्रकार असुर का हवन पूर्ण हुआ।

अहिरावण का सारा परिवार मारा गया। वहाँ से चलते समय श्री रघुनाथ जी ने अपनी ही पूँछ में आबद्ध मकरध्वज का परिचय पाया तो उन्होंने तुरन्त हनुमान जी को आदेश दिया—'सर्वप्रथम मकरध्वज को पाताल का राज्य प्रदान करो।'

हनुमान जी ने मकरध्वज को राजतिलक देकर कहा--'बेटा ! तुम धर्मपूर्वक शासन करते हुए सदा सर्वदा मेरे स्वामी श्रीसीताराम का स्मरण करते रहना।'

मकरध्वज ने भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण के दुर्लभतम चरण कमलों की रज माथे पर चढ़ायी और अपने पिता को प्रणाम कर उन्हें आदरपूर्वक विदा किया। हनुमान जी अपने प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण को अपने कंधों पर बैठाकर तीव्रतम गति से लंका की ओर उड़े।

इधर वानर और भालुओं के दुःख का पार नहीं था। सभी चिन्तित, दुःखी और अशान्त थे। उनकी व्याकुलता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी कि सबने हनुमान जी का हर्षोल्लास पूर्ण स्वर सुना--'जय श्रीराम!'

वानर भालुओं ने प्रसन्न होकर देखने के लिए अपने-२ नेत्र ऊपर उठाये ही थे कि उग्रवेग हनुमानजी श्रीराम लक्ष्मण के साथ उनके मध्य उपस्थित हो गये। वानर-भालू हर्षोल्लास में गर्जन करने लगे--'भगवान् श्रीराम की जय ! सुमित्रानन्दन की जय !! पवनपुत्र हनुमान की जय !!!'

सुग्रीव की सेना में प्रसन्नता की लहरें उमड़ रही थीं और उधर इस जयघोष को सुनकर दुष्ट दशानन का मुख मलिन हो गया।

मातृ-चरणों में

दशग्रीव के प्राय सभी प्रमुख योद्धा समाप्त हो गये। विवशतः दशानन स्वयं युद्ध-भूमि में आया। वह अद्भुत धीर, वीर एवं प्रबल पराक्रमी था, किन्तु उसे भी कपिपुंगव आञ्जनेय की वीरता की प्रशंसा करनी पड़ी। रावण ने भयानक युद्ध

किया, किन्तु श्री रघुनाथ जी के सम्मुख उसकी एक न चली। वह अमित सौन्दर्य-राशि त्रैलोक्य-त्राता का दर्शन करता हुआ उन्हीं के पावनतम तीक्ष्ण शर की भेंट चढ गया। दशानन का निर्जीव शरीर भू-लुण्ठित होते ही श्रीराम और रावण के युद्ध की पूर्णाहुति हो गयी !

'जय श्रीराम !' आनन्दातिरेक से वानर-भालू उछलने-कूदने और परस्पर आलिङ्गन करने लगे। आकाश में देवगण प्रभु का स्तवन करते हुए उन पर स्वर्गीय सुमनों की वृष्टि करने लगे। आञ्जनेय के भी हर्ष की सीमा नहीं थी। उस समय उनके हर्षाश्रु से भरे नेत्रों के सम्मुख निखिल भुवनेश्वरी माता सीता के अरुण अमल चरण-कमल थे।

उस समय भगवान् श्रीराम ने विभीषण, हनुमान, अङ्गद, सुग्रीव और जाम्बवान् आदि वीरों की प्रशंसा करते हुए कहा—'आप लोगों के बाहु-बल से आज मैंने रावण को मार दिया। आप सब लोगों की पवित्र कीर्ति जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तब तक स्थिर रहेगी और जो लोग मेरे सहित आप सबकी कलि-कल्मष-नाशिनी त्रिलोक पावनी पवित्र कथा का कीर्तन करेंगे, वे परम पद को प्राप्त होंगे।'

उसी समय मृत रावण को देखकर मन्दोदरी आदि रावण की पत्नियाँ स्वयं पछाड़ खाकर गिर पड़ीं और विलाप करने लगीं। विभीषण अपने भाई का शव देखकर शोक से व्याकुल हो गये। यह देखकर सुमित्रानन्दन ने उन्हें संसार की नश्वरता का वर्णन करते हुए प्रेम पूर्वक समझाया। उनके सदुपदेश से विभीषण के शोक और मोह का निवारण हो गया। वे लक्ष्मण जी के साथ प्रभु के समीप पहुँचे। प्रभु ने विभीषण को दुःख से व्याकुल होकर विलाप करती हुई मन्दोदरी आदि रानियों को समझाने

और बन्धु-बान्धवों सहित यथाशीघ्र दशानन का अन्त्येष्टि-संस्कार करने की आज्ञा दी। विभीषण ने पिता-तुल्य बड़े भाई रावण का विधि पूर्वक अन्तिम संस्कार कर उसे जलाञ्जलि दी और फिर पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। इसके अनन्तर उन्होंने मन्दोदरी आदि रानियों को समझा-बुझाकर राजसदन भेज दिया और स्वयं प्रभु के समीप जाकर विनीत भाव से हाथ जोड़े खड़े हो गये।

भगवान् श्री राम ने विभीषण की प्रथम भेंट में ही उन्हें 'लंकाधीश' बना दिया था, किन्तु अब प्रभु के आदेशानुसार लक्ष्मण जी ने सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान और जाम्बवान् आदि के सहित लंका में प्रवेश किया और वहां उन्होंने ब्राह्मणों के द्वारा मन्त्रपाठ पूर्वक समुद्र के जल से भरे हुए सुवर्ण कलशों से विभीषण का मङ्गलमय अभिषेक किया। विभीषण लंका के अधीश्वर हुए, यह देखकर पवनपुत्र के हर्ष की सीमा न रही। सच तो यह है कि विभीषण को इस सुख-सौभाग्य की प्राप्ति का मुख्य हेतु श्री हनुमान-मिलन ही था। यह अहैतुक दयामय पवनपुत्र की दयामयी दृष्टि का ही सुफल था।

विभीषण लंका के सम्भ्रात नागरिकों के साथ विविध प्रकार के बहुमूल्य उपहार लेकर लक्ष्मण सहित प्रभु के चरणों में पहुंचे। उपहार प्रभु के सम्मुख रखकर उसने उन्हें सादर दण्डवत् प्रणाम किया। उसको राज्य पद पर अभिषिक्त देखकर श्री रघुनाथ जी अत्यन्त प्रसन्न थे।

प्रभु ने देखा, उनके सम्मुख पर्वताकार हनुमान जी हाथ जोड़कर विनीत भाव से खड़े हैं। श्री राघवेन्द्र ने उनसे कहा— 'पवनकुमार! तुम मिथिलेश कुमारी के स्नेह भाजन हो। तुम महाराज विभीषण की आज्ञा प्राप्त करके लंका में प्रवेश करो

और वहाँ सीता को रावण वध का समाचार सुना दो। साथ ही वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नल, नील, जाम्बवान्, विभीषण तथा अन्यान्य वीर वानर भालुओं के साथ मेरा और लक्ष्मण का कुशल समाचार बतला दो।'

'जय श्रीराम!' हनुमान जी ने गर्जना की। हर्ष उनके हृदय में समा नहीं रहा था। जगजननी जानकी जी को उन्होंने वचन दिया था और वह वचन रावण वध के साथ पूरा हो गया, किंतु यह कुशल समाचार! यह विजय संदेश!! प्रभु के विरह-वह्नि में जलने वाली अनुपम सती पत्नी सीता को प्रभु का विजय सन्देश!!! इससे अधिक सुख की वस्तु और क्या होगी?

विभीषण के आदेशानुसार महावीर हनुमान जी के साथ-साथ प्रख्यात वीर असुर चल रहे थे। हनुमान जी का सर्वत्र उल्लासपूर्ण स्वागत एवं सादर अभिनन्दन हो रहा था किंतु उन प्रभु भक्त को मातृ चरणों के दर्शन की, उन चरणों में दण्ड की भांति लेट जाने की उत्कट लालसा थी। हनुमानजी अशोक वाटिका में पहुँचे।

माता सीता उसी अशोक तरु के नीचे राक्षसियों से घिरी बैठी थी, जहाँ पहले पवनतनय ने उनका दर्शन किया था। उग्रवेग हनुमान जी दौड़े और 'माता!' कहते हुए उनके चरणों में लेट गये। हनुमान को देखते ही माता सीता का मुख हर्ष से खिल उठा।

कुछ देर बाद हनुमान जी उठे और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने गद्‌गद कण्ठ से कहा—'माता! असुरराज रावण मारा गया। विभीषण ने लंका का राज्य पद प्राप्त कर लिया

और श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण, सुग्रीव और वानर सेना सहित सकुशल हैं।'

जीवन-सर्वस्व प्रभु का सन्देश कितना सुखद था, इसे वियोगिनी माता जानकी ही जानती हैं। उनके आनन्द की सीमा नहीं थी। हर्षातिरेक के कारण कुछ क्षण तो बोल भी नहीं सकीं। फिर उन्होंने कहा—'वत्स हनुमान ! इस संदेश के सदृश त्रैलोक्य की अन्य कोई वस्तु मुझे सुख नहीं दे सकती ! इस अवसर पर मैं तुम्हें क्या दूं, मुझे नहीं सूझ रहा है। तुमने मेरा बड़ा उपकार किया हैं, मैं तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकती।'

विनीतात्मा हनुमान जी माता के चरणों में गिर पड़े। उन्होंने कहा—'माता ! मैं शत्रु के नष्ट होने पर स्वस्थ-चित्त से विराजमान विजयशाली श्री राम का दर्शन करता हूँ—यह मेरे लिये नाना प्रकार की रत्नराशि और देवराज्य से भी बढ़कर है। और पुत्र तो माता से कभी उऋण हो ही नहीं पाता। मैं आपके साथ परम प्रभु के चरणों की छाँह में पड़ा रहूँ, मुझे आप की सेवा का सुअवसर प्राप्त होता रहे, बस, मेरी यही लालसा है। मेरी इतनी ही कामना है।'

मारुतात्मज की श्रद्धा-भक्तिपूर्ण विनीत वाणी सुनकर जनकनन्दिनी ने प्रसन्न होकर कहा—'वीरवर ! तुम्हारी वाणी उत्तम लक्षणों से सम्पन्न, माधुर्य-गुण से भूषित तथा बुद्धि के आठ अङ्गों (गुणों) से अलंकृत है। ऐसी वाणी केवल तुम्हीं बोल सकते हो। तुम वायुदेवता के प्रशंसनीय पुत्र तथा परम धर्मात्मा हो। शारीरिक बल, शूरता, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल, पराक्रम, उत्तम दक्षता, तेज, क्षमा, धैर्य, स्थिरता, विनय तथा अन्य बहुत से सुन्दर गुण केवल तुम्हीं में एक साथ विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है।

अग्नि नात्मज की प्रशंसा करती हुई माता जानकी ने उन्हें दुर्लभतम आशिष दे दी–'हे पुत्र ! सुनो, समस्त सद्गुण तुम्हारे हृदय मे बसें और हे हनुमान ! लक्ष्मण जी के साथ कोसलपति प्रभु सदा तुम पर प्रसन्न रहें ।'

निखिल भुवनेश्वरी जगदम्बा से शुभाशीर्वाद प्राप्त कर हनुमानजी पुनः मातृ-चरणों में गिर पड़े । कुछ क्षणों के उपरान्त उन्होंने क्रूर दृष्टि वाली विकराल मुखी राक्षसियों को देखकर निवेदन किया–'माता ! इन विकराल, विकट आकार वाली, क्रूर और अत्यन्त दारुण राक्षसियों ने आपको बड़ी पीड़ा पहुँचायी है । इन्हें देखकर मेरा खून खौल रहा है । आप कृपा पूर्वक आज्ञा प्रदान करें तो मै इनके दाँत तोड़ दू, इनके नाक-कान काट लू और इनके बाल नोचकर मुक्को और लातो से मार-मारकर इनका कचूमर निकाल दूँ ।'

हनुमान जी की कठोर वाणी सुनकर सीता जी को निरन्तर डराने-धमकाने वाली रावण की दुष्ट दासियाँ अत्यन्त भयभीत होकर वैदेही के मुखारविन्द की ओर देखने लगीं । जनक दुलारी ने कहा–'ना, बेटा ! ये तो स्वयं रावण के अधीन थीं और उसके आदेश का पालन कर रही थीं । रावण की मृत्यु के बाद तो ये अत्यन्त विनय पूर्वक मुझे प्रत्येक रीति से संतुष्ट करने का प्रयत्न कर रही है । मुझे तो अपने पूर्व-कर्मों के कारण यह सारा दुःख निश्चित रूप से भोगना ही था, इसलिये यदि इन राक्षसियों का कुछ अपराध भी हो तो उसे मै क्षमा करती हूँ । ये तो दया की पात्र हैं ।'

'दयामयी जननी !' हनुमानजी ने गद्गद कण्ठ से कहा– 'ऐसे वचन मेरे परम प्रभु श्रीराम की सहधर्मिणी ही बोल सकती है!' फिर हनुमान जी ने निवेदन किया–'माँ ! अपनी

'ओर से आप मुझे कोई संदेश दें। अब मैं अपने स्वामी के पास जाऊँगा।'

हनुमदीश्वर

दशग्रीव के परमधाम-गमन के साथ ही लंका-विजय का कार्य पूर्ण हो गया। फिर विभीषण के राज्याभिषेक के अनन्तर श्री रघुनन्दन अपनी सहधर्मिणी सीता, अनुज लक्ष्मण, पवनपुत्र हनुमान, वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, महामतिमान् जांम्बवान् आदि वानर-भालुओं के साथ पुष्पक-विमान पर आरूढ़ हो आकाश-मार्ग से चलकर गन्धमादन पर्वत पर उतरे। वहाँ परमसती विदेह-नन्दिनी सीता की अग्नि-परीक्षा द्वारा शुद्धि की गयी। उस समय महामुनि अगस्तजी के साथ दण्डकारण्य निवासी ऋषि-मुनियों ने गद्गद् कण्ठ से प्रभु की स्तुति की।

श्रीराघवेन्द्रने तपस्वी मुनियों के चरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर अत्यन्त विनय के साथ निवेदन किया—'तपस्वी ब्राह्मणो ! मैं क्षत्रिय हूँ। दुष्टों का शासन करना मेरा धर्म है। इस कारण मैंने लंकाधिपति रावण का तथा उसके भाइयों और पुत्रों का ही नहीं सम्पूर्ण पुलस्त्यकुल का संहार किया है, किन्तु वह था तो ब्राह्मणकुलोत्पन्न ही। अतएव ब्राह्मण-वध के पाप का प्रायश्चित्त क्या है ? आप लोग कृपापूर्वक विचार करके मुझे यह बताने का कष्ट करें।'

श्री रघुनन्दन के वचन सुनकर मुनियों के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम आप यद्यपि स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं, पाप-नामक कोई वस्तु आपका स्पर्श भी नहीं कर सकती, आपने तो उन असुरों को मुक्ति

प्रदान कर उनका परम मङ्गल ही किया है, किन्तु मर्यादा पालन और मर्यादा रक्षा आपका धर्म है। अतएव आप यहाँ लोक संग्रह की दृष्टि से शिव-लिङ्ग की स्थापना करें। उस शिवलिङ्ग की असीम महिमा होगी और वह आपके ही नाम से प्रख्यात होगा। उसके दर्शन एवं पूजन से मनुष्य तो परमपद प्राप्त करेंगे ही, रावण वध का दोष भी दूर हो जायगा।

लिंग स्थापना का पुण्यमय समय दो ही मुहूर्त में आने वाला था। अतएव उसी काल में प्रतिष्ठा करने की दृष्टि से श्री राघवेन्द्रने पवनकुमार को शिव-लिंग लाने के लिये कैलाश पर्वत भेजा।

परम पराक्रमी श्रीराम भक्त हनुमान की प्रसन्नता की सीमा न रही। उन्होंने अपने आराध्य श्री सीताराम के चरणो मे प्रणाम किया और वायुवेग से उड़ चले। कैलाश पहुँचते उन्हें देर न लगी; किंतु वहाँ लिंग रूपधारी महादेवजी का दर्शन नहीं प्राप्त हुआ, तब ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमान ने आशुतोष शिवको सन्तुष्ट कर उनसे शिवलिंग प्राप्त कर लिया और फिर विद्युत् गति से लौट पड़े।

इधर हनुमानजी के न पहुँचने से स्थापना का मुहूर्त व्यतीत होते देखकर तत्त्वदर्शी मुनियों ने धर्मपालक श्री रामचन्द्र जी से कहा—'रघुनन्दन! पुण्यकाल समाप्त होने वाला ही है। अतः वैदेही ने लीला पूर्वक जो बालू का शिवलिंग बनाया है, इस समय आप उसी की स्थापना कर दीजिये।'

मुनियो का आदेश प्राप्त होते ही भगवान् श्रीराम ने अपनी सहधर्मिणी सीता तथा ऋषियों के साथ मंगलाचरण प्रारम्भ किया। उस समय ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्षकी दशमी तिथि और बुधवार का दिन था। हस्त नक्षत्र के साथ गर करण,

एवं आनन्द और व्यतीपात योग थे। कन्या राशि पर चन्द्रमा तथा वृष राशि पर सूर्य विराजमान थे। ऐसे परम पुण्यमय उपर्युक्त दस योगों की उपस्थिति में गन्धमादन पर्वत पर सेतु की सीमा में भगवान् श्री राम ने लिंग रूपधारी पार्वती वल्लभ भगवान् शिव की स्थापना की उस समय उक्त लिंग में स्वयं सतीशिरोमणि पार्वती सहित शशांक शेखर, कर्पूरगौर, आशुतोष शिव प्रकट हो गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्री राम को वर प्रदान करते हुए कहा 'रघुनन्दन! आपके द्वारा प्रतिष्ठित इस रामेश्वर लिंग के दर्शनार्थियों की समस्त पाप राशि क्षणार्ध में ही ध्वंस हो जाएगी।

भगवान् शंकर अन्तर्धान हुए ही थे कि हनुमान जी कैलाश पर्वत से एक उत्तम शिवलिङ्ग लिये वेगपूर्वक वहां आ पहुँचे। उन्होंने वहां आते ही माता जानकी, परम प्रभु श्रीराम सौमित्र और वानर राज सुग्रीव के चरणों में भक्ति पूर्वक प्रणाम किया, किंतु जब उन्होंने भगवती सीता एवं मुनियों के साथ श्री रघुनाथजी को बालुकामय शिवलिङ्ग का पूजन करते देखा तो वे अत्यन्त दुःखी हो गये। खिन्नमन उन्होंने श्री राघवेन्द्र से कहा -प्रभु! आपके आदेशानुसार मैं वायुवेग से कैलाश पर्वत पर गया। वहाँ भगवान् शंकर का दर्शन न मिलने से उन्हें प्रसन्न करने के लिए मैंने तपस्या प्रारम्भ की। फिर महादेव जी की कृपा से यह उत्तम लिङ्ग लेकर मैं द्रुतगति से आ ही रहा था कि आपने यहाँ बालू का लिङ्ग स्थापित कर लिया। अब मैं इस शिव-लिंग का क्या करूँ?'

अपने अनन्य भक्त पवनपुत्र हनुमान को उदास देखकर प्रभु ने उन्हें अत्यन्त स्नेह पूर्वक समझाया -'कपीश्वर! तुम शोक मत करो। तुम्हारी अनुपस्थिति में शिव-लिंग की स्थापना का

पुण्यकाल व्यतीत हो रहा था, इस कारण मैंने इस सीता-निर्मित बालुका लिंग की स्थापना कर दी। तुम गम्भीरता पूर्वक विचार करो तो प्रत्यक्ष देखोगे कि तुम्हारा किया हुआ प्रत्येक कर्म मेरा किया हुआ है और मेरा किया हुआ प्रत्येक कर्म, तुम्हारा। मैंने जो यह शिव-लिंग की स्थापना की है, वह तुमने ही की है, तुम यही समझो।

'वानरश्रेष्ठ ! आज शुभ दिन है, अतः इसी समय अपना कैलाश से लाया हुआ श्रेष्ठ शिव-लिंग यहाँ तुम्ही स्थापित करो। 'हनुमदीश्वर'—तुम्हारे ही नाम से यह लिंग त्रिलोकी में प्रख्यात होगा। पहले हनुमदीश्वर का दर्शन करके तब रामेश्वर का दर्शन होगा।'

भगवान् श्रीराम ने प्राणप्रिय हनुमानजी को समझाते हुए आगे कहा—'निष्पाप हनुमान ! तुमने मेरी सेवा की दृष्टि से असख्य ब्रह्मराक्षसो का वध किया है, तुम्हारी दृष्टि उन्हें शीघ्र परमधाम भेजने की थी। तुम तो स्वयं परम-पावन हो, अतएव पाप तो तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर सकता; किन्तु व्यवहारतः इस लिंग की स्थापना से तुम उस पाप से मुक्त हो जाओगे।'

भगवान् श्रीराम की गहनतम आत्मीयता एवं प्रीति से प्रभावित पवननन्दन श्री रघुनाथजी के सर्वमंगल मूल चरण कमलो में दण्ड की भांति लेट गये और फिर खड़े होकर हाथ जोड़े गद्गद कण्ठ से स्तवन करने लगे—

'सबकी उत्पत्ति के आदि कारण, सर्वव्यापी, श्री हरि-स्वरूप श्रीरामचन्द्र जी को नमस्कार है। आदिदेव, पुराणपुरुष, भगवान् गदाधर को नमस्कार है। पुष्प के आसन पर नित्य विराजमान होने वाले महात्मा श्रीरघुनाथजी को नमस्कार है। प्रभो ! हर्ष से भरे हुए वानरो का समुदाय आपके युगल चरणार-

विन्दों की सेवा करता है, आपको नमस्कार है। राक्षसराज रावण को पीस डालने वाले तथा सम्पूर्ण जगत् का अभीष्ट सिद्ध करने वाले श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है। आपके सहस्त्रों मस्तक, सहस्त्रों चरण और सहस्त्रों नेत्र हैं, आप विशुद्ध विष्णु स्वरूप राघवेन्द्र को नमस्कार है। आप भक्तों की पीड़ा दूर करने वाले तथा सीता के प्राणवल्लभ हैं। आपको नमस्कार हैं। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण करने वाले आप नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णु को नमस्कार है। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वी को उठाने वाले भगवान् वराह ! आपको नमस्कार है। बलि के यज्ञ को भंग करने वाले आप भगवान् त्रिविक्रम को नमस्कार है। वामनरूपधारी भगवान् को नमस्कार है। अपनी पीठ पर महान् मन्दराचल धारण करनेवाले भगवान् कच्छपको नमस्कार है। तीनों वेदों की रक्षा करने वाले मत्स्यरूपधारी भगवान् को नमस्कार है। क्षत्रियों का अन्त करने वाले परशु-रामरूपी राम को नमस्कार है। राक्षसों का नाश करने वाले आपको नमस्कार हैं। राघवेन्द्र का रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। महादेवजी के महान् भयंकर महाधनुष को भङ्ग करने वाले आपको नमस्कार है क्षत्रियों का अन्त करने वाले क्रूर परशुराम को भी त्रास देने वाले आपको नमस्कार हैं। भगवन् ! आप अहिल्या का संताप और महादेवजी का चाप हरने वाले हैं, आपको नमस्कार है। दस हजार हाथियों का बल रखने वाली ताड़का के शरीर का अन्त करने वाले आपको नमस्कार है पत्थर के समान कठोर और चौड़ी बाली की छाती छेद डालने वाले आपको नमस्कार है। आप मायामय मृग का नाश करने वाले तथा अज्ञान को हर लेने वाले हैं, आपको नमस्कार है दशरथजी के दुःखरूपी समुद्र को शोष लेने के लिए

आप मूर्तिमान अगस्त्य हैं, आपको नमस्कार है अनन्त उत्ताल तरंगों से उद्वेलित समुद्र का भी दर्प-दलन करने वाले आपको नमस्कार है। मिथिलेशनन्दिनी सीता के हृदयकमल को विकसित करनेवाले सूर्यरूप आप लोकसाक्षी श्रीहरि को नमस्कार है। हरे ! आप राजाओं के भी राजा और जानकी के प्राणवल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। कमलनयन ! आप ही तारक ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आप ही योगियों के मन को रमने वाले 'राम' हैं। राम होते हुए चन्द्रमा के समान आह्लाद प्रदान करने के कारण 'रामचन्द्र' हैं, सबसे श्रेष्ठ और सुखस्वरूप हैं। आप विश्वामित्रजी के प्रिय हैं, खर नामक राक्षस का हृदय विदीर्ण करने वाले हैं, आपको नमस्कार है। भक्तों को अभयदान देने देने वाले देवदेवेश्वर ! प्रसन्न होइये। करुणासिन्धु श्रीरामचन्द्र आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा कीजिये। वेद-वाणी के भी अगोचर राघवेन्द्र ! मेरी रक्षा कीजिये। श्रीराम ! कृपा करके मुझे उबारिये। मैं आपकी शरण में आया हूँ रघुवीर ! मेरे महान् मोह को इस समय दूर कीजिये। रघुनन्दन ! स्नान, आचमन, भोजन, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि सभी क्रियाओं और सभी अवस्थाओं में आप मेरी रक्षा कीजिये। तीनों लोक में कौन ऐसा पुरुष है, जो आपकी महिमा का वर्णन या स्तवन करने में समर्थ हो सकता है। रघुकुल को आनन्दित करने वाले श्री राम ! आप ही अपनी महिमा को जानते हैं।'

करुणामूर्ति श्रीरघुनाथजी की इस प्रकार स्तुति करने के अनन्तर अञ्जनानन्दन भक्तिपूर्ण हृदय से जगजननी श्रीजानकी जी की स्तुति करते हुए कहने लगे—

'जनकनन्दिनी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सब पापों का नाश तथा दारिद्रय का संहार करने वाली हैं।

भक्तों को अभीष्ट वस्तु देने वाली भी आप ही हैं। राघवेन्द्र श्रीराम को आनन्द प्रदान करने वाली विदेहराज जनककी लाड़िली श्रीकिशोरी जी को मैं प्रणाम करता हूँ। आप पृथ्वी की कन्या और विद्यास्वरूप हैं, कल्याणमयी प्रकृति भी आप ही हैं। रावण का संहार तथा भक्तों के अभीष्ट का दान करने वाली सरस्वती रूपा भगवती सीता को मैं नमस्कार करता हूँ। पतिव्रताओं मे अग्रगण्य आप श्री जनकदुलारी को मैं प्रणाम करता हूँ। आप सब पर अनुग्रह करने वाली समृद्धि, पापरहित और श्री विष्णु प्रिया लक्ष्मी है। आप ही आत्मविद्या, वेदत्रयी तथा पार्वतीस्वरूपा हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप ही क्षीरसागर की कन्या और चन्द्रमा की भगिनी कल्याणमयी महालक्ष्मी हैं, जो भक्तो पर कृपा प्रसाद का अनुग्रह करने के लिये सदा उत्सुक रहती है, आप सर्वाङ्गसुन्दरी सीता को मैं प्रणाम करता हूँ। आप धर्म का आश्रय और करुणामयी वेद-माता गायत्री है, आपको मै प्रणाम करता हूँ। आपका कमल वन में निवास है, आप ही हाथ मे कमल धारण करने वाली तथा भगवान् विष्णु के वक्ष स्थल में निवास करने वाली लक्ष्मी हैं। चन्द्रमण्डल में भी आपका निवास है, आप चन्द्रमुखी सीता देवी को मैं नमस्कार करता हूँ। आप श्रीरघुनन्दन की आह्ला-दमयी शक्ति हैं, कल्याणमयी सिद्धि हैं और कल्याणकारिणी सती है। श्रीरामचन्द्रजीकी परम प्रियतमा को मैं प्रणाम करता हूँ। सर्वाङ्गसुन्दरी सीता का मै अपने हृदय में सदैव चिन्तन करता हूँ।'

इसके बाद आञ्जनेय ने प्रभु के आदेशानुसार श्रीरामेश्वर के उत्तरी भाग में अपने द्वारा लाया हुआ शिव-लिङ्ग स्थापित कर दिया।

आनन्दरामायण के सारकाण्ड की इस कथा से थोड़ी भिन्नता पायी जाती है। उसके अनुसार सेतु-बन्धन के समय श्रीराघवेन्द्र ने हनुमानजी को काशी जाकर भगवान् शंकर से एक उत्तम शिव-लिंग माँगकर मुहूर्त मात्र में ले आने की आज्ञा दी।

पवननन्दन तीव्रवेग से काशी पहुँचे और शिवजी से दो श्रेष्ठ लिंग माँगकर उसी वेग से लौट पड़े। उस समय उनके मन मे कुछ गर्व हो आया। सर्वान्तिर्यामी भक्तवत्सल प्रभु ने मुहूर्त बीतते देखकर बालू का शिव-लिंग बनाकर सेतु के इस छोरपर स्थापित कर दिया।

बालू के शिवलिंग की स्थापना का समाचार पवन कुमार को मार्ग में ही मिल गया। इस कारण उन्होंने प्रभु के समीप आते ही क्रोध से पृथ्वी पर अपना पैर पटका। इससे उनके दोनों पैर धरती मे धँस गये। अत्यन्त क्षुब्ध होकर उन्होंने प्रभु से कहा-'प्रभो! आपने काशी से भगवान् शिव से एक उत्तम शिवलिंग ले आने के लिये मुझे भेजा था, क्या यह आपको स्मरण नहीं था? आपने व्यर्थ ही मेरा उपहास किया। अब मै इन दोनो शिवलिंगो का क्या करूँ?'

श्री रघुनाथजी ने अत्यन्त शान्तिपूर्वक हनुमानजी से कहा 'कपे! अब यदि तुम मेरे द्वारा स्थापित बालुकामय शिवलिंग को पूँछ मे लपेटकर उखाड़ दो तो मैं तुम्हारे काशी से लाये हुए इस लिंग को स्थापित कर दूं।'

हनुमान जी ने उस बालू के लिंग के ऊपरी भाग मे पूँछ लपेटकर उसे जोर से हिलाया। अनेक बार हिलाने पर भी जब वह टस से मस नहीं हुआ, तब महावीर हनुमान ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे खींचा। भगवान् श्री राम के स्पर्श से उक्त

प्रतिष्ठित शिव-लिंग वज्रतुल्य हो गया था। महावीर की अमित शक्ति से वह बालू का लिंग तो टस से मस नहीं हो सका, किंतु हनुमानजी की पूंछ टूट गयी और वे दूर पृथ्वी पर मुंह के बल गिरकर मूछित हो गये। वह दृष्य देखकर वहाँ समस्त वानर-भालू हँस पड़े।

कुछ क्षणोपरान्त मूर्छा दूर हुई, पर साथ ही श्रीराम-भक्त हनुमान का गर्व भी नष्ट हो गया। उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक प्रभु की स्तुति करते हुए कहा—'कृपासिंधु श्रीराम ! मेरे द्वारा जो अपराध हुआ हो, उसे आप क्षमा करें।'

दयामय श्रीरामचन्द्रजी ने पवननन्दन से कहा—'हनुमान ! तुम मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वर शिवलिंग से उत्तर की ओर इस विश्वनाथ-नामक लिंग को स्थापित करदो।' फिर भगवान् श्रीराम ने हनुमानजी के द्वारा स्थापित लिंग को वरदान देते हुए कहा—'हनुमान ! तुम्हारे द्वारा स्थापित विश्वनाथ नामक उत्तम लिंगकी पूजा किये बिना जो मनुष्य सेतुवन्ध रामेश्वर की पूजा करेंगे, उनकी पूजा व्यर्थ हो जायगी।'

इसके अनन्तर प्रभु ने पवनकुमार से आगे कहा—'मेरे लिये लाया हुआ विश्वनाथ शिवलिंग यहीं चुपचाप पड़ा रहने दो। यह लिंग दीर्घकाल तक पृथ्वी पर अपूजित ही रहेगा। भविष्य में मैं स्वयं इसकी स्थापना करूँगा। तुम्हारी पूँछ यहीं छिन्न हुई है, अतएव तुम यहीं धरती पर छिन्नपुच्छ तथा गुप्तपाद होकर अपने गर्व का स्मरण करते रहना।'

फिर दयामूर्ति श्री रघुनाथ जी ने अपने कर-कमलों से हनुमान जी की पूंछ का स्पर्श करके उसे पूर्ववत् सुदृढ़ एवं सुन्दर बना दिया।

हनुमान जी ने प्रभु की लीला से शिक्षा ग्रहण की। अब

सर्वथा गर्वरहित हनुमानजी की प्रसन्नता की सीमा न रही। उन्होंने सीतापति श्रीराम के आदेशानुसार श्रीरामेश्वर-लिंग से उत्तर में अपना विश्वनाथ-लिंग स्थापित कर दिया।

माता का दूध

भगवान् श्रीराम अपने प्राणप्रिय भाई भरत से मिलने के लिए अधीर हो रहे थे, इस कारण विभीषण ने रत्नादि उपहारों के साथ उनकी सेवा मे कुबेर का इच्छानुसार चलनेवाला, दिव्य एवं उत्तम पुष्पक विमान उपस्थित कर दिया। उक्त सूर्य-तुल्य तेजस्वी विमान पर श्रीरघुनाथ जी की आज्ञा से विभीषण, हनुमान एवं समस्त वानर भालुओं के साथ सुग्रीव और युवराज अंगद भी चढ़ गए। फिर भगवान् श्री राम की प्रेरणा से वह पुष्पक विमान आकाश मार्ग से तीव्र-गति से उड़ चला। भगवान श्रीराम अपनी प्राणप्रिया को त्रिकूट पर्वत पर बसी विशाल लंका, मेघनाथ, कुम्भकरण एवं रावण आदि के वधस्थल, सेतु-बन्ध, शिव-स्थापना आदि को दिखाते तथा अपनी लीला का विवरण सुनाते जा रहे थे कि वह अद्भुत विमान किष्किन्धा के ऊपर जा पहुँचा। श्री रघुनाथ जी ने उसे वहाँ उतरने की आज्ञा दी।

विमान के किष्किन्धा में उतरते ही वानरराज सुग्रीव की आज्ञा से उनकी पत्नी तारा आदि सुन्दरी स्त्रियाँ वैदेही के समीप पहुँच गयीं। माता सीता की इच्छानुसार सुग्रीव की रानियाँ भी प्रभु के राज्याभिषेक का उत्सव देखने चली। उस समय पवननन्दन हाथ जोड़े टकटकी लगाए प्रभु के मुखारविन्द की ओर ऐसे देख रहे थे, जैसे वे कुछ कहना चाहते हों। भक्त-वत्सल प्रभु ने उनकी ओर देखते ही तुरंत पूछा ? तब हनुमान

जी ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'प्रभो ! माताजी के दर्शन हुए अधिक दिन बीत गए । यदि आज्ञा हो तो मैं उनके चरणों का स्पर्श कर आऊँ ।'

श्रीरघुनाथजी ने हर्षोल्लासपूर्वक हंसते हुए कहा—'और हम लोग माताजी के दर्शन से वंचित रहेंगे क्या ?'

प्रभुकी आज्ञा से विमान अयोध्यापथ से हटकर काञ्चन-गिरि के लिए उड़ चला । विमान के उतरते ही हनुमानजी के साथ स्वयं जगजननी जानकी और परमप्रभु श्रीराम सबके साथ उतर पड़े । हनुमानजी के साथ निखिल भुवनपति जगद्धात्री सीता के सहित सौमित्र तथा वानर-भालुओं का विशाल समुदाय और वानर पत्नियों के साथ विभीषण की पत्नियां हनुमान जी की जननी अञ्जना के दर्शनार्थ चलीं ।

माता का दर्शन होते ही हनुमान जी दौड़कर अबोध शिशु की भांति उनके चरणों में गिर पड़े । उनका कण्ठ अवरुद्ध-सा हो गया था । नेत्रों से आंसू बह चले । उन्होंने बड़ी कठिनाई से कहा—'माँ !'

'माँ'—माता अञ्जना को उनका लाल—उनका प्राणखण्ड कितने दिनों बाद मिला था । वे सजल नेत्रों से हनुमान जी के सिर पर अपना हाथ फेरने लगीं । पुत्र को आशीर्वाद तो उनका रोम-२ दे रहा था ।

उसी समय वहां श्रीसीता और लक्ष्मण सहित प्रभु भी पहुँच गये । 'माँ ! ये मेरे प्राणनाथ प्रभु और ये माता जानकी तथा ये सौमित्रि हैं ।' हनुमान जी ने उनका परिचय दिया ।

अञ्जना के सुख-सौभाग्य का क्या कहना ? स्वयं परम-प्रभु चलकर उनके द्वार पर पधारे । देवी अञ्जना उनके चरणों में गिरने ही जा रही थीं कि श्री रघुनाथ जी ने अपने पिता

का नाम लेते हुए उनके चरणों का स्पर्श कर उन्हें प्रेमपूर्वक बैठाया। भगवती सीता और लक्ष्मण ने भी उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर सुग्रीव, युवराज अंगद, राक्षसराज विभीषण–असंख्य वानर-भालू, सुग्रीव एवं विभीषण की पत्नियाँ–सबने एक साथ पृथ्वी पर मस्तक रखकर हनुमान जी की माता अञ्जना को अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

माता अञ्जना अपने भाग्य पर गर्व कर रही थीं। निखिल सृष्टि के स्वामी एवं उद्भवस्थितिसंहारकारिणी जगदम्बा को मेरा लाल हनुमान मेरे द्वार ले आया। उन्होने मुझे सम्मान दिया, यह सौभाग्य देवताओं एवं तपस्वी महर्षियों को भी कहाँ प्राप्त होता है? उन्होंने बड़े ही प्यार से प्रभु को, उनके मुखारविन्द को उनके कर-कमलों को एवं अरुण कमल-तुल्य लाल-लाल चरणों को सहलाया। माता जानकी को हृदय से लगाया और सबकी ओर देखती हुई माता अञ्जना ने कहा 'मैं जननी हूँ, मै ही यथार्थ पुत्रवती हूँ। मेरे पुत्र हनुमान ने भगवान् के चरणों मे अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है और उसी के कारण जगदाधार स्वामी ने स्वयं मेरे यहाँ पधारकर मुझे अपना दुर्लभतम दर्शन प्रदान करने की कृपा की है। उन्होने भी मुझे 'माँ' कहा है। अब मै केवल अपने हनुमान की ही नहीं, इन परमप्रभु श्रीराम की, बेटी सीता की, लखनलाल की और इन असंख्य परम पराक्रमी तेजस्वी वानर भालुओं की माता हूँ।'

फिर उन्होंने हनुमान जी से कहा—'बेटा! कहते है, पुत्र माता से कभी उऋण नहीं हो पाता, किंतु तू मुझसे उऋण हो गया। तूने अपना जीवन और जन्म तो सफल कर ही लिया,

तेरे कारण मेरे भाग्य पर बड़े-से-बड़े सुर मुनि पुंगवों को भी ईर्ष्या हो सकती है।'

हनुमानजी ने माता अञ्जना के चरण दबाते हुए कहा—'माँ! इन करुणामूर्ति माता सीता को दशानन हरकर ले गया था। इन करुणानिधान की आज्ञा एवं इन्हीं की कृपा शक्ति से मैंने समुद्र पार जाकर लंका में माताजी का पता लगाया। फिर प्रभु ने समुद्र पर पुल बंधवाया और लंका में राक्षसों के साथ भयानक संग्राम किया। मेघनाथ, कुम्भकरण और रावण जैसे प्रख्यात दुर्जय वीरों का प्रभु ने वध किया और फिर विभीषणजी को लंका के राज्य-पद पर अभिषिक्त कर माता जानकी के साथ अयोध्या पधार रहे हैं।'

हनुमान जी के वचन सुनते ही माता अञ्जना ने कुपित होकर उन्हें अपनी गोद से ढकेल दिया। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा—'तूने व्यर्थ ही मेरी कोख से जन्म लिया। मैंने तुझे व्यर्थ ही अपना दूध पिलाया।'

परम प्रभु श्री रघुनाथजी के साथ विदेहनन्दिनी, सौमित्र, समस्त वानर-भालू, विभीषण, वानरराज सुग्रीव एवं विभीषण की पत्नियाँ तथा स्वयं पवननन्दन चकित थे कि अभी-अभी माता जी को क्या हो गया? ये सहसा क्रुद्ध क्यों हो गयीं? हनुमानजी हाथ जोड़े चुपचाप माता की ओर टकटकी लगाये देख रहे थे और अञ्जना देवी उन्हें डाँटती हुई कह रही थीं 'तुझे और तेरे बल तथा पराक्रम को धिक्कार है। क्या तुममें इतनी शक्ति नहीं थी कि तू लंका में प्रवेश करने पर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर समूची लंका को डुबा देता? तू दुष्ट दशानन को उसके सैनिकों सहित नहीं मार सकता था और यदि तू उन्हें मारने में समर्थ नहीं था तो उससे युद्ध करता हुआ स्वयं

मर जाता, किंतु तेरे जीवित रहते परम प्रभु को सेतु बन्धन एवं राक्षसों से युद्ध करने का कष्ट उठाना पड़ा। तूने मेरे दूध को लज्जित कर दिया। धिक्कार है तुझे! अब तू मुझे अपना मुँह मत दिखाना।'

माता अञ्जना क्रोध से काँप रही थीं। हाथ जोड़े हनुमान जी ने कहा–माँ! मैंने तेरे दूध को कभी लज्जित नहीं किया है और न भविष्य में तेरे महिमामय दूध को कभी आँच ही आयेगी। यदि मैं स्वतन्त्र होता तो लंका क्या, इच्छा होने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को क्षणार्द्ध में पीसकर रख देता। राक्षसों को मच्छर की तरह मसलकर मार डालता और उसी समय माता जानकी को प्रभु के चरणों में पहुंचा देता, किन्तु जगज्जननी जानकी का पता लगाने के लिये समुद्रपार जाते समय मेरे नायक जाम्बवन्त जी ने मुझे आदेश दिया था कि 'तुम केवल माता सीता को देखकर उनका कुशल-समाचार लेकर लौट आना!"

हनुमान जी ने महामतिमान् जाम्बवन्त जी की ओर देख कहा--'माँ! तुम इनसे पूछ लो। मैं यदि इनकी आज्ञा का उल्लंघन कर देता तो स्वामी की परम पवित्र लीला एवं कीर्ति में व्यवधान पड़ता। मैं तो अपने प्रभुकी सेवा के लिये केवल उनकी आज्ञा का पालन करना ही अपना प्रमुख कर्तव्य मानता हूँ।'

जाम्बवान् ने हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा–'माताजी हनुमानजी सत्य कह रहे हैं, आपके दुग्ध के प्रताप से इनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, किंतु ये मनमानी करते तो प्रभु के यश का विस्तार कैसे हो पाता?'

श्री रघुनाथजी ने जाम्बवान के वचन का अनुमोदन किया तब माता अञ्जना का क्रोध-निवारण हुआ। उन्होंने शान्त होकर कहा---'अरे बेटा! यह सब मैं नहीं जानती थी। मुझे

आश्चर्य हुआ कि मैंने जिस हनुमान को अपना दुग्ध पिलाकर पाला है, वह इतना कायर कैसे हो गया कि उसके रहते जगदाधार स्वामी को कष्ट उठाना पड़ा।'

माता अञ्जना के द्वारा बार-बार अपने दुग्ध की प्रशंसा में सौमित्र अतिशयोक्ति समझ रहे थे। माता अञ्जना ने उनके मुखारविन्द को देखकर अनुमान कर लिया कि 'लखनलाल को मेरी बातों पर सन्देह हो रहा है।' उन्होंने कहा—'लखनलाल! आप समझ रहे है कि यह बुढ़िया बार-बार अपने दुग्ध का क्या गुणगान कर रही है? पर मेरा दूध असाधारण है। आप स्वयं देख लीजिये।'

माता अञ्जना ने अपने स्तन को दबाकर दुग्ध की धार समीपस्थ पर्वत-शिखर पर छोड़ी। फिर तो जैसे वज्रपात हो गया। भयानक शब्द के साथ वह पर्वत फटकर दो भागों में विभक्त हो गया।

'माता अञ्जना की जय! समस्त वानर-भालुओं ने चकित होकर गर्जना की।

माता अञ्जना ने कहा—'लखनलाल! मेरा यही दूध हनुमान ने पिया है। मेरा दूध कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।'

प्रसन्नमन श्री रघुनाथजी हाथ जोड़कर माता अञ्जना से चलने की आज्ञा माँगने लगे, तब उन्होंने कहा—'प्रभो! आपने दर्शन देकर मुझे तो सर्वस्व दे दिया है, फिर भी मेरी एक प्रार्थना है कि आप मेरे हनुमान को अपना बनाकर इसे सदा अपने चरणों की छत्रच्छाया में रखियेगा।'

हनुमान जी ने माता के चरणों पर सिर रखा तो उन्हें आशीर्वाद देते हुए उन्होने कहा—'बेटा! तू सदा निष्कपट भाव

से अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति पूर्वक परम प्रभु श्रीराम एवं जगज्जननी जानकी की सेवा करते रहना।'

'माता अञ्जना की जय!' प्रभु के साथ सब लोग पुष्पक विमान पर आरूढ हुए और विमान तीव्रतम गति से अयोध्या के लिये उड़ चला।

सुखद सन्देश

आकाश में तीव्रतम गति से उड़ता हुआ पुष्पक विमान तीर्थराज प्रयाग के ऊपर पहुँचा। भगवती सीता ने प्रभु की इच्छानुसार त्रिवेणी के पवित्र चरणों में प्रणाम किया वहीं से अयोध्या के दर्शन करके तो श्रीरघुनन्दन भाव-विभोर हो गये। तदनन्तर प्रभु के इच्छानुसार पुष्पक त्रिवेणी-तट पर उतर पड़ा।

वहाँ प्रभुने जनकदुलारी सीता और लक्ष्मण तथा समस्त वानर-भालुओं के साथ अत्यन्त प्रसन्न होकर स्नान किया और ब्राह्मणों को पुष्कल दान देकर उन्हें संतुष्ट कर दिया।

तदनन्तर भक्तवत्सल प्रभु ने पवननन्दन को बुलाकर कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुम शीघ्र ही अयोध्या जाकर वहाँ का कुशल-समाचार ले आओ। शृङ्गवेरपुर में जाकर वनवासी निषादराज गुह से भी मिलकर उसे मेरे सकुशल लौटने का सवाद सुना देना। वह मेरा मित्र है। वन से मेरे कुशल पूर्वक लौटने के समाचार से उसे बड़ी प्रसन्नता होगी। उससे तुम्हें भाई भरत का भी समाचार मिल जायेगा। भाई भरत के पास जाकर उनके आरोग्य आदि का समाचार पूछकर वैदेही और लक्ष्मण के सहित मेरे कुशल पूर्वक लौटने का समाचार उन्हें सुना देना। उनकी मुख-मुद्रा और चेष्टाओं का भी ध्यान रखना। यदि किसी प्रकार उनके मन में राज्य-सुख की तनिक

भी कामना लक्षित हो तो वे निश्चिन्तता पूर्वक भूमण्डलका राज्य करें। ऐसी स्थिति में मैं कहीं अन्यत्र रहकर तपोमय जीवन व्यतीत करूँगा। प्रत्येक रीति से मुझे भरत का ही सुख अभीष्ट है। उनसे मिलकर तुम यथाशीघ्र लौट आओ।'

'जय श्रीराम !' हनुमानजी ने प्रभु के चरणों में प्रणाम किया और ब्राह्मण का वेष धारण कर आकाश मार्ग से गरुड़-वेग से उड़ चले। निषादराज को प्रभु का समाचार सुनाया तो उनके हर्ष की सीमा न रही। वे हर्षोल्लास पूर्वक श्री रघुनाथ जी के स्वागत की तैयारी में जुट गये और हनुमान जी अयोध्या के लिए चल पड़े। मार्ग में परशुराम-तीर्थ, वालुकिनी नदी, वरूथी, गोमती और भयानक शालवन के दर्शन करते हुए पवनकुमार ने अयोध्या से एक कोस की दूरी पर भरत जी के आश्रम को देखा।

श्री भरत जी की अत्यन्त करुण स्थिति थी। परम प्रभु श्रीराम के वियोग में उन्होने राज्य-सुख को तिलाञ्जलि दे दी थी। भगवान श्रीराम अपनी प्रिया सीता और अनुज लक्ष्मण सहित अयोध्या त्यागकर वन में क्या गये, भरत का तन, मन, प्राण और सारा सुख उनके साथ चला गया। वनवासी श्रीराम की भाँति श्रीराम-चरण-चञ्चरीक भरत जी अयोध्या से एक कोस दूर नन्दिग्राम में एक पर्ण शाला में निवास करते थे। वे शरीर भस्म रमाते तथा वल्कल और कृष्ण-मृग चर्म धारण करते थे। उनकी जटाएँ बढ़ गयी थीं। वे फल-मूल का आहार करके प्रभु की चरण-पादुकाओं की पूजा करते रहते और उन्हीं के सम्मुख बैठकर पृथ्वी का शासन करते। उनके पास मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी योगयुक्त होकर रहते और गेरुए वस्त्र पहनते थे।

भगवान श्री राम के अनन्य प्रेमी भरत जी का अधिकांश समय अपने प्रभु अग्रज के स्मरण-चिन्तन में ही व्यतीत होता था।

श्री सीताराम के वियोग में वे प्रायः रोते रहते। कठोर तप:पूर्ण जीवन व्यतीत करने से वियोगी भरत जी का शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया था। उन्होंने प्रभु के चौदह वर्षो के अरण्य वास की अवधि को एक-एक दिन गिनकर व्यतीत किया था, प्रभु के आने में अब केवल एक दिन और शेष रह गया था। इस कारण भरत जी अत्यधिक अधीर हो गये थे। उनका एक-एक पल जैसे वर्ष-तुल्य हो गया था।

उन्होंने अयोध्या से शृङ्गवेरपुर तक ऐसे अश्वारोहियों को नियत करवा दिया था, जो गंगा-तटपर प्रभु के पधारते ही तुरन्त अवध में सूचना पहुँचा दें। इस कारण तनिक पत्ता भी खटकता तो भरतजी उत्सुक होकर कान लगा देते, पर कहीं से प्रभु के पधारने की कोई सूचना नहीं प्राप्त हो रही थी। अतएव वे मन ही मन व्याकुल हो रहे थे।

यद्यपि भरत जी की दाहिनी आँख बारबार फड़ककर शुभ की सूचना दे रही थी, किंतु श्री सीता राम के लिये आतुर उनके दुःख की सीमा नहीं थी। वे सोचते थे–'अब तक मेरे प्राणाराध्य श्रीराम के आगमन की सूचना क्यों नहीं आयी ? क्या प्रभु ने मेरी दुष्टता के कारण अयोध्या आने का विचार तो नहीं त्याग दिया ? सचमुच मै बड़ा पातकी हूँ, जो मैंने प्रभु को कण्टकाकीर्ण पथ से वनों पर्वतों में एकाकी चले जाने की स्वीकृति दे दी। निश्चय ही मै पाषाणहृदयी हूँ, अन्यथा मेरे प्राण तो उसी समय चले जाते। अहा ! भाई लक्ष्मण कितने भाग्यवान् है, जिन्होंने अपनी सहधर्मिणी, अपने मातापिता और सम्पूर्ण राज्य सुख को

ठोकर मारकर प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। मेरे प्राणनाथ ने मेरा कपट एवं मेरी कुटिलता पहचान ली, इसी कारण वे मुझे साथ नही ले गए। पर वे तो अहैतुक करुणामय हैं। प्राणिमात्र के सहज सुहृद वे दयानिधान यदि मेरे कर्मों की ओर दृष्टिपात करेंगे तब तो सौ करोड़ कल्पों तक भी मेरा उद्धार नहीं हो सकेगा। पर मेरे प्रभु श्रीराम का स्वभाव अत्यन्त कोमल है। वे दीनों और अनाथों पर सदा ही दयादृष्टि रखते हैं। इस कारण वे अपने भक्तों की त्रुटियो और उनके अपराधों की ओर कदापि ध्यान नहीं देते।'

रघुकुलतिलक श्रीराम की पादुकाओ के सम्मुख कुशासन पर बैठे भरतजी उन्हीं की स्मृति में विकल-विह्वल हो रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था, अधरों से वे प्रभु के पावनतम 'राम'-नाम का जप कर रहे थे। उसी समय ब्राह्मण-वेशधारी हनुमानजी वहाँ पहुँच गये। अपने परमप्रभु नवनीरद-वपु श्रीराम की प्रतिमूर्ति भरतजी की विरह-व्यथा देखकर पवन-पुत्र की प्रसन्नता की सीमा न रही। उन्होंने हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रतापूर्वक मधुर वाणी में भरतजी से कहा प्रभो! आप जिन दण्डकारण्यवासी तपोनिष्ठ भगवान् श्रीराम का अर्हानिश चिन्तन करते हैं तथा जिनके लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, वे ककुत्स्थनन्दन श्रीराम अपने शत्रु रावण को मारकर अपनी प्रिया वैदेही, भाई लक्ष्मण तथा अपने मित्र वानर-भालुओं के साथ कुशलपूर्वक आपसे मिलने के लिए अधीर होकर आ रहे हैं। कल पुष्य नक्षत्र के योग में आप उनका दर्शन प्राप्त करेंगे।'

भगवान् श्रीराम के सकुशल पधारने का संदेश! अमृतमय सुखद संदेश!! भरतजी में जैसे नवजीवन का संचार हो

गया। उनके हर्ष की सीमा नहीं थी। उन्होंने आतुरतापूर्वक ब्राह्मणदेव को प्रणाम किया ही था कि हाथ जोड़े हुए पवनकुमार उनके चरणों की ओर झुके। भरतजी ने उनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक पूछा—'मुझे अतिशय आनन्द प्रदान करनेवाला संदेश सुनानेवाले आप कौन हैं? आप कहाँ से पधारे हैं?'

'प्रभो! मैं भगवान् श्रीराम का दास पवनपुत्र हनुमान हूँ। प्रभु ने मुझे आपका कुशल-समाचार जानने और अपनी कुशलता का संवाद सुनाने के लिए आपकी सेवा में भेजा है।' हनुमानजी का उत्तर सुनते ही भरतजी ने उन्हें अत्यन्त प्रेमपूर्वक हृदय से लगा लिया। भरतजी के नेत्रों से वेगपूर्वक आँसू बहने लगे। उन्होंने अञ्जनानन्दन के शरीर पर हाथ फेरते हुए गद्-गद कण्ठ से कहा—'हनुमान! आज तुम्हें देखकर मेरा सारा दुःख दूर हो गया। मानो तुम्हारे रूप में मुझे मेरे परमप्रभु श्रीराम ही मिल गये। भाई हनुमान! इस सुखद संदेश के समान मेरे लिए आनन्दप्रदायक और कुछ नहीं है। हे तात! मैं तुमसे किसी प्रकार उऋण नहीं हो सकता। अब तुम मुझे मेरे प्रभु का चरित्र सुनाओ।'

श्री भरतजी के आदेशानुसार हनुमानजी ने उनके चरणों में सिर झुकाया और श्रीरामचन्द्रजी का क्रमशः सम्पूर्ण चरित्र सुना दिया। मारुति से श्रीराम चारित्र सुनते हुए भरतजी मन-ही-मन आनन्दित हो रहे थे। हनुमानजी के चुप होने पर उन्होंने पूछा—'कपिश्रेष्ठ! क्या प्रभु मुझे भी कभी दास की तरह स्मरण करते थे?'

अत्यन्त विनीत भरतजी के वचन सुन मारुति ने उत्तर दिया—'प्रभो! मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ, आप भगवान् श्रीराम के प्राण-तुल्य प्रिय हैं। वे सदा आपका गुणगान करते हुए आत्म-

विभोर हो जाते थे। अब आप कृपापूर्वक मुझे प्रभु के समीप पहुँचने की आज्ञा दीजिये।'

प्रेममूर्ति भरतजी ने पुनः हनुमानजी को गले से लगा लिया। वे पवनकुमार का बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, उनके हृदय में आनन्द समा नहीं पा रहा था।

पवनकुमार ने भरतजी के चरणों में प्रणाम किया और प्रभु श्रीराम के समीप पहुँचने के लिए तीव्र गति से चल पड़े।

हनुमानजी के अयोध्या के लिए प्रस्थित हो जाने पर श्रीरघुनाथजी पञ्चमी तिथि को मुनिवर भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे और उनका दर्शन कर सीता तथा भाई लक्ष्मण सहित उनके चरणों में प्रणाम किया। सुग्रीव, अङ्गद और विभीषणादि ने भी महामुनि के चरणों में श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदय से प्रणाम निवेदन किया।

महर्षि भरद्वाज ने श्रीराम को शुभ आशीर्वाद देकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक बैठाया। भगवान् श्रीराम ने कहा—'मुनिनाथ! आपकी कृपा से चतुर्दश वर्ष का वनवास-काल समाप्त होने पर मुझे पुनः आपके चरणों के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आपको यदि भाई भरत का कुछ कुशल-समाचार प्राप्त हुआ हो तो कृपया बतलाइये!'

मुनिवर भरद्वाज ने उत्तर दिया—'धर्ममूर्ति श्रीराम! आपने पृथ्वी का भार उतारने का महान् दायित्व पूर्ण कर लिया और शत्रु पर विजय प्राप्त कर सफल मनोरथ हो अपनी सती पत्नी, भाई लक्ष्मण एवं मित्रों सहित कुशलपूर्वक लौट आये, यह देखकर मैं आनन्दमग्न हो रहा हूँ। मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं है।'

फिर अत्यन्त गद्‌गद कण्ठ से महर्षि ने कहा—'श्रीराम!

आप समस्त लोकों से वन्दित और सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। आप साक्षात् विष्णु भगवान् हैं, जानकीजी लक्ष्मी हैं और ये लक्ष्मणजी शेषनाग है।' आप सर्वान्तर्यामी हैं, किन्तु आपके पूछने पर मैं बता रहा हूँ कि अयोध्या में सब कुशल हैं। आपके भाई भरत आपके स्मरण मे रोते हुए किसी प्रकार एक-एक क्षण व्यतीत कर रहे हैं। वे अत्यन्त कृश हो गये हैं। आपके दर्शन की आशा में ही उनके प्राण टिके हुए हैं। कौसल्यादि आपकी माताएँ तथा अयोध्यावासी उत्सुकता के साथ आपके लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

महामुनि के मुख से भाई भरत की प्रीति एवं उनका दुःख जानकर रघुकुलनन्दन श्रीराम व्याकुल हो गये। उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। उन्होंने महामुनि के अनुरोध की रक्षा के लिए उनका आतिथ्य स्वीकार किया। तब तक हनुमानजी ने नन्दिग्राम से लौटकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। हनुमानजी के द्वारा अपने भाई भरत का समाचार सुनकर भ्रातृवत्सल प्रभु श्रीराम ने महामुनि के चरणों में प्रणाम किया और भाई भरत से मिलने के लिए आतुर होकर पुष्पक विमान में जा बैठे। विमान वेगपूर्वक उड़ा।

इधर हनुमानजी के लौटते ही भरतजी ने यह समाचार गुरु वसिष्ठ एवं माताओं को सुनाया तो उनके हर्ष की सीमा न रही। राजसदन ही नहीं, पूरी अयोध्या में सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम के आगमन के संवाद से प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। छोटे-बड़े सभी अत्यन्त उत्साहपूर्वक अपने घरों, द्वारों एवं मार्गों को सजाने लगे। अनेक प्रकार के उज्ज्वल मोतियों और रत्नों की बंदनवारों एवं चित्र-विचित्र पताकाओं से अवधपुरी सज उठी। गृह-गृह, गली-गली, राजमार्ग राजसदन–सर्वत्र

जैसे आनन्द मूर्तरूप होकर नृत्य कर रहा था। सर्वत्र हर्ष! सर्वत्र प्रसन्नता! सर्वत्र आनन्द! सर्वत्र उल्लास! सर्वत्र प्रभु के दर्शन की उत्कट लालसा!!! अयोध्या आज तक ऐसी कभी नहीं सजी थी। उसकी शोभा के सम्मुख अमरावती भी लज्जित हो रही थी। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी नवीन एवं आकर्षक वस्त्राभरणों से सजे थे और सभी प्रभु के स्वागतार्थ उनके दर्शनार्थ सब से आगे पहुँच जाना चाहते थे। कहीं बालकों, कहीं युवकों, कहीं वृद्धों, स्त्री-पुरुषों का समुदाय भगवान् श्रीराम के दर्शनार्थ मङ्गल-गान करता हुआ चला जा रहा था। अयोध्या से प्रभु के स्वागतार्थ एक लाख घोड़े, दस सहस्र हाथी और सुनहरी बागडोरों से विभूषित दस सहस्र रथ आदि अनेक ऐश्वर्यमयी वस्तुओं के साथ लोग चले। प्रभु के दर्शन के लिए पालकी में माताएँ, राज-सदन की स्त्रियाँ और शत्रुघ्न के साथ भरतजी सिर पर प्रभु की पादुकाओं को रखकर पैदल ही चले। उस समय भरतजी के मन में हर्ष नहीं समा रहा था। रह-रहकर उनके नेत्रों से प्रेम के आँसू छलक पड़ते थे।

नगर के बाहर भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी, महर्षि वसिष्ठ, माताएँ राजमहिलाएँ और समस्त पुरवासी अत्यन्त आतुरता से प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि उन्हें सहसा चन्द्रमा के समान कान्तिमान् और सूर्य के समान तेजस्वी पुष्पक विमान दिखायी दिया।

'भगवान् श्रीराम की जय! जगजननी जानकी की जय!! लखनलाल की जय!!!' से सम्पूर्ण वायुमण्डल गूंज उठा और उसी समय मन की गति से चलने वाला विमान धरती पर उतर गया। सीता, लक्ष्मण एवं अपने समस्त परिकरों के उतर जाने

पर भगवान् श्रीराम ने पुष्पक को कुबेर के पास चले जाने की आज्ञा दी।

भगवान् श्रीराम ने अपने सम्मुख वामदेव, वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनियों को देखा तो अपना धनुष-बाण-पृथ्वी पर रख दिया और लक्ष्मण सहित दौड़कर गुरु के चरण-कमलों में अत्यन्त आदरपूर्वक प्रणाम किया। वसिष्ठजी ने श्रीराम और लक्ष्मण को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उन्हे अनेक प्रकार के आशीर्वाद देने लगे। इसके बाद धर्ममूर्ति श्रीराम ने समस्त ब्राह्मणों को आदरपूर्वक प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

भरत, शत्रुघ्न और माताओं सहित समस्त पुरवासी प्रभु की ओर अपलक दृष्टि से देख रहे थे। भरतजी ने अत्यन्त प्रेम-पूर्वक प्रभु श्रीराम की पादुकाएँ सिर से उतारकर उनके सम्मुख रखी और उनके चरण-कमलों को पकड़ लिया। प्रीती-परवश श्री रघुनाथजी की भी बड़ी विचित्र स्थिति थी। भरतजी के प्रेम से उनके नेत्र सजल हो गये थे। श्री भगवान् उन्हें बार-बार उठाने का प्रयत्न कर रहे थे; किंतु भरतजी प्रभु के जन्म-जरा-मृत्यु-विरामदायी दुर्लभतम चरण-कमलो से उठाने पर भी नहीं उठ रहे थे। भक्त वत्सल प्रभु श्रीराम ने उन्हें बरबस उठाकर हृदय से लगा लिया।

नवनीरदवपु श्रीराम एवं नवघनश्याम भरतजी—दोनों जटाजूटधारी, दोनों तपस्वी, दोनों एक-दूसरे के प्राणाधिक प्रिय, दीर्घकाल के बाद दोनों प्राणप्रिय भाइयों का मिलन! श्रीराम भरत से उनका कुशल-संवाद पूछ रहे है, पर प्रेमानन्द में निमग्न होने के कारण भरतजी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया है। वे बोल नहीं पाते, उनकी स्थिति वे ही जानते है। बड़ी कठिनाई से

भरतजी ने उत्तर दिया—'प्रभो ! आपने मेरी रक्षा कर ली। आपका दर्शन प्राप्त हो गया। बस, इससे सब आनन्द-मङ्गल है।'

भगवान् ने प्रसन्न होकर शत्रुघ्नजी को हृदय से लगाया। और भरतजी ने भाई लक्ष्मण को अपने वक्ष से सटा लिया। एक ओर वानरराज सुग्रीव और उनकी पत्नियाँ, युवराज अङ्गद, लंकेश विभीषण और उनकी पत्नियां, जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद, नल और नीलादि वानर-भालुओं का अपरिसीम समुदाय, दूसरी ओर कुलगुरु वसिष्ठ, माता कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी तथा अन्य राजमहिलाएँ और उनके मध्य भगवान् श्रीराम और शत्रुघ्न, लक्ष्मण और भरत तथा सुमित्रा के पुत्रद्वय लक्ष्मण और शत्रुघ्न का परस्पर मिलन। उन चारों भाइयों का अद्भुत प्रेम एवं उनकी पाप-ताप-नाशक अलौकिक सौन्दर्य-राशि ! उनके समीप हाथ जोड़े चकित एवं पुलकित अञ्जनानन्दन।

निश्चय ही वे अत्यन्त भाग्यवान् हैं, जो अपने अन्तर्हृदय में यह मङ्गल-मूल-विधान, परम सुखद, सुन्दरतम ध्यान धारण कर सकें।

महिमामय

जगज्जननी जानकी और जगत्त्राता प्रभु श्रीराम को अयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन देखकर सर्वत्र हर्ष व्याप्त हो गया। अयोध्या में तो आनन्द का पावन नर्तन हो ही रहा था, हर्षातिरेक से मेदिनी पुलकित हो गयी और देवगण मुदित होकर स्वर्गीय सुमनों की वृष्टि करने लगे।

धर्म-विग्रह श्रीराघवेन्द्र ने मुनियों एवं ब्राह्मणों को पुष्कल दानादि—प्रत्येक रीति से प्रसन्नकर उसका आशीर्वाद प्राप्त

किया। तदनन्तर उन्होंने अपने मित्र किष्किन्धाधिपति सुग्रीव को मणियों से युक्त सोने की एक दिव्य माला भेंट की, जो सूर्य की किरणों के समान प्रकाशित हो रही थी। फिर प्रभु श्री राम ने युवराज अङ्गद को नीलम से जटित दो (बाजूबंद) भेंट किये, जो चन्द्रमा की किरणों से विभूषित प्रतीत हो रहे थे। इसी प्रकार मैत्री धर्म का मर्म समझने वाले प्रभु श्री राम ने राक्षसराज विभीषण, परम बुद्धि वैभव सम्पन्न जाम्बवान्, द्विविद, मैन्द, नल और नील आदि वानर भालुओं को मनोवाञ्छापूरक बहुमूल्य अलंकार एवं श्रेष्ठ रत्नादि प्रदान किये।

उस समय भगवान् श्रीराम ने महारानी सीता को अनेक सुन्दर वस्त्राभूषण अर्पित किये। साथ ही उन्होंने चन्द्र-किरणों के तुल्य प्रकाशित उस परमोत्तम मुक्ताहार को उनके गले मे डाल दिया, जिसे उन्हे वायुदेवता ने अत्यन्त आदरपूर्वक प्रदान किया था।

माता सीता ने देखा, प्रभु ने सबको अनेक बहुमूल्य उपहार अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रदान किये, किन्तु पवनकुमार को अब तक कुछ नहीं मिला और पवनकुमार निरन्तर श्री सीता राम के चरणारविन्द की ओर देख रहे थे। उन्हें त्रैलोक्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति उन चरणों में ही समायी दीख रही थी। माता सीताने प्रभु की ओर देखकर अञ्जनानन्दन को कुछ भेंट देने का विचार किया। उन्होंने प्रभुप्रदत्त दुर्लभतम मुक्ताहार को अपने गले से निकालकर हाथो में ले लिया और प्रभु की ओर तथा समस्त वानरो की ओर देखने लगी।

'महारानी सीता की इच्छा का अनुमान कर प्रभु ने कहा—'सौभाग्यशालिनि ! तुम जिसे चाहो, इसे दे दो।'

अपने प्राणनाथ का आदेश प्राप्त होते ही माता सीता ने

वह मुक्ताहार पवनपुत्र को दे दिया। उक्त बहुमूल्य हार को कण्ठ में धारण करने पर हनुमान जी की शोभा अद्भुत हो गयी।

हनुमानजी की भक्ति से तो सभी प्रभावित थे और सभी स्वीकार करते थे कि तेज, धृति, यश, चतुरता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और उत्तम बुद्धि—ये दस गुण इनमें सदा विद्यमान रहते हैं। अतएव इस बहुमूल्य हार के यथार्थ पात्र हनुमानजी ही थे। किन्तु इस हार के देने के बाद श्रीरघुनाथजी ने एक नयी लीला प्रारम्भ कर दी, जिससे हनुमानजी की अद्भुत महिमा प्रकट हुई और उनकी अनन्य भक्ति के सम्मुख सबको नत होना पड़ा।

जहाँ हनुमानजी के उस बहुमूल्य मुक्ताहार को प्राप्त करने के सौभाग्य की प्रशंसा हो रही थी, वहीं श्रीहनुमान जी की मुखाकृति पर उसकी प्राप्ति के कारण हर्ष का कोई चिन्ह नहीं दीख रहा था। वे तो सोच रहे थे कि माता जानकी और प्रभु श्रीराम मेरी अञ्जलि में अपने अनन्त सुखदायक चरणकमल रख देंगे, किन्तु यह मातृप्रदत्त मुक्ताहार! हनुमान जी ने उस मुक्ताहार को गले से निकाल लिया और उसे उलट-पलटकर देखने लगे। कुछ देर तो वे हार को, उसके प्रकाश विकीर्णकारी एक-एक मुक्तामणि को ध्यानपूर्वक देखते रहे, किन्तु उसमें उनका अभीष्ट प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने सोचा, सम्भवतः इसके भीतर मेरे अभीष्ट -'श्रीसीता-राम'—मिल जायें। बस, उन्होंने एक अनमोल रत्न को मुंह में डालकर अपने वज्र-तुल्य दाँतों से तोड़ दिया, पर उसमें भी कुछ न था। वह तो निरा चमकता हुआ पत्थर ही था। हनुमान जी ने उसे फेंक दिया।

यह दृश्य देखकर सबका ध्यान पवनतनय की ओर आकृष्ट हो गया। भगवान् श्रीराम मन ही मन मुस्करा रहे थे और

माता जानकी भरत आदि भाई, राक्षसराज विभीषण, वानरराज सुग्रीव, युवराज अङ्गद, महाप्रबुद्ध जाम्बवान्, निषादराज, समस्त वानर-भालू एवं सभासद्‌गण यह दृश्य देखकर चकित हो रहे थे। हनुमान जी ने दूसरे रत्न को भी मुंह में डालकर फोड़ लिया और उसे भी देखकर फेंक दिया। इस प्रकार वे अनमोल मुक्तामणि और रत्नों को मुख में डालकर दांतों से फोड़ते और उसे देखकर फेंक देते।

सभासदों का धैर्य जाता रहा, पर कोई कुछ बोल न पा रहा था। काना-फूंसी होने लगी–'आखिर हनुमानजी हैं तो बंदर ही न? बंदर को बहुमूल्य हार देने का और क्या परिणाम होता?' विभीषण जी ने तो पूछ ही लिया–हनुमानजी! इस हार के एक २ रत्न से विशाल साम्राज्य क्रय किये जा सकते है और आप इन्हें तोड़ फोड़कर नष्ट कर दे रहे है?'

एक रत्न फोड कर ध्यानपूर्वक देखते हुये हनुमान जी ने उत्तर दिया–'लंकेश्वर! क्या करूँ? मैंने देखा कि इस हार में मेरे प्रभु की भुवनपावनी मूर्ति है कि नहीं? किन्तु इसमें उसे न पाकर मैं इसके रत्नों को तोड़ फोड़ कर देख रहा हूँ कि सम्भवतः इनमें मेरे सर्वेश्वर की मूर्ति मिल जाय, पर अब तक तो एक रत्न में भी मेरे प्रभु की मूर्ति के दर्शन नहीं हुए। जिनमें मेरे स्वामी की त्रयतापनिवारक मूर्ति नहीं, वे तो तोड़ने और फेंकने ही योग्य है। इनका उपयोग ही क्या?'

महामूल्यवान् रत्नों के नष्ट होने से राक्षसराज विभीषण ने कुछ क्षुब्ध होकर पूछा–' यदि इन अनमोल रत्नों में प्रभु की झाँकी नहीं मिल रही हैं तो पहाड़ जैसी आपकी काया में प्रभु झाँकी होती है क्या?'

'निश्चय!' हनुमानजी ने दृढ़ विश्वास के साथ उत्तर

दिया—'मेरे प्राणनाथ प्रभु मेरे हृदय में भी विराजते हैं और यदि वे वहाँ नहीं हैं तब तो इस शरीर का भी कोई उपयोग ही नहीं। मैं इसे अवश्य नष्टकर दूंगा। आप स्वयं देख लीजिये—कहते हुए भगवान् श्रीराम के अनन्य चरणानुरागी पवनकुमार ने दोनों हाथों को अपने वक्ष पर रखा और अपने तीक्ष्णतम नखों से उसे फाड़कर दो भागों में विभक्त कर दिया।

आश्चर्य ! अत्यन्त आश्चर्य !! विभीषण जी ने ही नहीं भगवती सीता सहित भगवान् श्रीराम एवं समस्त सभासदों ने प्रत्यक्ष देखा, सम्मुख राजसिंहासन पर विराजित श्रीसीताराम की पावनतम मञ्जुल मूर्ति पवनपुत्र हनुमान के हृदय में भी विराज रही थी और उनके रोम-२ से 'राम' नाम की ध्वनि हो रही थी। लंकेश्वर उनके चरणों पर गिर पड़े।

'भक्तराज हनुमान की जय !' सभासदों ने जयघोष किया और भगवान् श्री राम ने सिंहासन से सहसा उतरकर हनुमानजी को अपने हृदय से लगा लिया (अन्यथा वे अपना सारा शरीर उधेड़कर रख देते) निखिलभुवनपावन भक्तवत्सल श्रीराम के मङ्गलमय कर स्पर्श से उनका शरीर पूर्ववत् स्वस्थ और सुदृढ़ हो गया। राज सभा में सबने हृदय से स्वीकार किया कि हनुमानजी भगवान् श्रीसीताराम के अनन्य भक्त एवं वाह्याभ्यन्तर श्रीराममय हैं।

पवनकुमार को माता जानकी और परम प्रभु श्रीराम ही प्राणप्रिय समझते हों, ये श्रीसीताराम की ही सम्पूर्ण ममता एवं स्नेह के केन्द्र हों, इतनी ही वात नहीं; इन्हें लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन कौसल्यादि माताएँ तथा श्रीराम-चरणानुरागी सभी प्राणाधिक प्यार करते थे।

भगवान् श्रीराम की आज्ञा से वानरराज सुग्रीव जब

किष्किन्धा के लिये प्रस्थित हुए, तब उन्होंने पवनपुत्र से अतिशय प्रीतिपूर्वक कहा –पवनकुमार ! तुम पुण्य की राशि हो। जाकर दयाधाम श्री रामजी की सेवा करो।'

हनुमानजी ! अतिशय सरल और अनन्यतम उदार हनुमानजी !–ये जीवमात्र को ही प्रभु के अक्षय सुख-शान्ति निकेतन चरण-कमलों में पहुँचाने के लिये व्यग्र रहते है। भगवद्-दुन्मुख प्राणियों के अहैतुक सहायक हैं ये। युवराज अङ्गद ने प्रभु से विदा लेकर किष्किन्धा जाते समय हनुमानजी से प्रार्थना की 'हे हनुमान ! मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि प्रभु के चरणों में मेरा अत्यन्त आदर-पूर्वक प्रणाम करना और उन्हे बार-२ मेरा स्मरण दिलाते रहना।'

प्रभु को उनके चरणोन्मुख प्राणी का स्मरण दिलाने के लिये तो वे प्रतिपल आतुर रहते है। सर्वथा निश्छल, अत्यन्त सरल हनुमानजी का यही तो स्वभाव है। हनुमानजी ने लौटते ही अङ्गद के प्रेम की प्रशंसा की, जिसे सुनकर भगवान् श्रीराम प्रेम-निमग्न हो गये। यह देखकर हनुमान जी को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ।

इतना ही नहीं, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघनजी भगवान् श्रीराम के चरणो से कुछ निवेदन करना चाहते है तो प्रभु के सम्मुख बोल नहीं पाते, वे हनुमान जी का सहारा लेते हैं। हनुमानजी के द्वारा ही उनके कार्य की सिद्धि होती है। देखिये न ! तीनो भाइयो ने प्रभु के चरणों में प्रणाम किया, वे प्रभु से कुछ पूछना चाहते हैं, पर सकोचवश कुछ कह नही पाते, हनुमान जी की ओर देखने लगते हैं। अन्तर्यामी प्रभु सब जान गये और वे हनुमानजी से पूछते हैं—'कहो हनुमान ! क्या बात है ?'

तब हनुमानजी ने हाथ जोड़कर कहा–'हे दीनदयालु

प्रभो ! सुनिये । हे नाथ ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करने में संकोच करते हैं । इस प्रकार भरतादि भाइयों के सहायक तो हुए ही; वे सहज ही उनके प्रीति-भाजन भी हैं ।

जहाँ भगवान श्रीराम के नाम का जप होता है, जहाँ प्रभु के मङ्गलमय मधुर नाम का कीर्तन होता है, जहां करुणा-मूर्ति श्रीसीताराम की लीला-कथा एवं उनका स्मरण-चिन्तन होता है, वहाँ हनुमानजी सदा उपस्थित रहते हैं । वे भगवती सीता सहित भगवान् श्रीराम के नाम-जापक एवं उनके लीला-गुणगायक का हृदय से आभार स्वीकार करते हैं । हनुमानजी के तन में, मन में, प्राण में—यहाँ तक कि उनके रोम-२ में व्याप्त निखिलभुवनपावन परम प्रभु ने लीला-संवरण कर साकेत पधारते समय उन्हें आदेश, प्रदान किया था—'हरिश्वर ! जब तक संसार में मेरी कथाओं का प्रचार रहे, तब तक तुम भी मेरी आज्ञा का पालन करते हुए प्रसन्नता पूर्वक विचरते रहो ।'

दयाधाम श्रीराम की आज्ञा प्राप्ति के लिये निरन्तर उनके मुखारविन्द की ओर देखते रहने वाले भक्तराज हनुमान जी ने तुरंत हाथ जोड़कर विनयपूर्वक निवेदन किया—'भगवन् ! संसार में जब तक आपकी पावन कथा का प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेश का पालन करता हुआ मै इस पृथ्वी पर रहूँगा ।'

परम प्रभु श्रीराम की आज्ञा के पालन में सतत जागरूक रहने वाले हनुमानजी के भाग्य की तुलना सम्भव नहीं । भगवान् श्रीराम ने एक सघन अमराई में कुछ देर विश्राम करने का विचार ही किया था कि वहाँ भरतजी ने अपना वस्त्र बिछा दिया । करुणामूर्ति श्रीराम उस पर बैठ गए और भरतादि भाई उनकी सेवा करने लगे । उस समय पवनपुत्र हनुमान उन

पर पंखा झलने लगे। सजल-जलदवपु परम प्रभु श्रीराम के दर्शन कर हनुमानजी का शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये।

सच्चिदानन्दघन प्रभु की इस झाँकी में हनुमानजी की सेवा एवं उनके भक्तिभाव का स्मरण कर भगवान् शंकर ने गद्-गद कण्ठ से जगन्माता पार्वती से कहा है—'गिरिजे ! हनुमानजी के समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्रीरामजी के चरणों का प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवा की (स्वयं) प्रभु ने अपने श्रीमुख से बार-२ बड़ाई की है।'

महिमामय भक्तराज हनुमान जी की महिमा का बखान सम्भव नहीं। बस, यह मनोहारिणी झाँकी जिस बड़भागी के हृदय में स्थान बना ले तो उसे निश्चय की मनुष्य जीवन का यथार्थ फल ही प्राप्त हो जाय।

भावुक भक्तो मे

वज्राङ्गबली महावीर हनुमान जी सहज सरल और भोले है। इनके भोलेपन एवं श्री रघुनाथजी के चरण कमलो में इनकी अद्भुत प्रीति की अनेक कथाएं भक्तो में प्रचलित है। उनका आधार तो विदित नही, किंतु वे कथाएं हनुमान जी की सरलता, उनके भोलेपन एवं उनकी अलौकिक श्रीरामप्रीति की परिचायिका है, इस कारण यहाँ कुछ कथाओ का उल्लेख करना अनुचित नही प्रतीत होता।

भगवान् श्री राम के अनन्य भक्त हनुमान जी की माता जानकी के चरणो में भी अद्भुत भक्ति है और जगजननी जनकदुलारी इन्हें प्राण-तुल्य प्यार करती है, इस कारण ये माताजी के सम्मुख तनिक भी संकोच नहीं करते। माता से

संकोच भी कैसा ? बात है मंगलवार प्रातःकाल की। हनुमान जी को भूख लगी। वे सीधे माता जानकी के समीप पहुंचे और बोले—'माँ ! मुझे भूख लगी है। कलेवा के लिये कुछ दीजिये।'

'बेटा ! मैं अभी स्नान करके तुम्हें मोदक देती हूँ।' माता के वचन सुन हनुमानजी प्रभु श्री राम का नाम्-जपते हुए माता के स्नान कर लेने की प्रतीक्षा करने लगे।

जगदम्बा सीता ने स्नान करके श्रृंगार करना प्रारम्भ किया। माता की माँग में सिन्दूर देखकर भोले हनुमान जी ने पूछा 'माता जी ! आपने यह सिन्दूर क्यों लगाया है ?'

माता जानकी को हँसी आ गई। हँसते हुए उन्होंने हनुमानजी को उत्तर दिया। उत्तर क्या दिया, जैसे वे छोटे अबोध शिशु को बहला रहीं थीं। बोलीं - 'इस लाल सिन्दूर को लगाने से तुम्हारे स्वामी की आयु वृद्धि होती है।'

'सिन्दूर लगाने से मेरे स्वामी की आयु बढ़ती है।' हनुमान जी मन-ही-मन सोचने लगे और देर तक सोचते रहे। वे सहसा उठे और ढूंढ़कर अपने सर्वांग में तेल लगाये, तत्पश्चात आपादमस्तक सिन्दूर पोत लिये। सर्वांग सिन्दुरारूप हो गया, जैसे उन्होंने सिन्दूर में स्नान किया हो। मेरे इस सिन्दूर लेप से मेरे प्रभु की आयु-वृद्धि हो जायगी, इस हर्षोल्लास में उन्हें अपनी क्षुधा का भी ध्यान नहीं रहा।

हनुमान जी सीधे प्रभु श्रीराम की राज-सभा में पहुँचे ही थे कि उन्हें इस सिन्दूरपूरिताङ्ग अद्भुत वेष में देखकर वहाँ जोर का अट्टहास हुआ। स्वयं भगवान् श्रीराम भी मुस्करा उठे। वे हनुमान जी से पूछ बैठे—'हनुमान ! आज तुमने सर्वाङ्ग में सिन्दूर-लेप कैसे कर लिया ?'

सरल हनुमानजी ने हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो ! माताजी के तनिक-सा सिन्दूर लगाने से आपकी आयु में वृद्धि होती है, यह जानकर आपकी अत्यधिक आयु-वृद्धि के लिए मैंने समूचे शरीर में सिन्दूर लगाना प्रारम्भ कर दिया है।'

श्रीराघव हनुमानजी के सरल भाव पर मुग्ध हो गये। उन्होंने घोषणा कर दी—'आज मंगलवार है। इस दिन जो मेरे अनन्य प्रीतिभाजन महावीर हनुमान को तेल और सिन्दूर चढ़ायेंगे, उन्हें मेरी प्रसन्नता प्राप्त होगी और उनकी समस्त कामनाओं की पूर्ति हो जाया करेगी।'

पवनात्मज ने प्रभु के दोनों चरण-कमलों को पकड़ लिया।

अतुलित बलधाम श्री हनुमानजी विद्या-बुद्धि-सम्पन्न तो हैं ही, वे निरन्तर भगवान् श्रीराम की सेवा में ही संलग्न रहना चाहते थे। प्रभु की सेवा में ही उन्हें सुख-शान्ति का अनुभव होता। सेवा के लिए वे प्रतिक्षण अवसर देखा करते, प्रभु की कोई आवश्यकता हो, प्रभु कोई भी आज्ञा प्रदान करें, उसके लिए हनुमानजी सदा सजग, सावधान और तत्पर रहते थे। प्रभु की सेवा के लिए वे पृथ्वी ही नहीं, आकाश और पाताल में भी चला जाने के लिए सदा प्रस्तुत रहते थे। उनकी इसी सेवा-वृत्ति के कारण भरतादि बन्धुओं की बात तो अलग रही, स्वयं जगज्जननी जानकी को भी प्रभु की किसी सेवा का सुयोग प्रायः नहीं मिल पाता, इस कारण वे सभी उद्विग्न रहा करते।

एक दिन की बात है, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनों भाई माता जानकी के पास पहुँचे। माताजी ने पूछा—'आज तीनों भाई एक साथ कैसे पधारे?'

भरतजी ने कहा—'प्रभु की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी

सभी सेवा हनुमानजी कर लेते हैं। हम लोग चाहते हैं कि कुछ सेवा का अवसर हमें भी मिले, किन्तु हनुमानजी सेवा के लिए निरन्तर हाथ जोड़े प्रभु के मुखारविन्द की ओर ही निहारा करते हैं। इस कारण हमें प्रभु की सेवा का कोई सुयोग नहीं मिल पाता। आपके चरणों में यही निवेदन करने हम लोग यहाँ आये हैं।'

स्वयं माताजी भी प्रभु की सेवा का सुयोग प्राप्त करने के लिए व्यग्र थीं। उन्होने तीनो भाइयो से कहा—'आप लोगों को भी प्रभु-सेवा का सुअवसर प्राप्त होना चाहिये, यह तो मै भी चाहती हूँ, किन्तु हनुमानजी के कारण मै भी प्रायः प्रभु की सेवा से वञ्चित रह जाती हूँ। पर किया क्या जाय? आप लोग कोई उपाय बताइये।'

गम्भीर विचार-विमर्श के उपरान्त निश्चय हुआ कि प्रभु के शय्या-त्याग से लेकर उनके पुनः शयन-काल तक की सेवा की एक तालिका बनायी जाय और उन सेवाओं को हम लोग अपने-अपने इच्छानुसार बाँट लें। उस निर्णीत सेवा की तालिका पर प्रभु के हस्ताक्षर कराकर उस पर राज-मुद्रा की छाप लगवा ली जाय, इस प्रकार हनुमानजी स्वतः सेवा-निवृत्त हो जायेंगे और हम लोगों को प्रभु की सेवा का अवसर प्राप्त होता रहेगा।'

तालिका बन गयी। अब प्रभु के हस्ताक्षर का प्रश्न था। माता जानकी ने कहा—'हस्ताक्षर तो मैं करा लूंगी।'

बस, पूर्ण आश्वस्त होकर तीनों भाई वहाँ से चले आये। रात्रि मे माता जानकी ने प्रभु से निवेदन किया—'आप इस सेवा-तालिका पर हस्ताक्षर कर दें।'

'कैसी सेवा-तालिका?' प्रभु के पूछने पर माता जानकी ने

उत्तर दिया—'आपकी सेवा के लिए आपके तीनो भाइयों ने मेरी सहमति से यह तालिका तैयार की है।'

प्रभु ने ध्यानपूर्वक आद्योपान्त पूरी तालिका देखी। उसमे हनुमानजी का नाम न देखकर उन्हें षड्यन्त्र का अनुमान तो हुआ, किन्तु उन्होने मुस्कुराते हुए उस पर हस्ताक्षर कर दिया। फिर माता जानकीजी ने निवेदन किया—'इस पर राज-मुद्रा की छाप लग जानी चाहिए।'

प्रभु ने कहा—'कल राज-सभा मे राज-मुद्रा की छाप भी लग जायगी।'

दूसरे दिन उस सेवा-सूची पर राज-मुद्रा की छाप भी लग गयी तथा उसकी एक-एक प्रति राज-सभा में वितरण कर दी गयी। भरतादि बन्धुओं के साथ माताजी की इस गोष्ठी मे निर्णीत प्रस्ताव से हनुमानजी सर्वथा अपरिचित थे। वे प्रभु की सेवा के लिए आगे बढे ही थे कि उन्हे रोककर कहा गया—आज से प्रभु की सेवा बाँट दी गयी हैं। अतएव आप इस सेवा से तो पृथक् ही रहे।'

'सेवा-वितरण का कार्य कब हुआ?' हनुमानजी ने पूछा ही था कि उनके हाथ में राजमुद्राङ्कित प्रभु की सेवा-तालिका दे दी गयी।

अत्यन्त ध्यानपूर्वक तालिका देख लेने के अनन्तर हनुमान जी ने कहा—'अरे, इसमें तो मेरा कहीं नाम ही नहीं है।'

उत्तर मिला—'यह तालिका आपकी अनुपस्थिति में बनी थी। हाँ, इस तालिका के अतिरिक्त भी कोई सेवा हो तो आप उसे ले सकते है।'

ज्ञानिनामग्रगण्य हनुमानजी ने कहा—'भगवान् को जंभाई आने पर चुटकी बजाने की सेवा इस तालिका मे नहीं है।'

लक्ष्मण जी ने कहा—'चाहें तो आप यह सेवा ले लें।'

'ठीक है, पर इस तालिका की तरह मेरी सेवा पर भी प्रभु के हस्ताक्षर हो जायें और उस पर राज-मुद्रा भी अङ्कित कर दी जाय।'

इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं थी। भक्तवत्सल प्रभु ने हनुमानजी की सेवा के पत्र पर तुरन्त हस्ताक्षर कर दिया और उसपर राज-मुद्रा की छाप भी लगा दी गयी। बस, हनुमानजी तुरन्त चुटकी तानकर प्रभु के सम्मुख वीरासन से बैठ गये। पता नहीं प्रभु को कब जंभाई आ जाय, इसलिए चुटकी बजाने की सेवा के लिए उन्हें सतत् सावधान रहना नितान्त आवश्यक था।

प्रभु उठे और सेवा-दक्ष हनुमानजी भी उनके साथ ही उठे। प्रभु चले और उनकी ओर मुँह किये चुटकी ताने हनुमान जी भी पीछे की ओर बढ़े। प्रभु बैठे, हनुमानजी भी बैठे। हनुमानजी प्रतिक्षण चुटकी ताने परम प्रभु के मुखारविन्द की ओर निहारते रहे।

श्री रघुनाथजी भोजन करने बैठे और हनुमानजी उनके सामने चुटकी ताने बैठ गये। हनुमानजी को अपनी सेवा की ही चिन्ता थी। यहां तक कि भोजन और जल-पान भी प्रभु की ओर चुटकी ताने हनुमानजी ने बायें हाथ से ग्रहण किया। एक क्षण के लिए भी उनकी दृष्टि प्रभु के मुखारविन्द से नहीं हटती थी।

रात्रि आयी। हनुमानजी प्रभु की शय्या के सम्मुख चुटकी ताने खड़े थे। अर्द्धरात्रि व्यतीत हो गयी, पर सेवाग्रगण्य हनुमानजी अपनी सेवा से चूकना नहीं जानते थे। किन्तु माता जानकी की आज्ञासे उन्हें रात्रिके समय प्रभु से पृथक् होना पड़ा।

हनुमानजी ने सोचा कि जंभाई आने का समय तो निश्चित है नहीं, यदि मेरे परम प्रभु को रात्रि में जंभाई आ जाय, तब तो मैं अपनी सेवा से वञ्चित रह जाऊँगा। वे प्रभु के शयनागार के समीप ऊंचे छज्जे पर बैठकर प्रभु का नाम लेते हुए चुटकी बजाने लगे। उनकी चुटकी बजती ही रही।

—'जो मुझे जैसे भजता है, मैं भी उसे उसी प्रकार भजता हूँ।' प्रभु के परम भक्त हनुमानजी प्रभु को जंभाई आने की सम्भावना से क्षुधा-तृषा एवं निद्रा का परित्याग कर जब चुटकी बजाते जा रहे हैं, तब अपने वचन के अनुसार प्रभु को जंभाई भी आनी चाहिये।

फिर क्या था ? श्री रघुनाथजी को जंभाई आने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार, दस बार, पचास बार, नहीं, अनवरत रूप से उन्हे जंभाई-पर-जंभाई आने लगी। जब जंभाई लेते-लेते प्रभु थक गये तो कष्ट से उनका मुँह खुला ही रह गया।

यह दृश्य देखकर माता सीता घबरायी। व्याकुल होकर उन्होंने माता कौसल्याजी को बुलाया। माता कौसल्या चिल्ला उठीं। फिर तो माता सुमित्रा, कैकेयी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, उनकी पत्नियाँ—सभी एकत्र हो गये। सबने देखा प्रभु श्रीराम का मुंह खुला-का-खुला पड़ा है। वह किसी प्रकार बन्द ही नहीं हो पा रहा है।

राज्य के प्रमुख चिकित्सक दौड़े। उन्होंने बहुमूल्य औषधियाँ दीं, किन्तु भक्तानुकम्पी लीलानायक जगदाधार स्वामी को उन औषधियों से तनिक भी लाभ नहीं हुआ। उनका मुँह खुला-का-खुला ही रहा। इतना ही नहीं, अब अधिक देर से मुख खुला रहने के कारण नेत्रों से धीरे-धीरे आँसू भी बहने लगे।

माता कौसल्या, माता सुमित्रा, माता कैकेयी, तीनों भाई, भगवती सीता आदि सभी व्याकुल होकर रुदन करने लगे। अत्यन्त करुण दृश्य उपस्थित हो गया। समाचार सुनकर गुरु वशिष्ठजी भी पहुँचे।

प्रभु श्रीराम ने हाथ जोड़कर उनके चरणों में प्रणाम किया, किन्तु मुंह खुला होने से कुछ बोल न सके। नेत्रों से आँसू बहते ही जा रहे थे।

इस चिन्ताजनक करुण स्थिति में प्रभु के अनन्य सेवक हनुमानजी को न देखकर वशिष्ठजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—'हनुमानजी कहाँ हैं?'

माता जानकी ने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! हनुमान के साथ बड़ा अन्याय हुआ है? उसकी सारी सेवा छीन ली गयी। तब उसने चुटकी बजाने की सेवा ले ली। वह दिन-भर प्रभु के सम्मुख चुटकी ताने खड़ा या वीरासन से बैठा रहा। अपनी इस सेवा के लिए उसने भोजन और शयन की भी चिन्ता त्याग दी। रात्रि में अत्यन्त कष्ट से वह यहाँ से गया। वह दुःख से व्याकुल होकर कहीं रुदन कर रहा होगा।'

वशिष्ठजी तुरन्त दौड़े। देखा, प्रभु-शयनागार के सम्मुख ऊँचे छज्जे पर हनुमानजी प्रभु के ध्यान में मग्न होकर उनके नाम का कीर्तन कर रहे हैं और उनके दाहिने हाथ से निरन्तर चुटकी बजती जा रही है।

वशिष्ठजी ने उन्हें पकड़कर हिलाया तो हनुमानजी के नेत्र खुले। अपने सम्मुख महामुनि वशिष्ठ के दर्शन कर हनुमानजी ने उनके चरणों में प्रणाम किया। वशिष्ठजी की आज्ञानुसार हनुमानजी उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

हनुमानजी ने प्रभु का खुला मुखारविन्द एवं उनके नेत्रों से

बहते आँसू देखे तो वे अत्यन्त व्याकुल हो गये। अधीर वज्रांगबली हनुमान के नेत्रों से भी आँसू बहने लगे। चिन्ता और दुःख के कारण उनकी चुटकी बंद हो गयी और चुटकी बद होते ही प्रभु का मुखारविन्द भी बंद हो गया।

'हनुमानजी ने प्रभु के युगल चरणों में अपना मस्तक रख दिया और वे अबोध शिशु की भाँति सिसकने लगे।

माता सीता ने हनुमानजी को अतिशय स्नेह से कहा– 'बेटा हनुमान! अब प्रभु की सारी सेवा तुम्हीं किया करो। तुम्हारी सेवा में कभी कोई किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा।'

सकलगुणनिधान सरलतम हनुमानजी ने जगज्जननी जानकी के परम पावन चरणों में सिर रख दिया और अपने आँसुओं से उनका प्रक्षालन करने लगे।

निखिलभुवनेश्वरी माता सीता का शाश्वत शान्तिप्रदायक स्नेहपूर्ण करकमल स्वतः हनुमानजी के मस्तक पर चला गया।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू

भावुक भक्तों और कथावाचकों द्वारा कही जाने वाली यह तीसरी कथा भी मनोरञ्जक तो है ही, इससे भगवान् श्रीराम के नाम की महिमा भी प्रकट होती है और यह भी विदित होता है कि श्रीराम नाम-प्रेमी हनुमानजी अपने आराध्य के नाम जापक की रक्षा के लिए प्रभु श्रीराम का अमोघ शर भी झेल लेने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। अत्यन्त सक्षेप मे कथा इस प्रकार है–

एक बार हनुमानजी ने अपने प्रभु श्रीरघुनाथ जी से (राजभोग के अनन्तर) अपनी माता अञ्जना के दर्शनार्थ जाने

की आज्ञा माँगी। प्रभु ने उन्हें सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी।

हनुमानजी अपनी माता के दर्शनार्थ जाने वाले थे, उसी समय काशी-नरेश श्रीरघुनाथ जी के दर्शनार्थ आ रहे थे। मार्ग में उनसे देवर्षि नारद मिल गये। काशी-नरेश ने देवर्षि के चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

'तुम कहाँ जा रहे हो ?' नारदजी ने पूछ लिया।

'प्रभो ! मैं परम प्रभु श्रीराम के दर्शनार्थ उनकी राजसभा में जा रहा हूँ।' काशी नरेश का उत्तर सुनते ही देवर्षि ने पूछा—'मेरा एक कार्य करोगे ?'

'धरती पर ऐसा कौन पुरुष है जो आपकी आज्ञा के पालन के लिए तुरन्त न दौड़ पड़े।' नरेश ने तुरन्त कहा—'आप आज्ञा प्रदान करें।'

कुछ मुस्कुराते हुए नारदजी ने नरेश से कहा—'तुम राजसभा में भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरणकमलों में श्रद्धा भक्तिपूर्वक प्रणाम तो अवश्य करना, किन्तु उन्हीं के समीप सिंहासन पर बैठे वयोवृद्ध तपस्वी विश्वामित्रजी की उपेक्षा कर देना। उन्हें प्रणाम मत करना।'

'ऐसा क्यों भगवन् !' नरेश ने प्रश्न किया, तब नारदजी ने उत्तर दिया—इस 'क्यों' का उत्तर पीछे मिल जायगा।''

'नारायण हरि !' नारदजी चले गये और काशी नरेश श्रीराघवेन्द्र की राजसभा में पहुँचे। उन्होंने देवर्षि के आदेशानुसार श्रीरघुनाथजी के चरणों में अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, किन्तु महर्षि विश्वामित्र की सर्वथा उपेक्षा करके बैठ गये।

काशी नरेश की उपेक्षा से महर्षि विश्वामित्र के हृदय पर चोट पहुँची, किन्तु वे राजसभा में चुप रहे। पीछे उन्होंने सीता-

पति श्रीराम से कहा – 'श्रीराम ! तुम मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते हो, इसलिए तुम्हारी राजसभा में तुम्हारे उपस्थित रहते मर्यादा की अवहेलना उचित नहीं।'

'मेरे रहते कब और कहाँ मर्यादा का उल्लंघन हुआ, प्रभो !' आश्चर्य के साथ प्रभु ने पूछा–'आप कृपापूर्वक बतलाने का कष्ट करें।'

'आज ही राजसभा में काशी-नरेश ने तुम्हारे चरणों में तो प्रणाम किया, किन्तु उसने मेरी सर्वथा उपेक्षा कर दी।' 'यह कदापि उचित नहीं।' विश्वामित्रजी जैसे अशान्त हो गये थे–

'मेरी राजसभा में, मेरे ही सम्मुख आपकी उपेक्षा ? यह तो मेरा भयानक तिरस्कार है।' मर्यादापुरुषोत्तम अवधनरेश की भृकुटि वक्र हो गयी। उन्होंने प्रतिज्ञा की–'आपके समक्ष मैं अपने तीन तीक्ष्णतम शर पृथक् रख दे रहा हूँ। इन तीन शरों से आज संध्या तक काशिराज मारा जायगा।'

'इन तीन शरों से आज संध्या तक काशिराज मारा जायगा।'–परम पराक्रमी सत्यव्रती रावणारि की यह प्रतिज्ञा वायु-वेग से सर्वत्र फैल गयी। काशी-नरेश ने सुना तो उनका कण्ठ शुष्क हो गया। जीवन से सर्वथा निराश, वे दौड़े देवर्षि के समीप और उनके चरणों में गिरकर गिड़गिड़ाते हुए बोले– 'भगवन् ! सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम ने आज सायंकाल तक मुझे मार डालने की प्रतिज्ञा की है।'

'प्रतिज्ञा तो मैंने भी सुनी है।' देवर्षि नारद ने तटस्थ की भाँति उत्तर दिया–'और श्रीराम की प्रतिज्ञा ! सर्वविदित है कि रघुकुल में प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिए प्राण तक होम देने में आपत्ति नहीं होती।'

प्रभो ! मैंने तो आपके आदेश का पालन किया था।'

काशिराज रो पड़े—'जैसे भी हो, आप मेरा प्राण बचाइये।'

'चिन्ता की बात नहीं।' श्रीनारदजी ने काशी-नरेश को समझाया—'मृत्यु तो निश्चित होती है। वह किसी प्रकार टलती नहीं। यदि भगवान् श्रीराम के शर से प्राणपखेरु उड़ जायें तो निश्चय ही जीवन सफल हो जाय, किन्तु तुम एक काम करो।'

नारदजी ने काशी-नरेश से धीरे-धीरे कहा—'तुम हनुमान जी की माता अञ्जना के समीप जाकर उनके चरण पकड़ लो। जब वे चरण छुड़ाने लगें, तब तुम अपनी रक्षा के लिए उनसे वचन ले लेना। जब तक वे तीन बार तुम्हारी रक्षा का वचन न दे दें, तब तक तुम उनके चरण पकड़े रहना। बस, तुम्हारा काम बन जाएगा।'

परमपावन देवर्षि के चरणों में प्रणाम करने की भी काशी-नरेश को सुधि न रही। वे भागे सीधे माता अञ्जना के यहाँ। माता अञ्जना बैठी हुई भगवन्नाम का जप कर रही थीं। रोते-कलपते काशिराज माता के चरणों पर गिर पड़े। उनके चरणों को पकड़कर उन्होंने कहा—'माँ! मेरी रक्षा करो। आज सायं-काल तक एक समर्थ व्यक्ति ने मुझे मार डालने का संकल्प किया है। तुम्हारे अतिरिक्त मेरा प्राण और कोई नहीं बचा सकता। रक्षा करो, माँ! रक्षा करो!'

'किसने और क्यों तुझे आज संध्या के पूर्व ही मार डालने का प्रण कर लिया है?' माता ने प्रश्न किया तो काशिराज और क्रन्दन करने लगे। बोले—'माँ! तुम मेरी रक्षा का वचन दे दो, अन्यथा मै अभी तुम्हारे चरणों में ही प्राण-त्याग कर दूंगा।'

'मेरे रहते तेरा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा।'

वात्सल्यमयी सरल जननी ने कह दिया—'मैं तेरी प्राण-रक्षा का वचन देती हूँ।'

फूट-फूटकर रोते हुए नरेश ने अधीर होकर पुनः प्रार्थना की—'माँ ! मुझे संतोष नहीं हो रहा है। मेरे विश्वास के लिए तुम यही बात तीन बार कह दो।'

'मैं तेरी प्राण-रक्षा का वचन देती हूँ।' सर्वथा सरल दयामयी जननी ने तीन बार कहते हुए पूछा—'अच्छा, अब तो बता, तुझे मारने की किसने प्रतिज्ञा की है ?'

'भगवान् श्रीराम ने।' नरेश ने उत्तर दिया—'उन्होंने आज सायंकाल तक मेरे वध की प्रतीज्ञा की है और इसके लिये उन्होंने अपने तीन तीक्ष्ण वाण भी निकालकर अलग रख लिये है।'

'श्रीरघुनन्दन की प्रतीज्ञा कैसे अन्यथा हो सकती है ?' माता अञ्जना चिन्तित हो गयीं। बोलीं—'पर मैंने तुझे वचन दिया है, अतः प्रयत्न तो करूँगी ही।'

उसी समय हनुमान जी ने वहाँ पहुँचकर माता का चरण-स्पर्श किया। आशीर्वाद देती हुई माता ने कहा—'बेटा ! तुम ठीक समय पर आये। अभी-अभी मैं एक आवश्यक कार्य से चिन्तित होकर तुम्हारा स्मरण कर रही थी। वह कार्य हो जाय तो मेरा मन हल्का हो जाय।'

'आज्ञा दीजिये, माताजी !' हनुमानजी ने कहा—'आपका कार्य करने के लिये मैं प्रतिक्षण प्रस्तुत हूँ।

'पर काम तो कठिन है, बेटा ! इसी कारण मैं चिन्तित हो गयी हूँ।' माता अञ्जना के वचन सुनकर हनुमान जी ने उन्हे आश्वस्त करने के लिये कहा—'आपकी कृपा से आपका पुत्र विद्या-बुद्धि, बल-पौरुष और पराक्रम से ही सम्पन्न नही, उसपर

निखिल भुवनपति श्रीरघुनाथ जी की अपार करुणा की वृष्टि भी निरन्तर हो रही है। आप आज्ञा प्रदान करें।'

'यह सब कुछ मैं जानती हूँ, मेरे लाल! किंतु काम अत्यन्त कठिन है, इसलिये कहने में झिझक रही हूँ। माता ने कहा–'किन्तु उसकी चिन्ता भी मुझे सता रही है।'

'माता जी! आपके पवित्रतम चरणों के सम्मुख मैं एक बार नहीं, तीन बार प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपकी आज्ञा मिलने पर काम चाहे जितना कठिन होगा, मै उसे अवश्य पूर्ण कर आपकी चिन्ता दूर कर दूँगा।' हनुमान जी ने अपनी जननी के सम्मुख यों तीन बार कहा।

'तुमसे मुझे यही आशा थी और ऐसा ही विश्वास था बेटा!' माता अञ्जना ने हनुमान के बल, पराक्रम और उनकी मातृ-भक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा–'बेटा! मैंने काशीनरेश को उसकी प्राण-रक्षा का वचन दे दिया है। आज सायंकालतक श्रीरघुनन्दन ने उसका वध करने की प्रतिज्ञा कर ली है और इसके लिये उन्होंने तीन तीक्ष्ण शर भी निकाल कर रख लिये हैं।'

माता अञ्जना अपने पुत्र का मुँह देखने लगीं। हनुमान जी गम्भीर हो गये थे बोले–'मेरे प्रभु श्रीराम की प्रतिज्ञा···।'

'पर बेटा! मैं काशिराज को वचन दे चुकी हूँ।' माता ने पुत्र को विचारमग्न देखकर कहा-'और तुमने मुझे तीन बार वचन दिया है। शरणागत की रक्षा धर्म है, बेटा! और धर्मपालन तो·····।'

'कुछ करूँगा ही, माँ!' हनुमान जी ने माता के चरणों में मस्तक रखकर कहा–'आज सायंकाल तक की ही अवधि है। अतएव मुझे शीघ्र जाने की अनुमति दीजिये।'

माता की आज्ञा प्राप्त होते ही हनुमानजी काशी नरेश के साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजा से कहा तुम सकल कलुषनाशिनी परम पावनी सरयू मे कमर तक जल मे खडे होकर अविराम 'राम-राम' का जप करते रहो।

नरेश ने पवनपुत्र के आदेश का पालन करना प्रारम्भ किया और इधर हनुमानजी तुरत श्रीराम के समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीराम के चरणों में प्रणाम कर उनके दोनों चरण पकड़ लिये। बोले—'स्वामी ! आज मै आपसे एक वर की याचना करना चाहता हूँ।'

यह कैसे सम्भव है कि सर्वथा निःस्पृह और अत्यन्त संकोची हनुमानजी कभी कुछ मागें और प्रभु अस्वीकार कर दें श्रीरामजी ने उत्साहपूर्वक कहा—'तुम्हारे लिये अदेय कुछ नहीं, हनुमान ! तुम तो कभी कुछ चाहते ही नही। मै तो सदा चाहता हूँ कि तुम मुझसे कुछ चाहो, कुछ माँगो, पर मेरी इस इच्छा की पूर्ति तुमसे नही हो पाती। बोलो, तुम क्या चाहते हो ?'

प्रसन्न होकर हनुमान जी ने प्रभु का चरण सहलाते हुए कहा—'करुणामय स्वामी ! चाहता हूँ कि आपके अमित महिमामय नाम का जप करने वाले की सदा रक्षा किया करूँ और मेरी उपस्थिति में आपके नाम जापक पर कभी, कही, कोई किसी प्रकार प्रहार न करे। यदि दुर्भाग्यवश निखिल सृष्टि का सर्वसमर्थ स्वामी भी प्रहार कर बैठे तो उसका भी प्रहार व्यर्थ सिद्ध हो जाय।'

दयामूर्ति भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्र जी ने तुरंत आशीर्वाद दिया—'तुम नाम-जापककी रक्षा करनेमें सर्वत्र सदासमर्थ होओगे

और तुम्हारी उपस्थिति में नाम-जापक पर किया गया अमोघ प्रहार भी व्यर्थ सिद्ध होगा।'

'जय श्री राम!' हनुमानजी ने प्रभु-चरणों पर मस्तक रख दिया और तुरंत सरयू तट पर पहुंचे। वहां वे गदा तानकर अत्यन्त सावधानी से खड़े हो गये और काशी नरेश से बोले—'तुम बिना रुके निरन्तर 'राम-राम' रटते रहो।'

स्थिति विचित्र हो गयी। एक ओर सर्वाधार स्वामी श्रीरामजी की सांयकाल तक नरेश के वध की प्रतिज्ञा और दूसरी ओर अनन्य भक्त हनुमानजी का उनकी रक्षा के लिये परिकरबद्ध हो जाना। राजा सरयू जल में खड़े होकर प्राण-भय से अनवरतरूप से 'राम नाम' का जप कर रहे थे और वर प्राप्त हनुमान जी उनकी रक्षा के लिये गदा ताने खड़े थे। बात विद्युद्गति से फैल गई। अयोध्यावासी समस्त बाल-वृद्ध-युवा नर-नारी कौतूहलवश सरयू-पुलिन पर पहुंचे। प्रभु और सेवक के प्रतिज्ञा पालन का दृश्य देखने के लिये वहां विशाल जन-समुदाय एकत्र हो गया।

सायंकाल हो चला था। यह समाचार सत्यव्रती श्रीरघुनाथजी को भी मिला। भगवान् श्रीराम कुपित होगये। उन्होंने अपने प्रण का पालन करने के लिये पृथक रखे गये तीन शरों में से एक शर उठाया और उसे अपने विशाल धनुष पर रखकर खींचा और शर छोड़ दिया। शर अत्यन्त शीघ्रता से नरेश के समीप पहुंचा, किंतु उन्हें 'राम-नाम का जप करते देखकर वह उनका मस्तक छिन्न नहीं कर सका। वह नरेश के चुप होने की प्रतीक्षा करता रहा, किन्तु हनुमान जी के द्वारा दीक्षित नरेश प्राण भय से अविराम पूरी शक्ति लगाकर 'राम-राम' जपते ही जा रहे थे।

निराश होकर बाण प्रभु के समीप लौट आया। उसने निवेदन किया—'प्रभो ! नाम जापक की रक्षा के लिये आपने मारुति को वर प्रदान किया है और उस पर सभी प्रहार व्यर्थ सिद्ध होने की आपकी वाणी है। वह राजा निरन्तर आपके नाम का जप कर रहा है। और वज्राङ्गबली हनुमान गदा ताने उसकी रक्षा में सन्नद्ध ह। इस कारण मैं विवश होकर लौट आया।'

भुवनपावन लीलावपु श्रीराम का क्रोध बढा। उन्होंने दूसरा शर धनुष पर चढाकर छोडा। वह वायु वेग से चला और काशी नरेश का प्राण हरण करने के लिये उनके समीप पहुँचा भी, किंतु अब तो राजा आदेशानुसार सीतासहित नाम 'सीता राम-सीताराम' का जप कर रहे थे।

दूसरे शर को भी नरेश के कण्ठ का स्पर्श करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। विवशत वह भी प्रभु के समीप लौट आया। उसने भी राजा के 'सीताराम-सीताराम' रटने और गदाधर हनुमानजी के द्वारा उनकी रक्षा का वृत्तान्त सुना दिया।

'मै स्वय सरयू तट पर चलकर उस धृष्ट नरेश और हनुमान को मार डालता हूँ।' सत्यप्रतिज्ञ भगवान् श्रीराम अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपना विशाल धनुष तथा तीसरा बाण लिया और सरयू तट की ओर तीव्रगति से चल पडे।

उधर हनुमान जी ने सोचा—'प्रभु अपने मगलमय नाम की विरद रखते हैं, भक्तो के लिये वे अपना सर्वस्व त्याग देते हैं। भक्त उन्हे प्राणप्रिय हैं।' अतएव उन्होंने राजा से कहा—'अब तुम भगवती सीता और प्रभु नाम के साथ मेरे नाम का भी जप करना शुरू कर दो।' राजा 'जय सियाराम जय जय हनुमान' का जप करने लगे। अत्यधिक देर से जोर-२ से जप

करते-करते नरेश थक गये थे और उनकी वाणी लड़खड़ाने लगी थीं। वे तो मृत्यु भय से अत्यन्त साहसपूर्वक जैसे-तैसे नाम-जप चला रहे थे, किंतु मातृ-भक्त हनुमानजी अपने एक अंश से काशिराज के कण्ठ में प्रविष्ट होकर स्वयं 'जय सियाराम जय जय हनुमान' का अनवरतरूप से जप करने लगे।

क्रोधारुणलोचन श्रीरामको शर-संधान किये आते देखकर वसिष्ठ जी व्याकुल हो गये। उन्होंने सोचा—'भगवान् श्रीराम की प्रतिज्ञा अन्यथा नहीं हो सकती और कहीं उन्होंने नरेश के साथ हनुमानजी को भी मार डाला तो महान् अनर्थ हो जायगा तब हनुमानजी के समीप पहुँचकर वसिष्ठजी ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया 'पवनकुमार! श्रीरघुनाथ जी तुम्हारे सर्वस्व हैं। उनकी प्रतीज्ञा पूरी हो जाने दो। दिनान्त समीप होने के कारण उनका क्रोध बढ़ता जा रहा है। यह राजा तो उन श्री राम के पावन शर-स्पर्श से जन्मजरा मरण से सदा के लिये मुक्त हो जायगा। एक सेवक के लिये अपने स्वामी के सम्मुख तनकर खड़ा हो जाना तुम्हारे जैसे सेवक के लिये कदापि उचित नहीं।'

'गुरुदेव! मैं त्रिकाल में भी अपने सर्वसमर्थ प्रभु के समीप तनकर खड़ा होने की कल्पना भी नहीं कर सकता।' हनुमान जी ने अत्यन्त विनयपूर्वक उत्तर दिया—'मैं तो अपने प्रभु के नाम और उनके वरदान की रक्षा के निमित्त प्राणाहुति देने के लिये प्रस्तुत हो गया हूं। मेरा इससे अधिक सौभाग्य और क्या होगा कि मैं अपने प्राणाधिक प्रभु श्री राम के नाम एवं उनके वरदान की रक्षा में उनके ही करकमलों से छोड़े हुए उन्हीं के शराघात से शरीर त्यागकर उनमें ही विलीन हो जाऊँ।

'इन ज्ञानमूर्ति को विचलित करना सम्भव नहीं।' वसिष्ठ

जी ने देखा–श्री रघुनन्दन सरयू तट पर पहुँचना ही चाहते हैं। महर्षि विश्वामित्र भी वहाँ उपस्थित होकर भगवान् और भक्त की यह लीला देखकर चकित और चिन्तित हो रहे थे। तब वसिष्ठजी ने काशीराज से कहा–'नरेश! तुम शीघ्र ही महर्षि विश्वामित्र के चरण पकड़ लो। वे सहज दयालु हैं।'

'जय सियाराम जय जय हनुमान।' का जप करते हुए काशिराज ने दौड़कर महर्षि विश्वामित्र के दोनों चरण पकड़ लिये। उनके अश्रुओं से महर्षि के चरण आर्द्र हो गये। वे रोते हुए कहते ही जा रहे थे–'जय सियाराम जय जय हनुमान।'

महर्षि द्रवित हो गये। उन्होंने शर-संधान किये क्रुद्ध श्री राघवेन्द्र से कहा–'श्रीराम! काशी नरेश के अपराध का प्रायश्चित हो गया। मैंने इसे क्षमा कर दिया, अब तुम भी अपना अमोघ शर धनुष से उतारकर त्रोण में रख लो।'

महर्षि के संतुष्ट होते ही श्रीराम का क्रोध स्वतः शान्त हो गया। उन्होंने गुरु की आज्ञा का पालन किया। तीसरा बाण धनुष से त्रोण में आ गया। राजा की प्राण रक्षा तो हुई ही, भगवान् के सम्मुख भक्त हनुमान विजयी हुए।

इस समाचार से माता अञ्जना की प्रसन्नता की सीमा न रही।

परमात्म तत्त्वोपदेश की प्राप्ति

जब प्रकृति से परे परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय और निखिल सृष्टि के स्वामी, मर्यादापुरुषोत्तम, कोटिसूर्यसमप्रभु भगवान् श्रीराम राज्याभिषेक हो जाने पर वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षियों से घिरे भगवती सीता के साथ सिंहासनासीन

हुए, उस समय भोगेच्छारहित, प्रतिदानशून्य, परम सेवा के साकार विग्रह अञ्जनानन्दवर्धन पवनकुमार को करबद्ध अपनी ओर अनिमेष दृष्टि से निहारते हुए देखकर श्रीराघवेन्द्र ने अपनी हृदयाधिकारिणी प्रियतमा भगवती सीता से कहा— 'विदेहनन्दिनी ! यह हनुमान हम दोनों में अनन्य भक्ति रखने के कारण सर्वथा निष्पाप और ज्ञान प्राप्ति का योग्यतम पात्र है। अतः इसे मेरे तत्व का उपदेश प्रदान करो।'

अपने स्वामी परम प्रियतम का आदेश प्राप्त कर सृष्टिस्थितिसंहारकारिणी जनकनन्दिनी शरणागत परम पावन आञ्जनेय को भगवान् श्रीरामका निश्चित तत्व बतलाने लगीं—

'वत्स हनुमान ! तुम श्रीराम को साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो; ये निःसंदेह समस्त उपाधियों से रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियों के अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरंजन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं। और मुझे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करने वाली मूल प्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी संनिधि मात्र से इस विश्व की रचना किया करती हूँ। तो भी इनकी संनिधि मात्र से की हुई मेरी रचना को बुद्धि-हीन लोग इनमें आरोपित कर लेते हैं।'

इसके अनन्तर जगज्जननी जानकी ने भगवान् श्रीराम के प्राकट्य से लेकर राज्याभिषेक तक की समस्त परमपावनी लीला का वर्णन करते हुए कहा -

'इस प्रकार ये समस्त कर्म यद्यपि मेरे ही किये हुए हैं तो भी अज्ञानी लोग उन्हें निर्विकार सर्वात्मा भगवान् श्रीराम में आरोपित करते हैं। ये श्रीराम तो (वास्तव में) न चलते हैं, न ठहरते हैं, न शोक करते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं

और न कोई अन्य क्रिया ही करते हैं। ये आनन्दस्वरूप, अविचल और परिणामहीन है, केवल माया के गुणों से व्याप्त होने के कारण ही ये वैसे प्रतीत होते हैं।'

इसके अनन्तर भक्तप्राणधन लोकपति श्रीराम अपने अनन्य भक्त पवनकुमार को स्वयं उपदेश देने लगे—

(श्रीराम-हृदय)

'मै तुम्हे आत्मा, अनात्मा और परमात्मा का तत्त्व बताता हूँ, (सावधान होकर) सुनो। जलाशय मे आकाश के तीन भेद स्पष्ट दिखायी देते है एक महाकाश, दूसरा जलावच्छिन्न आकाश और तीसरा प्रतिबिम्बकाश। जैसे आकाश के ये तीन बड़े-बड़े भेद दिखायी देते हैं, उसी प्रकार चेतन भी तीन प्रकार का है—एक तो बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन (जो बुद्धि में व्याप्त है), दूसरा जो सर्वत्र परिपूर्ण है और तीसरा जो बुद्धि मे प्रतिबिम्बित होता है जिसको आभास चेतन कहते है। इनमे से केवल आभास-चेतन के सहित बुद्धि मे ही कर्तृत्व है अर्थात् चिदाभास के सहित बुद्धि ही सब कार्य करती है। किन्तु अज्ञजन भ्रान्तिवश निरवच्छिन्न, निर्विकार, साक्षी आत्मा में कर्तृत्व और भोक्तृत्व का आरोप करते हैं अर्थात् उसे ही कर्ता-भोक्ता मान लेते हैं। (हमने जिसे जीव कहा है, उसमे) आभास-चेतन तो मिथ्या है (क्योकि सभी आभास मिथ्या ही हुआ करते है), बुद्धि अविद्याका कार्य है और परब्रह्म परमात्मा वास्तव मे विच्छेद रहित है, अत उसका विच्छेद भी विकल्प से ही माना हुआ है। (इसी प्रकार उपाधियों का बाध करते हुए) साभास अहरूप अविच्छिन्न चेतन (जीव) को 'तत्त्वमसि' (तू वह है) आदि

महावाक्यों द्वारा पूर्ण चेतन (ब्रह्म) के साथ एकता बतलायी जाती है। जब महावाक्य द्वारा (इस प्रकार) जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, उस समय अपने कार्यों सहित अविद्या नष्ट हो ही जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं। मेरा भक्त इस उपर्युक्त तत्त्व को समझ कर मेरे स्वरूप को प्राप्त होने का पात्र हो जाता है, पर जो लोग मेरी भक्ति को छोड़कर शास्त्र रूप गढ़े में पड़े भटकते रहते हैं, उन्हें सौ जन्म तक भी न तो ज्ञान होता है और न मोक्ष ही प्राप्त होता है। हे अनघ ! यह परम रहस्य मुझ आत्मस्वरूप श्रीराम का हृदय है और साक्षात् मैंने ही तुम्हें सुनाया है। यदि तुम्हें इन्द्रलोक के राज्य से भी अधिक सम्पत्ति मिले तो भी तुम इसे मेरी भक्ति से हीन किसी दुष्ट पुरुष को मत सुनाना।'

परम कृतार्थ भक्तराज हनुमान ने अपने परमाराध्य प्राणधन सीतावल्लभ श्रीराम के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया और भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभु राघवेन्द्र का त्रैलोक्यपावन स्नेहमय कर-कमल सहज ही उनके सिर को स्पर्श करने लगा।

श्रीरामाश्वमेध के अश्व के साथ

कुछ समय बाद धर्म के साक्षात् विग्रह महामुनि अगस्त्य जी की सत्प्रेरणा से भगवान् श्रीराम ने अश्वमेध-यज्ञ करने का संकल्प किया। महर्षि वसिष्ठ ने अत्यन्त पुष्ट, अरुण मुख, पीताभ पुच्छ, अत्यन्त शुभ्र श्यामकर्ण, परम सुन्दर एवं समस्त लक्षणों से लक्षित अश्व का सविधि पूजन करवाया। तदुपरान्त उन्होंने अश्व के चन्दन-चर्चित, कुंकुम आदि गन्धों से युक्त उज्ज्वल ललाट पर अत्यन्त चमकता हुआ स्वर्ण-पत्र बाँध दिया। उस

पर राजाधिराज भगवान् श्रीराम के यशोगान के साथ अश्व के छोड़ने का उद्देश्य अंकित था। उस पत्र में इसका भी स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया था कि 'जिन नरेशों के मन में हमसे अधिक शक्ति का अभिमान हो, वे इस रत्नालंकारों से विभूषित अश्व को पकड़ने का साहस करें। हम उनके हाथ से इस अश्व को बलात् छुड़ा लेंगे।'

भगवान् श्रीराम ने अश्व की रक्षा का दायित्व अपने भाई शत्रुघ्न को सौंप कर अपने प्राणप्रिय, शम्भुतेज अनिलात्मज से कहा—'महावीर हनुमान ! मैंने तुम्हारे ही प्रसाद से यह अकण्टक राज्य प्राप्त किया है। हम लोगों ने मनुष्य होकर भी जो महान् जलधि को पार किया तथा मेरी प्राणप्रिय वैदेही के साथ मेरा जो मिलाप हुआ, यह सब कुछ मैं तुम्हारे ही बल का प्रभाव समझता हूँ। मेरी आज्ञा से तुम भी सेना के रक्षक होकर जाओ। मेरे भाई शत्रुघ्न की तुम्हे मेरी ही भाँति रक्षा करनी चाहिए। महामते ! जहाँ-जहाँ भाई शत्रुघ्न की बुद्धि विचलित हो, वहाँ-वहाँ तुम इन्हे समझा-बुझाकर कर्त्तव्य का ज्ञान कराना।'

अपने परम प्रभु भगवान् श्रीराम की आज्ञा पाते ही समरप्रिय अंजनानन्दवर्धन पुलकित हो गये। उन्होंने यात्रा के लिए उद्यत होकर अपने आराध्य के लोकपावन चरणकमलों में अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। भगवान् श्रीराम के आदेशानुसार कालजित् नामक सेनापति के साथ भरत-कुमार पुष्कल और जाम्बवान् के साथ अंगद, गवय, मैन्द, दधिमुख, वानरराज सुग्रीव, शतबलि, अक्षिक, नील, नल, मनोवेग तथा अधिमन्ता आदि वीराग्रणी वानर भी अश्व के पीछे चलने के लिए ..त हो गये। फिर श्रीराघवेन्द्र के श्रेष्ठ मन्त्री सुमन्त्र के परामर्श के अनुसार शस्त्रास्त्र में निपुण, महान् विद्वान्, धनुर्धर

तथा परम पराक्रमी वीरवर प्रतापाग्रय, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उग्राश्व और शस्त्रवित् कवच एवं शिरस्त्राण से सुसज्जित अपने-अपने आयुध धारण कर चतुरङ्गिणी सेना के साथ महायज्ञ सम्बन्धी घोड़े को आगे करके उल्लासपूर्वक चले। उस समय अश्व की रक्षा में चलने वाले प्रत्येक योद्धा के मन और प्राण उत्साह से भरे थे। वे सभी हर्षमग्न थे। ऐसे रथी, हयारूढ़ एवं गजारोही शूरवीरों से सम्पन्न उस विशाल वाहिनी का सौन्दर्य अत्यन्त अद्‌भुत था।

भगवान् श्रीराम की अजेय चतुरङ्गिणी सेना का सर्वत्र सादर अभिनन्दन होता था। श्रीरामानुज शत्रुघ्न, पुष्कल तथा पवनकुमार के दर्शन कर राजे-महाराजे अपना जीवन सफल समझते थे। इस प्रकार श्रीरामाश्वमेध के अनुपम सुन्दर अश्व के साथ दशरथनन्दन शत्रुघ्न की विशाल वाहिनी पयोष्णी नदी के तट पर पहुँच कर द्रुतगति से आगे चलने लगी। कपिश्रेष्ठ हनुमान के साथ शत्रुघ्न तथा पुष्कल अपने समस्त वीरों के साथ भाँति-भाँति के आश्रम देखते तथा वहाँ जगत्पावन श्रीरघुनाथ जी के गुणगान सुनते हुए यात्रा कर रहे थे। उस समय उन्हें चतुर्दिक् मुनियो की यह कल्याणकारिणी वाणी सुनायी पड़ती थी—'यह यज्ञ का अश्व चला जा रहा है, जो श्रीहरि के अंशावतार श्रीशत्रुघ्नजी के द्वारा सब ओर से सुरक्षित है। भगवान् का अनुसरण करने वाले वानर तथा भगवद्‌भक्त भी उसकी रक्षा कर रहे हैं।'

निरन्तर भक्ति से प्रभावित रहने वाली चित्तवृत्तियों वाले महर्षियों के इन वचनों से प्रसन्न होते हुए सुमित्रानन्दन शत्रुघ्न मनु-पुत्र शर्याति के महान् यज्ञ में इन्द्र का मान भङ्गकर अश्विनी-कुमारों को यज्ञ का भाग देने वाले, तपस्या और योगबल से

सम्पन्न भृगुपुत्र महर्षि च्यवन के पावनतम आश्रम में पहुँचे। वैरशून्य जन्तुओं से भरा हुआ वह आश्रम सिद्ध तपस्वियों से सुशोभित था।

सुमित्रानन्दन शत्रुघ्न ने तपस्या के मूर्तिमान् स्वरूप महर्षि च्यवन के सम्मुख अत्यन्त विनयपूर्वक अपना परिचय देते हुए उनके चरणों में प्रणाम किया।

महर्षि च्यवन ने शत्रुघ्न को यशस्वी होने का आशीर्वाद प्रदान करते हुए समीपस्थ मुनियों से कहा—'ब्रह्मर्षियो ! यह आश्चर्य की बात देखो, जिनके नाम का स्मरण और कीर्तन आदि मनुष्य के समस्त पापों का नाश कर देते है, महान् पातकी और परस्त्री-लम्पट पुरुष भी जिनका नाम-स्मरण करके आनन्द पूर्वक परमगति को प्राप्त होते हैं, भगवान् श्रीराम भी यज्ञ करने वाले हैं। जिह्वा वही उत्तम है, जो श्री रघुनाथजी के नामों का आदर के साथ कीर्तन करती है। जो इसके विपरीत आचरण करती है, वह तो साँप की जीभ के समान है। आज मुझे अपनी तपस्या का फल प्राप्त हुआ है; क्योंकि अब मैं उन निखिल सृष्टिपति परम करुणामय प्रभु के अनूप रूप का दर्शन प्राप्त करूँगा। उनके निखिलभुवन पावन चरणों की रज से अपने शरीर को तथा उनकी अत्यन्त विचित्र वार्ताओं का वर्णन कर अपनी वाणी को पवित्र कर लूंगा।'

कल्याणमूर्ति श्रीराम के स्मरण से महर्षि च्यवन प्रेम में निमग्न हो गये। प्रेमाश्रुओं से पूर्ण महर्षि गद्‌गद कण्ठ से पुकारने लगे 'हे श्रीरामचन्द्र ! रघुनन्दन !! हे धर्म-मूर्ति !!! हे भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो !!! आप अपने पावनतम चरण कमलो की रज प्रदान कर मेरा संसार सागर से उद्धार कर दीजिये।'

'स्व' और 'पर' के ज्ञान से शून्य ध्यानमग्न महर्षि से सुमित्रा-तनय शत्रुघ्न ने अत्यन्त विनीत वाणी में निवेदन किया– 'मुनिराज ! निश्चय ही सर्वपूज्य श्री रघुनाथजी परम भाग्यशाली हैं, जो आप-जैसे तपस्वियों के हृदय में निवास करते हैं। ऋषिवर ! आप अपने चरणकमलों की पवित्र धूलि से हमारे यज्ञ को पवित्र करने की कृपा करें।'

दशरथनन्दन शत्रुघ्न के वचन सुन महर्षि च्यवन सपरिवार अयोध्या के लिये प्रस्थित हुए। उन्हे पैदल यात्रा करते देखकर पवनकुमार ने शत्रुघ्न से विनीत वाणी में कहा – 'स्वामिन् ! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो इन श्रीराम भक्त महर्षि को मै अपनी पुरी पहुँचा आऊँ।'

श्री रामानुज ने तुरंत उत्तर दिया 'हाँ, आप इन्हें पहुँचा आइये।'

बस, परम पराक्रमी हनुमानजी ने परिवार सहित महर्षि च्यवन को अपनी पीठ पर बैठाकर तुरन्त अयोध्या पहुँचा दिया। महर्षि की प्रसन्नता की सीमा न रही। समर्थ महर्षि का सहज आशीर्वाद मारुतात्मज ने प्राप्त कर लिया।

राजा सुबाहु पर कृपा

भगवान् श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के साथ दशरथ नन्दन शत्रुघ्न की सायुध चतुरङ्गिणी सेना चक्रांका नगरी के समीप पहुँची। उस सुन्दर एवं सम्पन्न नगरी के नरेश धर्मात्मा सुबाहु थे। एक पत्नीव्रती महाराज सुबाहु, सर्वसद्गुण-सम्पन्न, प्रजा-पालक, पराक्रमी, अनुपम योद्धा तो थे ही, क्षीराब्धिशायी लक्ष्मीपति विष्णु के अनन्य भक्त भी थे। वे दयामय विष्णु की मधुर-मनोहर लीला-कथा के अतिरिक्त अन्य वार्ता सुनना भी

नहीं चाहते थे। वे धर्मप्राण आदर्श नरपति सदा विष्णु-बुद्धि से भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा करते थे। परधर्म से विमुख वे महान् राजा स्वधर्म-पालन में सतत तत्पर रहते थे।

आखेट के लिये निकले हुए राजा के वीराग्रणी कुमार दमन की दृष्टि उस अश्व पर पड़ी। बस, वीरवर दमन ने अश्व को पकड़ लिया। शत्रुघ्न की विशाल वीर-वाहिनी के साथ राजकुमार दमन का भयानक संग्राम हुआ। सुबाहु नन्दन दमन के प्रबल पराक्रम एवं अद्भुत युद्ध कौशल को देखकर शत्रुघ्न की सेना चकित हो गयी। शत्रुघ्न की सेना का भीषण संहार हुआ, किन्तु भरतनन्दन पुष्कल के साथ भयानक युद्ध में वीरता के सजीव विग्रह दमन मूर्च्छित हो गये।

फिर तो वीराग्रणी राजा सुबाहु स्वयं सुवर्णभूषित रथ पर आरूढ़ होकर निकले। गदायुद्ध में प्रवीण राजा सुबाहु के भाई सुकेतु और उनके युद्धकला में निपुण पुत्र चित्राङ्ग और विचित्र भी अपने-अपने आयुध धारण कर युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुए।

राजा सुबाहु ने अपने वीरपुत्र दमन को रथ में बैठाकर अपनी सेना क्रौञ्च-व्यूह में खड़ी कर दी। उसके मुख के स्थान पर सुकेतु और कण्ठ की जगह चित्राङ्ग सावधान होकर खड़े हो गये। पंखों के स्थान पर नरेश के वीर पुत्र दमन और विचित्र डट गये। स्वयं वीरवर राजा सुबाहु पुच्छ-भाग में स्थित थे।

अत्यन्त भयानक युद्ध छिड़ गया। अतुल पराक्रमशाली राजकुमार चित्राङ्ग और भरत-पुत्र पुष्कल परस्पर एक दूसरे को पराजित करने का पूर्ण प्रयत्न कर रहे थे। राजकुमार चित्राङ्ग की वीरता एवं शस्त्र कौशल से वीरवर पुष्कल अत्यन्त चकित थे, किन्तु उनके तीक्ष्णतम शर से सुबाहु-पुत्र चित्राङ्ग का किरीट और कुण्डलों सहित मस्तक कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

क्षात्र-धर्म का पालन करते हुए वीरवर चित्राङ्ग के स्वर्ग-प्रयाण से राजा सुबाहु के भाई, उनके पुत्र और सहस्र-सैनिक अतिशय क्रुद्ध होकर भयानक युद्ध करने लगे स्वयं परम पराक्रमी श्रेष्ठ वीर धर्मात्मा सुबाहु भीषण युद्ध में तत्पर हो गये। उनके महान् संहार से पार्श्व भाग की रक्षा करने वाले अतुलित बल शाली वज्राङ्ग हनुमान उनकी ओर दौड़े। नखायुध महावीर पवन-पुत्र मेघ की भाँति विकट गर्जना कर रहे थे। महाराज सुबाहु ने अपने सम्मुख समरप्रिय अञ्जना नन्दन को देखते ही उनपर तीक्ष्णतम दस शरों से प्रहार किया, किन्तु महाशक्ति शाली वीरपुंगव हनुमान ने उन शरों को हाथ से पकड़कर उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया और तुरन्त उन्होंने राजा सुबाहु को रथ सहित अपनी लंबी पूंछ में लपेट लिया। हनुमान जी को रथ लेकर जाते हुए देखकर महाराज सुबाहु कपिश्रेष्ठ हनुमान पर बड़े वेग से तीक्ष्ण शरों की वर्षा करने लगे। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग राजा सुबाहु के शरों से विद्ध हो रहे थे और उनकी स्वर्ण-तुल्य विशाल देह पर जपापुष्प के तुल्य लाल-लाल रक्त-कण शोभा दे रहे थे। धर्मप्राण सुबाहु की इस धर्ममय अर्चना से मुदित होकर निखिल-पावन भगवान् श्रीराम के अनन्यतम प्रीतिभाजन भक्तोद्धारक हनुमान बड़े वेग से उछले और उन्होंने उत्तम योद्धाओं से परिवेष्टित परम भाग्यवान् राजा सुबाहु के विशाल वक्ष पर अपने चरणों से प्रहार किया। वातात्मा का भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाला पाद-प्रहार नरेश नहीं सह सके। वे मुख से रक्त वमन करते हुए धरती पर गिरकर मूच्छित हो गये।

सीता समेत श्रीराम पाद सेवा धुरंधर शिवपुत्र हनुमान का लोकपावन चरणस्पर्श! तत्क्षण चमत्कार हुआ। मूच्छिता-

वस्था में अमित धर्मानुरागी परम वैष्णव, वीरपुंगव नरेश सुबाहु ने देखा 'परमपावन साकेत ! वहाँ पुनीत सरयू के सुरम्य तट पर यज्ञ करने वाले कौसल्यानन्दन श्री रामचन्द्र जी श्रेष्ठ ब्राह्मणों से घिरे अलौकिक यज्ञ-मण्डल में विराजमान है। चतुर्मुख ब्रह्मादि देवगण तथा कोटि कोटि ब्रह्माण्डों के प्राणी उन पद्मपत्र लोचन प्रभु के सम्मुख बद्धाञ्जलि खड़े होकर उनका श्रद्धा भक्तिपूर्ण हृदय से स्तवन कर रहे हैं। नवनीरद वपु कमललोचन श्रीराम ने अपने हाथ में मृग का सींग धारण कर रखा है। नारद आदि देवर्षिगण वीणादि के मधुर तान पर सकल गुणागणनिलय दयामय प्रभुका सुयश गान कर रहे हैं। चारो वेद मूर्तिमान् होकर सीतापति श्रीराम की उपासना करते हैं। निखिल सृष्टि में सुन्दरतम श्रेष्ठ वस्तुओं को प्रदान करने वाले भवतापनिवारक करुणामूर्ति पूर्ण ब्रह्म भगवान् श्रीराम ही हैं।'

कृतार्थ जीवन राजा सुबाहु की मूर्च्छा दूर हुई तो उनके नेत्रों से आनन्दमय प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। उन्होंने तुरन्त अपने भाई तथा पुत्रों को युद्ध बन्द कर देने का संकेत किया। उन्होंने सबको बताया--'आज हमारा पुण्यमय दिवस है। आज मेरा सौभाग्य सूर्य उदित हुआ है। प्राचीनकाल की बात है। मै तत्त्वज्ञान की इच्छा से तीर्थों मे गया था। सौभाग्यवश मैं असितांग मुनि की सेवा मे पहुँच गया। वे वीतराग महात्मा मुझे दशरथनन्दन श्री राम को परब्रह्म परमात्मा एवं उनकी हृदयाधिकारिणी विदेहजा को चिन्मयी शक्ति के मूर्तिमान् विग्रह बताने लगे। संसार सागर मे तरने के लिए उन्हीं श्री सीताराम की उपासना का उपदेश देने लगे; किन्तु मुझे उनके वचनो पर विश्वास नहीं हुआ। 'अजन्मा का जन्म कैसे ?

अकर्ता का संसार में आने का प्रयोजन क्या ?' मेरा सहज संदेह था।

"महर्षि ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया 'नीच! तू श्री रघुनाथ जी के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता, फिर भी प्रतिवाद कर रहा है। उन्हें साधारण मनुष्य बताकर उनका उपहास कर रहा है, इस कारण तू तत्त्वज्ञान तो प्राप्त ही नहीं कर सकेगा, केवल उदर-पोषण में लगा रहेगा।"

"महामुनि के शाप भय से व्याकुल होकर मैंने उनके चरण पकड़ लिये। मुझे रोते देखकर दयामय मुनि ने कहा- 'राजन् ! जब तुम भगवान् श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के अश्व को पकड़ कर उनके यज्ञ में विघ्न उपस्थित करोगे, तब ज्ञान-मूर्ति सद्गति भुक्ति मुक्ति दाता हनुमान जी बड़े वेग से तुम्हारे वक्ष पर पाद प्रहार करेंगे। उन तत्त्व प्रकाशक पवननन्दन के स्पर्श से ही तुम्हें तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति होगी।'

महाराजा सुबाहु ने आगे कहा-"और आज उन दुर्मति नाशन परमपावन कृपामय श्रीराम दूत ने अपने लोक पावन चरणकमलों का प्रहार करके मेरे वक्ष से अपना पग स्पर्श करा दिया। आज मेरी बुद्धि शुद्ध हो गयी, मैं पवित्र हो गया और मेरा जीवन तथा जन्म सफल हो गया। मै ही नहीं, तुम सभी धन्य हो गये।"

भगवान् श्रीराम के अश्व के साथ प्रचुर समृद्धि सम्पन्न कोष, हाथी, घोड़े, वस्त्र, मोती तथा मूँगे आदि अगणित द्रव्य लेकर धर्मात्मा नरशिरोमणि सुबाहु विचित्र, दमन, सुकेतु तथा अन्यान्य शूर वीरों के साथ पैदल ही चले। भगवान् श्री राम के ध्यान एवं हनुमानजी की कृपा की स्मृति से उनका हृदय उपकृत एवं आनन्दमग्न था, उनकी वाणी अवरुद्ध हो

गयी थी; पर उनके नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाह चल रहा था।

उद्भट राजा सुबाहु के प्रेमपूर्ण आगमन का संवाद प्राप्त होते ही श्री रामानुज शत्रुघ्न उनसे बाँहे पसार कर मिले। अपना सर्वस्व समर्पित करने की कामना व्यक्त कर कुमार दमन के युद्धारम्भ के लिये क्षमा याचना करते हुए महाराज सुबाहु ने अधीर होकर पूछा—'भगवान् श्रीराम के त्रैलोक्यवन्दित चरण कमलों के अनन्य मधुकर भक्तानुरागी हनुमान जी कहाँ है? उन्हीं की कृपा से मुझ महामूढ़ को भवतापनिवारक पद्म पलाशलोचन परम प्रभु श्रीराम के दर्शन की तीव्रतम लालसा उत्पन्न हुई है।'

जब उन्होंने भक्तताप निवारक स्वर्णवर्ण प्रसन्नात्मा हनुमान जी को देखा तो उनके सुविलदाता चरणों पर गिर पड़े किन्तु विनीतात्मा महावीर हनुमान ने उन्हे बीच से ही उठाकर अपने अंक में भर लिया।

भक्त और भगवान्

धर्मप्राण महाराज वीरमणि देवनिर्मित देवपुर नामक अमित वैभव-सम्पन्न नगर के नरेश थे। पूर्वकाल में पवित्र क्षिप्रा तट स्थित महाकाल मन्दिर में उनके कठोर तपश्चरण से सन्तुष्ट होकर देवाधिदेव महादेव ने उन्हे वर प्रदान करते हुए कहा था—'देवपुर में तुम्हारा राज्य होगा और भगवान् श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के अश्व के आने तक तुम्हारी रक्षा के लिये मैं वहीं निवास करूँगा। देवपुर वासियों के घरों की दीवारें स्फटिक मणि की बनी हुई थीं। मणि माणिक्य एवं

अपरिमित धन से सम्पन्न देवपुर में समस्त भोग सदा सुलभ थे।

भगवान् श्रीराम के अश्वमेध का अश्व देवपुर के समीप पहुँचा ही था कि वीरवर वीरमणि के यशस्वी पुत्र रुक्मांगद ने उसे पकड़ लिया और जब महाराज वीरमणि ने सुना कि श्री राम के अनुज शत्रुघ्न की वाहिनी युद्ध के लिये बढ़ती चली आ रही है, तब उन्होंने सशस्त्र चतुरंगिणी सेना तैयार करने के लिये अपने प्रबल पराक्रमी सेनापति रिपुवार को आदेश दे दिया।

वीराग्रणी रिपुवार के सेनापतित्व में महाराज वीरमणि के वीर सैनिक तो कुछ ही देर में शस्त्रास्त्र से सजकर तैयार हो हो गये, उनके भाई वीरसिंह, भानजा बलमित्र तथा राजकुमार रुक्मांगद और शुभांगद युद्ध के लिये रथ पर आरूढ़ होकर प्रस्तुत हो गये। स्वयं शिव भक्त वीरवर महाराज वीरमणि भी अस्त्र शस्त्रों से भरे श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ होकर रणभूमि की ओर अग्रसर हुए।

भयानक युद्ध छिड़ गया। पवनपुत्र हनुमान् शत्रु पक्ष का संहार करते हुए पुष्कल और शत्रुघ्न की रक्षा का सदा ध्यान रखते थे। उनकी महाराज वीरमणि के भाई वीरसिंह से मुठभेड़ हो गयी। उनके तीक्ष्ण शरों से आकुल होकर हनुमान जी ने उनकी छाती में अपने वज्र के समान मुक्के से आघात किया। वीरसिंह वज्रांग हनुमान का वह प्रहार न सह सके और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। अपने चाचा को मूर्च्छित होते देख कर रुक्मांगद और शुभांगद दोनो हनुमान जी से भयंकर युद्ध करने लगे। महावीर हनुमान जी ने उन्हें रथसहित अपनी पूंछ में लपेट लिया और रथ को घुमाकर पृथ्वी पर इतने जोर से पटका कि वह तो ध्वस्त हो ही गया, राजकुमार भी मूर्च्छित

हो गये। इसी प्रकार बलमित्र भी रणस्थल में मूच्छित होकर धराशायी हो गये। महाराज वीरमणि ने वीर पुष्कल पर भयानक शरों की वर्षा की, किन्तु पुष्कल ने प्रतिज्ञा पूर्वक उन्हें तीन बाणों से आहत कर मूच्छित कर ही दिया।

अपने भक्तों को मूच्छित देखते ही स्वयं भगवान् शंकर युद्ध भूमि में उतर पड़े। उनके साथ उनके पार्षद और प्रमथगण भी शत्रुघ्न की सेना को तहस नहस करने में जुट गये। सर्वदेव शिरोमणि शिव के इच्छानुसार वीरभद्र पुष्कल से युद्ध किया। पुष्कल ने अतुल वीरता का परिचय दिया, किन्तु वीरभद्र ने पुष्कल के पैर पकड़ कर उन्हे वेग पूर्वक चारो ओर घुमाया और पृथ्वी पर पटक कर मार डाला। कुपित वीरभद्र ने अपने भयानक त्रिशूल से मृत पुष्कल का मस्तक भी काटकर धड़ से पृथक् कर दिया और फिर वे विकट गर्जना करने लगे।

पुष्कल की मृत्यु के सवाद से वीरवर शत्रुघ्न व्याकुल हो गये। अत्यन्त क्रुद्ध होकर भगवान् शकर से युद्ध करने लगे। शत्रुघ्न ने अतुल युद्ध किया, किन्तु भगवान् शिव ने शत्रुघ्न के वक्ष में एक अग्नि के समान तेजस्वी बाण भौंक दिया। शत्रुघ्न अचेत होकर वहीं गिर पड़े।

उस समय शत्रुघ्न की सेना में हाहाकार मच गया। यह दृश्य देखकर हनुमान जी ने तुरंत पुष्कल और शत्रुघ्न के शरीर को रथ मे सुलाया और उनकी रक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था कर स्वय प्रलयकर शकर से युद्ध करने के लिये वेगपूर्वक आगे बढे। हनुमानजी अपने पक्ष के योद्धाओ का उत्साह बढ़ाते और अपनी पूछ जोर-जोर से हिलाते हुए भयानक काल की भाँति सर्वलोक महेश्वर शिव के समीप पहुँचे उन्होने *कुपित होकर महादेव जी* से कहा 'रुद्र! मैने बहुधा ऐसा सुना है कि आप सदा श्री

रघुनाथ जी के चरणों का स्मरण करते रहते हैं, किन्तु आज आपको श्रीराम-भक्त का वध करने के लिए प्रस्तुत देखकर वे बातें मिथ्या सिद्ध हो गयीं। धर्म के प्रतिकूल आचरण करने के कारण मैं आपको दण्ड देना चाहता हूँ।'

परम पराक्रमी पवनकुमार के वचन सुनकर महेश्वर ने उनसे कहा—'कपिश्रेष्ठ! तुम वीरों में प्रधान और धन्य हो। तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य है। देव-दानव-वन्दित भगवान श्री रामचन्द्रजी ही मेरे हृदय-धन और स्वामी हैं, किन्तु भक्त अपना ही स्वरूप होता है और वीरवर वीरमणि मेरा अनन्य भक्त है; अतः जिस प्रकार भी हो, मुझे उसकी रक्षा करनी चाहिये। यही मर्यादा है।'

भक्तवत्सल शिव के वचन सुनते ही मारुतात्मज कुपित हो उठे। उन्होंने एक विशाल शिला लेकर उनके रथ पर पटक दी। उसके आघात से भगवान् शंकर का रथ घोड़े, सारथि और ध्वजा सहित चूर्ण-विचूर्ण हो गया। रथ के नष्ट होते ही भगवान् शिव नन्दी पर आरूढ़ होकर युद्ध करने लगे।

करुणामय भक्त वत्सल शिव की अद्भुत लीला थी। वे अपने जीवन सर्वस्व भगवान् श्रीराम और प्राणप्रिय भक्त वीरमणि—दोनों की ओर से युद्ध कर रहे थे। उमानाथ को वृषभ पर आरूढ़ होकर युद्ध करते देख हनुमानजी का क्रोध भड़क उठा। उन्होंने एक विशाल शाल का वृक्ष उखाड़ कर शिव के वक्ष पर प्रहार किया ही था कि भगवान भूतनाथ ने क्रुद्ध होकर अग्नि की ज्वाला की भाँति जाज्वल्यमान अपना तीखा त्रिशूल फेंका। इस प्रकार शिव एवं पवनपुत्र में भयानक संग्राम हुआ। अन्त में हनुमानजी ने सर्वलोक महेश्वर को अपनी पूंछ में लपेट कर मारना प्रारम्भ किया। यह दृश्य देख नन्दी

भयभीत हो गये। क्रुद्ध हनुमान जी के प्रहार से व्याकुल होकर शिवजी ने उनसे कहा- 'भक्त प्रवर हनुमान ! तुम धन्य हो। मै तुम्हारे पराक्रम से संतुष्ट हो गया। मै दान, यज्ञ या थोडे-से तप से सुलभ नही हूँ। तुम कोई वर माँगो।'

भगवान् नीलकण्ठ के वचन सुनकर हँसते हुए हनुमान जी ने कहा--'महेश्वर ! श्री रघुनाथ जी की कृपा से मुझे कुछ भी अप्राप्त नही, किन्तु मै आपसे यही वर माँगता हूँ कि मेरे पक्ष के पुष्कल आदि मृत एवं शत्रुघ्न आदि मूर्च्छित होकर धरती पर पड़े वीरो की आप अपने गणो के साथ रहकर रक्षा करें। मै इन्हे जीवित करने के लिए द्रोणगिरि पर औषधियाँ लाने जाना चाहता हूँ।'

'तुम्हारे लौटने तक मै इनकी रक्षा अवश्य करूँगा।' भगवान् शकर के स्वीकार करते ही हनुमान जी अत्यन्त वेग पूर्वक क्षीरोदधि के तट पर पहुँचे। वे द्रोण नामक पर्वत को ले चलने के लिये तैयार हुए ही थे कि वह काँपने लगा। पर्वत के रक्षक देवताओ ने हनुमान से कहा--'तुम इसे क्यो ले जाना चाहते हो ?'

अद्भुत शक्तिशाली हनुमान जी ने अत्यन्त निर्भीक वाणी में भगवान् रुद्र के साथ घटित हुए युद्ध का वृत्तान्त सुनाते हुए देवताओ से कहा--'मैं अपने पक्ष के मृत वीरो को जीवित करने के लिये इस पर्वत को ले जाना चाहता हूँ। बल के घमंड में आकर रोकने वालो को मैं जीवित नहीं छोड़ूँगा। अतएव तुम लोग यह समूचा द्रोण पर्वत अथवा नव जीवन प्रदान करने वाली वह औषधि ही मुझे दे दो, जिससे मै अपने मरे हुए वीरो के प्राण बचा लू।' पवनपुत्र के वचन सुनकर सबने उन्हे प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक मृतसंजीवनी औषधि उन्हें दे

दी। हनुमानजी अत्यन्त वेग पूर्वक युद्ध भूमि में पहुँचे। वहाँ गणोंसहित भगवान् शिव अपने वचन के अनुसार पुष्कल एवं शत्रुघ्नादि वीरपुंगवों के शरीरों की रक्षा कर रहे थे।

हनुमान जी ने पुष्कल के वक्ष पर औषधि रखी और उनके सिर को धड़ से जोड़ कर कहा—'यदि मैं मन, वाणी और क्रिया के द्वारा श्री रघुनाथ जी को ही अपना स्वामी समझता हूँ तो इस दवा से पुष्कल शीघ्र ही जीवित हो जायें।' पुष्कल तुरन्त ही उठ बैठे। वे युद्ध करने के लिए वीरभद्र को ढूंढ़ने लगे।

हनुमान जी तुरन्त शिव के वाण से मूच्छित शत्रुघ्न के समीप पहुँचे। वहां उन्होंने शत्रुघ्न की छाती पर औषधि रखकर कहा 'यदि मैंने प्रयत्न पूर्वक आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया है तो वीर शत्रुघन क्षण भर में जीवित हो उठें।'

शत्रुघन तत्काल ही जीवित हो उठे और वे युद्ध के लिए भगवान् शंकर को ढूंढ़ने लगे। पराक्रमी हनुमान जी ने उस औषधि के द्वारा अपने पक्ष के समस्त मृत सैनिकों को जीवित कर दिया। फिर तो सभी योद्धा कवचादि से सुसज्जित हो अपने-अपने रथ पर आरूढ़ होकर शत्रु का मान-मर्दन करने के-लिए लिए वेगपूर्वक चले।

इस बार राजा वीरमणि स्वयं शत्रुघन से युद्धकरने के लिए डट गये। यद्यपि महाराज वीरमणि ने शत्रुघन के साथ भयानक युद्ध किया, किन्तु शत्रुघन के तीक्ष्ण वाणों के असह्य आघात से वे मूच्छित हो गये। यह देखकर भगवान् शंकर अत्यन्त कुपित हो गये और उन्होंने स्वयं शत्रुधन से युद्ध प्रारम्भ कर दिया। शिव और शत्रुघन का समर अत्यन्त भयानक था। प्रलयंकर शिव के प्रहारों को शत्रुघ्न नहीं सह पाते थे। उन्हें व्याकुल

देखकर हनुमान जी ने उनसे कहा–'अपनी रक्षा के लिये इस समय आप अपने अग्रज श्री रघुनाथ जी का ही स्मरण करें, इसके अतिरिक्त प्राण-रक्षा का अन्य कोई मार्ग नहीं है।' हनुमानजी के सत्परामर्श से शत्रुघन जी अपनी रक्षा के लिये श्रीरघुनाथ जी से अत्यन्त करुण स्वर में प्रार्थना करने लगे।

फिर क्या था? नवदूर्वादल-श्याम कमलनयन भगवान् श्रीराम हाथ में मृग-शृङ्ग लिये यज्ञदीक्षित पुरुष के वेष में वहाँ उपस्थित हो गये। युद्ध-स्थल में उन्हें आया देखकर शत्रुघन अत्यन्त विस्मित किन्तु सर्वथा निश्चिन्त हो गये।

हनुमान जी की प्रसन्नता की तो सीमा ही न थी। वे दौड़कर प्रभु के चरणों में गिर पड़े। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया–'स्वामिन्! आपकी भक्त वत्सलता धन्य है। हम अत्यन्त धन्य है, जो इस समय श्री चरणों का दर्शन पा रहे हैं। प्रभो! अब आपकी कृपा से हम लोग शत्रु को कुछ ही क्षण में पराजित कर देंगे।'

उसी समय जब देवाधिदेव महादेवजी ने अपने हृदयधन भगवान् श्रीराम को वहाँ उपस्थित देखा तो आगे बढ़कर उन्होंने उनके चरण कमलों में प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक कहा– 'कृपामय प्रभो! आज मेरा परम सौभाग्य है, जो मैं यहाँ आपके दुर्लभतम दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ। कृपालु! मैंने अपने भक्त के हित के लिये आपके कार्य में विघ्न उपस्थित किया है, कृपया मुझे क्षमा कीजिए। मैंने पूर्वकाल में इस नरेश को वरदान दिया था। उसी सत्य से मैं इस समय बँधा हूँ। अब यह राजा अपना सम्पूर्ण जीवन आपके चरणों की सेवा में ही समर्पित कर देगा।'

कर्पूरगौर महेश्वर का कथन सुन भगवान् श्रीराम ने कहा–

भगवन् ! अपने भक्तों का पालन करना तो देवताओं का धर्म ही है। आपने जो इस समय अपने भक्त की रक्षा की है, आपके द्वारा यह बहुत उत्तम कार्य हुआ है। हे महेश्वर ! मेरे हृदय में आप हैं और आपके हृदय में मैं हूँ। हम दोनों में भेद नहीं है। जो मूर्ख हैं, जिनकी बुद्धि दूषित है, वे ही भेद दृष्टि रखते हैं। हम दोनों एक रूप हैं। जो हम लोगों में भेद-बुद्धि करते हैं, वे मनुष्य हजार कल्पों तक कुम्भीपाक में पकाये जाते हैं। महादेव जी ! जो सदा आपके भक्त रहे हैं, वे धर्मात्मा पुरुष मेरे भी भक्त हैं तथा जो मेरे भक्त हैं, वे भी बड़ी भक्ति से आपके चरणों में मस्तक झुकाते हैं।'

भगवान् श्री रामचन्द्र के वचन सुन करुणामूर्ति शिवजी ने अपने अमृततुल्य कर-स्पर्श से मूर्च्छित राजा वीरमणि को जीवित कर दिया। इसी प्रकार उनके अन्य पुत्रादि भी मृत्युंजय शिव की कृपा से जीवित हो गये। फिर तो महाराज वीरमणि ने अत्यन्त आदर पूर्वक यज्ञाश्व को प्रभु के सम्मुख उपस्थित किया तथा अपने पुत्र, बन्धु और बान्धवों सहित प्रभु की सेवा में ही अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। यह देखकर परोपकारमूर्ति पवनकुमार आनन्दमग्न हो गये।

शापोद्धारक

भगवान् श्रीराम के अश्वमेध का अश्व घूमता हुआ हेमकूट पर्वत के एक विशाल उद्यान में पहुँचा ही था कि वहाँ अकस्मात् उसका सारा शरीर अकड़ गया। वह हिल-डुल भी नहीं सकता था। अश्व-रक्षकों के मुख से यह संवाद सुनते ही शत्रुघ्न जी तुरन्त अपने सैनिकों के साथ अश्व के समीप पहुँचे। वहाँ पुष्कल ने उसे हिलाने-डुलाने और उठाने का अत्यधिक

प्रयत्न किया, किन्तु अश्व तो जड़-सा हो गया था। वह तनिक भी नहीं हिला।

अत्यन्त चिन्तित होकर शत्रुघ्न जी ने अपने मन्त्री सुमति से पूछा 'मन्त्रिवर! अब क्या करना चाहिये ?'

सुमति ने उत्तर दिया—'स्वामिन्! अब तो प्रत्यक्ष और परोक्ष समस्त बातों को जानने वाले किसी ऋषि-मुनि को ही ढूढ़ना उचित प्रतीत होता है।'

महाराज शत्रुघन के आदेशानुसार सेवक तपस्वी ऋषि का पता लगाने दूर-दूर तक दौड़ पड़े। कुछ ही देर में उन्हें परम तपस्वी शौनक ऋषि के पवित्र आश्रम का पता चला। शत्रुघन जी ने हनुमान और पुष्कल आदि के साथ वहाँ जाकर अपना परिचय देते हुए तपोमूर्ति मुनि के चरणों में अपना प्रणाम किया।

प्रसन्नतापूर्वक अर्घ्य, पाद्य आदि से शत्रुघन जी का स्वागत करने के अनन्तर महामुनि शौनक ने उनका समाचार पूछा तो शत्रुघन जी ने अत्यन्त विनय पूर्वक यज्ञाश्व के आश्चर्य जनक गात्र-स्तम्भ का समाचार सुनाते हुए उनसे प्रार्थना की—'मुनिनाथ! सौभाग्यवश हमें आपका दर्शन हो गया। आप कृपा पूर्वक हमारी यह विपत्ति निवारण कीजिये।'

कुछ देर तक ध्यान करने के अनन्तर शौनकजी ने कहा—"राजन! अत्यन्त प्राचीन काल की बात है। एक ब्राह्मण के अपराध पर ऋषियों ने उसे राक्षस होने का शाप दे दिया। ब्राह्मण की करुण प्रार्थना पर ऋषियों ने पुन. कहा—'जिस समय तुम श्री रामचन्द्र जी के अश्व को अपने वेग से स्तब्ध कर दोगे, उस समय तुम्हें श्रीराम की कथा सुनने का अवसर मिलेगा। जिससे इस भयंकर शाप से तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।' उसी

राक्षस ने अश्व का गात्र-स्तम्भ किया है। अतएव तुम लोग कीर्तन के द्वारा अश्व के साथ उसे भी मुक्ति प्रदान करो।"

शत्रुघ्न जी ने हनुमान, पुष्कल तथा अन्य सबके साथ महामुनि के चरणो मे सादर प्रणाम किया और फिर वे हेमकूट पर्वत के उद्यान में अश्व के समीप चले।

वहाँ जाकर श्रीराम भक्त हनुमान जी अश्व को अत्यन्त प्रीति पूर्वक भयानक दुर्गतियो का नाशक अपने आराध्य श्री रघुनाथ जी का पावन चरित्र सुनाने लगे। अन्त में उन्होने कहा—'देव! आप श्री रामचन्द्र जी के कीर्तन के पुण्य से अपने विमान पर सवार होइये और स्वेच्छानुसार अपने लोक में विचरण कीजिये। अब आप इस कुत्सित योनि से मुक्त हो जायें।'

हनुमान जी के वचनों को सुनते ही देवता ने प्रकट होकर उनका आभार स्वीकार किया और फिर वे विमान पर बैठकर स्वर्ग चले गये। साथ ही यज्ञ के अश्व का भी गात्र-स्तम्भ निवारण हो गया और वह प्रसन्नतापूर्वक रमणीय उद्यान में भ्रमण करने लगा।

श्रीराम-भक्त के बन्धन में

श्रीरामाश्वमेध का अश्व भ्रमण करता हुआ प्रख्यात कुण्डलपुर के समीप पहुँचा। वहाँ के अत्यन्त धर्मात्मा नरेश का नाम सुरथ था। वे वीर, धीर, बुद्धिमान् एवं परम पराक्रमी तो थे ही, भगवान् श्री रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे। उनकी समस्त प्रजा भी श्री रघुनाथ जी की भक्त और सद्धर्मपरायण थी। उनके राज्य में घर-घर अश्वत्थ और तुलसी की पूजा तथा

भगवान श्री सीताराम की कथा होती थी। अनीति और अधर्म के लिये वहाँ कोई स्थान नहीं था। पापपरायण नर-नारी उस राज्य में रह ही नहीं सकते थे। एक बार विश्ववन्दित यमराज ने उनकी श्रीराम-भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें इच्छानुसार वर प्रदान किया था—'राजन्! भगवान श्रीराम के दर्शन के बिना तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी और तुम मुझसे सदा निर्भय रहोगे।'

अपने नगर के समीप चन्दन से चर्चित अत्यन्त मनोहर अश्व को देखकर सेवकों ने महाराज सुरथ को सूचना दी। हरिभक्तिपरायण नरेश ने अश्व को पकड़ने का आदेश देते हुए कहा—'अहा! हम सभी धन्य हैं; क्योंकि हमें भुवनपावन श्री रामचन्द्र जी के मुखारविन्द का दर्शन प्राप्त होगा। इस अश्व को मैं तभी छोड़ूंगा, जब अनाथनाथ भक्तवत्सल श्रीराम यहाँ स्वयं उपस्थित होकर मुझे कृतार्थ करेंगे।'

अश्व पकड़ लिया गया। धर्मात्मा राजा सुरथ की श्री राम-चरणारविन्द में अनुपम भक्ति का परिचय पाकर शत्रुघ्न जी ने उनके समीप दूत के रूप में अङ्गद जी को भेजा। महाराज सुरथ ने अङ्गद जी से स्पष्ट शब्दों में कह दिया—'मैं अपने प्राणधन श्री रामचन्द्र के मुखचन्द्र का दर्शन करना चाहता हूँ। इस अभिलाषा के पूर्ण हुए बिना मैं क्षत्रिय-धर्म का पालन करने से पीछे नहीं हटूँगा।'

अङ्गद जी ने राजा से अपने पक्ष के वीरों की वीरता का गुणगान सुनाते हुए कहा—'राजन्! त्रिकूट पर्वत सहित समूची लंका को क्षणभर में फूंक देने वाले और दुष्ट बुद्धि असुरराज रावण के परम पराक्रमी पुत्र अक्षकुमार का प्राण हरण कर लेने वाले श्री रघुनाथ जी के चरण कमलों के अनन्य मधुकर हनुमानजी के पराक्रम से तो तुम परिचित ही होगे। वे इस अश्व

के रक्षक हैं। हनुमान जी का चरित्रबल कैसा है, इस बात को श्री रघुनाथजी ही जानते हैं, दूसरा कोई मूढ़ बुद्धि मनुष्य नहीं जानता; इसीलिये अपने प्रिय सेवक इन पवन कुमार को वे अपने मन से तनिक भी नहीं बिसारते। तुम्हें यह सब भली भांति सोचकर निर्णय लेना चाहिये।

महाराज सुरथ ने सम्मान पूर्वक अङ्गद को उत्तर दिया— 'वानरराज! यदि मैं मन, वाणी और क्रिया द्वारा परम प्रभु श्रीराम का ही स्मरण, चिन्तन और पूजन करता हूँ तो वे करुणानिधान स्वयं पधारकर मुझे कृतार्थ करें, अन्यथा महाबली श्रीराम भक्त हनुमान, शत्रुघन जी और भरतनन्दन पुष्कल आदि मुझे बलपूर्वक बांधकर अश्व ले जायें। तुम मेरा यह निश्चय शत्रुघन जी की सेवा में निवेदन कर दो।'

अंगद के लौटते ही युद्ध की तैयारी हो गयी। उधर महाराज सुरथ अपने अनन्य वीर सेनापति के संरक्षण में विशाल वाहिनी एवं अपने वीर चम्पक, मोहक, रिपुंजय, दुर्वार, प्रतापी, बलमोदक, हर्यक्ष, सहदेव, भूरिदेव तथा असुतापन नामक दस पुत्रों के साथ, जो युद्ध में शत्रु का मान-मर्दन करने वाले थे, डट गये। भयंकर संग्राम प्रारम्भ हो गया। भरतनन्दन पुष्कल सुरथकुमार चम्पक के साथ युद्ध करने लगे।

पुष्कल और चम्पक दोनों वीर थे। दोनों ही एक दूसरे की वीरता एवं युद्ध में दक्षता की प्रशंसा करते हुए युद्ध कर रहे थे, किन्तु वीरवर चम्पक ने पुष्कल को बांधकर अपने रथ पर बिठा लिया।

शत्रुघन जी की सेना में हाहाकार मचते देख हनुमान जी कुपित होकर चम्पक के सम्मुख पहुँच गये। उन्होंने चम्पक पर कितने ही वृक्ष एवं शिलाओं से आक्रमण किया, किन्तु श्रीरघुनाथ

जी का स्मरण करते हुए चम्पक ने उन सबको तिल सरीखे काट गिराया। तब हनुमानजी अत्यधिक क्रुद्ध हो गये और चम्पक को पकड़ कर आकाश में उड़ गये। वहाँ उन्होंने उसका पैर पकड़कर पृथ्वी पर जोर से पटक दिया। धर्मात्मा राजा सुरथ का धार्मिक वीर पुत्र चम्पक धरती पर गिरते ही घायल होकर मूच्छित हो गया।

हनुमान जी महाराज सुरथ और उनके पुत्रों तथा उनकी समस्त प्रजा की श्री रामचन्द्र जी के चरणारविन्द की भक्ति से परिचित थे। महाराज सुरथ श्री रामचन्द्र जी के मुखचंद्र का दर्शन प्राप्त कर लें, यह वे हृदय से चाहते थे, पर अश्व की रक्षा के लिये कर्तव्य-पालन भी आवश्यक था। उन्होंने देखा, उनके सम्मुख महाराज सुरथ विशाल धनुष पर शर-संधान किए डटे गये हैं। महाराज सुरथ ने हनुमान जी से कहा—'कपीन्द्र! निश्चय ही तुम महावीर और मेरे प्रभु के अनन्य भक्त हो, किंतु मैं सत्य कहता हूँ कि मैं तुम्हें बाँधकर अपने नगर में ले जाऊँगा। तुम सावधान हो जाओ।'

अपने जीवन सर्वस्व को प्राण समझने वाले महाराज सुरथ को देखकर हनुमान जी मन-ही-मन मुदित हुए। उन्होंने उत्तर दिया—'राजन्! तुम श्री रघुनाथ जी के चरणों का चिन्तन करने वाले हो और हम लोग भी उन्हीं के सेवक हैं। यदि तुम मुझे बाँध लोगे तो मेरे प्रभु बल पूर्वक तुम्हारे हाथ से छुटकारा दिलायेंगे। वीर! तुम्हारे मन में जो बात है, उसे पूर्ण करो। अपनी प्रतिज्ञा सत्य करो। वेद ऐसा कहते हैं कि जो श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करता है, वह दुःख से पार हो जाता है।'

महाराज सुरथ ने पवनकुमार की प्रशंसा करते हुए अपने

तीक्ष्णतम शरों से उन्हें घायल कर दिया। हनुमानजी ने कुपित होकर राजा का धनुष पकड़ कर तोड़ दिया। राजा ने दूसरा धनुष उठाया ही था कि पवनपुत्र ने उसे भी तोड़ डाला। इस प्रकार उन्होंने राजा के अस्सी धनुष और उनचास रथ नष्ट कर दिये। यह देखकर सुरथ ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, किंतु हनुमान जी हँसते हुए उसे भी निगल गये। तब महाराज सुरथ ने श्री रघुनाथ जी का स्मरण कर रामास्त्र का प्रयोग करके हनुमान जी को बाँध लिया। बँधते समय हनुमान जी ने कहा 'राजन्! तुमने मेरे स्वामी के ही अस्त्र से मुझे बांध लिया है। मैं उसका आदर करता हूँ। अब तुम मुझे अपने नगर में ले चलो।'

उदार शिरोमणि भक्तराज हनुमान ने अपने प्रभु के अस्त्र के सम्मान एवं भक्ताग्रगण्य सुरथ के हित के लिये बन्धन स्वीकार कर लिया। हनुमान जी को बँधते देखकर कुपित पुष्कल राजा के सम्मुख पहुँचकर युद्ध करने लगे, किंतु राजा के तीक्ष्ण शरों से वे भी मूर्च्छित हो गये। इसी प्रकार लवणासुर घाती शत्रुघन जी एवं सुग्रीव आदि भी राजा के तीक्ष्ण शरो से घायल होकर मूर्च्छित हो गये। महाराज सुरथ विजयी हुए। उन्होंने शत्रुघन जी के पक्ष के प्रमुख वीरो को रथ में बैठाया और प्रसन्न-मन नगरी की ओर चल पड़े।

राज सभा में बैठकर महाराज सुरथ ने बँधे हुए हनुमान जी से कहा—'पवनकुमार! अब तुम अपनी मुक्ति के लिये दयामय श्री रघुनाथजी का स्मरण करो।'

बन्धन युक्त दयापरवश हनुमान जी ने अपने पक्ष के सभी प्रधान-प्रधान वीरों को बँधा देखकर कमल नेत्र श्री रामचन्द्र जी का स्मरण करते हुए मन-ही-मन उनसे अत्यन्त करुण प्रार्थना

की–'हा नाथ! हा पुरुषोत्तम! 'हा दयालु सीतापते!!' (आप कहाँ हैं? मेरी दशा पर दृष्टिपात करें।) प्रभो! आपका मुख स्वभाव से ही शोभा सम्पन्न है, उस पर भी सुन्दर कुण्डलों के कारण तो उसकी सुषमा और भी बढ़ गयी है। आप भक्तों की पीड़ा का नाश करने वाले है। मनोहर रूप धारण करते हैं। दयामय! मुझे इस बंधन से शीघ्र मुक्त कीजिये। देर न लगाइये। आपने सभी भक्तों को संकट से बचाया है, दानव वंशरूपी अग्नि की तीव्र ज्वाला में जलते हुए देवताओं की रक्षा की है तथा दानवों को मारकर उनकी पत्नियों के मस्तक की केश-राशि को भी वन्धन से मुक्त किया है। (वे विधवा होने के कारण कभी केश नहीं बाँधतीं।) करुणानिधे! अब मेरी भी सुध लीजिए। नाथ! बड़े-बड़े सम्राट् भी आपके चरणों का पूजन करते हैं, इस समय आप यज्ञ कर्म में लगे हैं, मुनीश्वरों के साथ धर्म का विचार कर रहे है और यहाँ मैं सुरथ के द्वारा गाढ़ बन्धन में बाँधा गया हूँ। हे महापुरुष! देव! शीघ्र आकर मुझे छुटकारा दिलाइये। प्रभो! सम्पूर्ण देवेश्वर भी आपके चरण-कमलों की अर्चना करते हैं। यदि इतने स्मरण के बाद भी आप हम लोगों को इस बन्धन से मुक्त नहीं करेंगे तो संसार प्रसन्न होकर आपकी हँसी उड़ायेगा, इसलिये अब आप विलम्ब न कीजिए, हमें शीघ्र छुड़ाइये।'

प्राणप्रिय पवनकुमार के अन्तर्हृदय की प्रार्थना सुनते ही परमप्रभु श्रीराम तुरंत पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर तीव्रतम गति से चलकर वहां आ पहुँचे। हनुमानजी ने देखा, मेरे सर्वान्तर्यामी प्रभु श्री राम आ गये। उनके पीछे लक्ष्मण, भरत एवं वीतराग ऋषियों के समुदाय को देखकर दयामय पवननन्दन ने गद्गद कण्ठ से भाग्यवान् महाराज सुरथ से कहा 'राजन्!

देखो, भक्तों को संकट से मुक्त कराने वाले-मेरे प्राण-सर्वस्व श्री रघुनाथजी हमें बन्धन-मुक्त करने आ गये।'

हनुमानजी का संकेत प्राप्त होते ही महाराज सुरथ प्रभु के चरणो में लेटकर बारम्बार प्रणाम करने लगे। उन्होने प्रभु के परम पावन चरणो को अपने प्रेमाश्रुओं से धो दिया और जब दयाधाम श्रीराम ने चतुर्भुज रूप धारण कर राजा सुरथ को छाती से लगा लिया, तब हनुमान जी के नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। प्रभु ने राजा से कहा 'राजन्! तुमने यशस्वी क्षत्रिय-धर्म का पालन कर बड़ा उत्तम कार्य किया है।'

श्री रघुनाथ जी की दया दृष्टि से हनुमान जी आदि सभी वीर बन्धन से मुक्त और समस्त मूर्च्छित तथा मृत योद्धा जीवित हो गये।

राजा सुरथ के आनन्द की सीमा न थी। उन्होने पुत्रों सहित हर्षोल्लास पूर्वक प्रभु की अर्चना की। राजा, मन्त्री, राजा के पुत्र, सैनिक एवं समस्त नागरिक भगवान् श्रीराम एवं उनके अनन्य भक्त भक्तराज हनुमान के दर्शन कर धन्य हो गये। सबने अपना जन्म और जीवन सफल कर लिया।

महामुनि आरण्यक से मिलन

वायुवंशोद्भव हनुमान शत्रुघ्न की अक्षौहिणी सेना के साथ साथ उनकी रक्षा के लिए सतत सावधान रहते थे अश्व के पीछे-पीछे विशाल सशस्त्र वाहिनी परमपावनी नर्मदा के तट पर पहुँची। वहाँ तपस्वी ऋषियों का समुदाय निवास करता था। वहीं नर्मदा के तटपर पलाश के पत्तों से बनी एक पुरानी पर्णशाला थी। उसमे भगवान् श्रीराम के ध्यानपरायण महामुनि आरण्यक निवास करते थे। हनुमान, पुष्कल और अपने नीति

कुशल मन्त्री सुमति के साथ श्री रामानुज ने उनके चरणों में प्रणाम किया। महर्षि ने जब उन्हे यज्ञाश्व के रक्षक के रूप में देखा तो वे श्रीराम के भुवनमङ्गलकारिणी मनोहर लीला-कथा सुनाते हुए कहने लगे—'स्थिर ऐश्वर्य पद को देने वाले एकमात्र रमानाथ भगवान् श्री रघुवीरजी ही है। जो लोग उन भगवान् को छोडकर दूसरे की पूजा करते है, वे मूर्ख है। जो स्मरण करने मात्र से मनुष्यो के पहाड़ जैसे पापो का भी नाश कर डालते है, उन भगवान् को छोड़कर मूढ़ मनुष्य योग, याग और व्रत आदि के द्वारा क्लेश उठाते है। सकाम पुरुष अथवा निष्काम योगी भी जिनका अपने हृदय में चिन्तन करते हैं तथा जो मनुष्यो को मोक्ष प्रदान करने वाले है वे भगवान् श्रीराम स्मरण करने मात्र से सारे पापो को दुर कर देते है।'

फिर महामुनि ने महर्षि लोमश का उपदेश सुनाते हुए आगें कहा—'एक देवता है—श्रीराम एक ही व्रत है—उनका पूजन, एक ही मन्त्र है—उनका नाम तथा एक ही शास्त्र है उनकी स्तुति। अत: तुम सब प्रकार से परम मनोहर श्रीरामचन्द्रजी का भजन करो, इससे तुम्हारे लिये यह महान् संसार-सागर गौ के खुरके समान तुच्छ हो जायेगा।'

अपने परमाराध्य परम प्रभु श्रीराम का माहात्म्य सुनकर समीरात्मज मन-ही-मन पुलकित हो रहे थे, उनका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया था और नेत्र प्रेमाश्रुओ से भर गये थे। जब महामुनि आरण्यक भगवान् श्रीराम की लीला कथा सुनाने लगे तो उनके नेत्र बरसने लगे और जबतक श्रीराम-लीलाका वर्णन होता रहा, उनके नेत्रो से अनवरत अश्रुपात होता ही रहा।

परमपावन श्रीराम की भवतापहारिणी एवं मुनिमनो-

हारिणी कथा का वर्णन कर लेने के उपरान्त जब महर्षि आरण्यक को ज्ञात हुआ कि मेरे आराध्यदेव भगवान् श्रीराम ने ही अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली है और मेरे आश्रम पर उनके भाई शत्रुघ्न-सहित उनका ही अश्व आया है, तब तो उनका मन-मयूर नृत्य कर उठा और जब उन्हें यह विदित हुआ कि संसार-भयनाशन, अनन्तमङ्गल, श्रीरामपरायण महावीर हनुमान मेरे सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं, तब वे जोर से बोल उठे—'आज मेरी जननी का जन्मदान सफल हो गया।

दूसरे ही क्षण वयोवृद्ध महामुनि आरण्यक ने श्रीरामप्राण हनुमानजी को अपने हृदय से सटा लिया। हनुमान जी ने भी स्नेहातिरेक से उन्हें अपने अंक में भर लिया। उस समय महामुनि के नेत्रों से आंसू बह रहे थे। उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी, किंतु उनके आनन्द की सीमा न थी यही दशा हनुमान जी की भी थी। महामुनि आरण्य और हनुमान—जैसे प्रेम के दो विग्रह परस्पर आलिङ्गनबद्ध हो गये थे।

श्री रामात्मज के साथ युद्ध

यज्ञ का अश्व भ्रमण करता हुआ महर्षि वाल्मीकि के पुनीत आश्रम के समीप पहुँचा। प्रातःकाल का समय था। सीता पुत्र लव मुनिकुमारों के साथ समिधा लेने वन में गये थे। वहाँ उन्होंने यज्ञाश्व के भाल पर स्वर्ण-पत्र पर पंक्तियाँ पढ़ते ही घोड़े को तुरंत पकड़ कर एक वृक्ष से बांध दिया।

उसी समय शत्रुघ्न के सेवक वहाँ पहुँच गये। वे मुनि-बालकों से अश्व बाँधने वाले व्यक्ति का पता पूछ ही रहे थे

कि लव ने कहा—'इस सुन्दर अश्व को मैंने बाँधा है। इसे छुड़ाने वाला मृत्यु का ग्रास बनेगा। अतः इससे दूर ही रहो।'

'बेचारा बालक है'- यों कहते हुए शत्रुघ्न जी के सेवक घोड़े को खोलने के लिये आगे बढ़े ही थे कि लव ने अपने वाण से उनकी भुजाएँ काट डालीं। सेवक व्याकुल होकर महाराज शत्रुघ्न के पास भागे। उन्होने शत्रुघ्न जी से कहा--'राजन्! श्रीराम की मुखाकृति के तुल्य एक बालक ने हमारी यह दुर्दशा की है और उसी ने अश्व को भी बाँध लिया है।'

शत्रुघ्न जी ने कुपित होकर बालक को दण्डित कर अश्व छुड़ा लाने के लिए चतुरङ्गिणी सेना के साथ अपने सेनापति कालजित् को भेजा। सेनापति लव को देखकर समझाने का प्रयत्न करने लगे, किंतु लव ने कहा 'मुझे इस घोड़े की आवश्यकता नहीं, किंतु इसके भाल पर सुवर्ण-पत्र पर अंकित पंक्तियाँ मुझे युद्ध करने के लिये विवश कर रही हैं। तुम सुवर्ण-पत्र यहाँ छोड़कर अश्व सहित सुरक्षित लौट सकते हो, अन्यथा युद्ध अनिवार्य है।'

कालजित् ने भयानक युद्ध किया, किंतु वे लव के द्वारा मार डाले गये। उनकी अजेय वाहिनी को भी लव के असंख्य नुकीले सायको से व्याकुल होकर पीछे हट जाना पड़ा। पर लव युद्ध करते ही रहे। भीषण संग्राम हुआ। प्रायः सभी वीर मारे गये।

फिर तो, हनुमान, पुष्कल आदि के साथ स्वयं शत्रुघ्नजी समर-भूमि मे उपस्थित होकर सीताकुमार लव से युद्ध करने लगे। महावीरशिरोमणि भरतनन्दन पुष्कल कुछ ही देर मे लव के शर से आहत होकर धराशायी हो गये। उन्हे मूर्च्छित देखते ही हनुमानजी लव से युद्ध करने लगे। उन्होंने लव पर

अनेक वृक्षों एवं शिलाओं का प्रहार किया, किंतु लव ने अपने शरों से उन सबको काटकर तिल के समान टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब हनुमान जी ने लव को अपनी पूंछ में लपेट लिया और आकाश में उड़ चले। लव ने अपनी सर्वशक्तिमयी जानकी का स्मरण कर हनुमान जी की पूंछ पर मुष्टि-प्रहार किया। उससे हनुमान जी अत्यन्त व्याकुल हो उठे और लव उनकी पूंछ से मुक्त हो गये। उन्होंने कुपित होकर हनुमान जी पर इतने तीक्ष्ण शरों की वृष्टि की, जिन्हें वे सह न सके और पीड़ा से व्याकुल होकर मूच्छित हो गये।

यह देखकर स्वयं शत्रुघन जी रथ पर आरूढ़ होकरसीता पुत्र से लोहा लेने के लिए आगे बढ़े। लव को पराजित करना अत्यन्त कठिन था, किंतु शत्रुघन जी का एक भयानक शर उनके वक्ष में प्रविष्ट हो गया, जिससे वे घायल होकर चेतना-शून्य हो गये। लव के धरती पर गिरते ही शत्रुघन जी की सेना में हर्ष व्याप्त हो गया। शत्रुघन जी ने लव को अपने रथ में डाल कर बंदी बना लिया।

मुनिकुमारों से शत्रु द्वारा लव के पकड़े जाने का समाचार सुनकर माता सीता व्याकुल हो गयीं, किंतु लव के बड़े भाई कुशने उन्हें धैर्य बंधाया और वे माता से समस्त अस्त्र-शस्त्र एवं उनका अमोघआशीर्वाद लेकर अपने अनुज लव को मुक्त कराने रणाङ्गण की ओर चल पड़े।

रथ पर बंधे लव की चेतना लौट आयी थी। उन्होंने अपने बड़े भाई को समर-भूमि में उपस्थित देखा तो अपने को रथ से छुड़ाकर युद्ध के लिए कूद पड़े। फिर तो कुश ने पूर्व दिशा से और लव ने पश्चिम दिशा से शत्रुघन की सेना को घेर कर मारना प्रारम्भ किया।

शत्रुघन जी अत्यन्त कुपित होकर कुश से युद्ध करने लगे, किंतु कुश ने प्रतिज्ञा पूर्वक तीन बाणो से उन्हे मूर्च्छित कर दिया। अब महाराज सुरथ सम्मुख आये, पर वे भी कुश के शरो से मूर्च्छित हो गये।

यह देखकर हनुमान जी ने अत्यन्त क्रोध से एक विशाल शाल का वृक्ष उखाड कर कुश के वक्ष पर प्रहार किया। वीर-वर कुश ने माता सीता का स्मरण कर एक भयानक महाशास्त्र उठाया और उसे हनुमान जी पर चला दिया। उस दुर्जय शस्त्र को हनुमान जी सह नहीं सके और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे।

सीता पुत्र लव और कुश के भयानक प्रहार से शत्रुघन जी की चतुरंगिणी सेना व्याकुल होकर पलायन करने लगी, तब वानरराज सुग्रीव अपने सैनिको को प्रोत्साहित करते हुए कुश पर शिलाओ और वृक्षो से प्रहार करने लगे, किंतु वीर कुश ने उन्हे भी शीघ्र ही वरुण-पाश से दृढता पूर्वक बाध लिया। सुग्रीव धरती पर गिर पडे। कुश विजयी हुए। उधर लव ने भी पुष्कल, अगद, प्रतापाध्य और वीरमणि आदि वीरो को पराजित कर दिया।

लव और कुश—दोनो भाई हनुमानजी और सुग्रीव को अच्छी तरह बाध कर मनोरञ्जन के लिये अपने आश्रम पर ले चले।

माता सीता ने पुत्रो को सकुशल लौटे देखा तो अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हे हृदय से लगा लिया, किंतु हनुमान्‌ जी और सुग्रीव पर दृष्टि पडते ही वे अधीर होकर कहने लगी—'पुत्रो! ये दोनो वानर परम पराक्रमी एव अत्यन्त सम्मान के पात्र हैं। ये लका को भस्म करने वाले अञ्जनानन्दन एव ये वानर-

भालुओं के अधिपति सुग्रीव हैं। तुमने इन्हें क्यों बाँध लिया ? इन्हें अभी छोड़ो।'

परम पूजनीया जननी सीता के आदेश से हनुमान जी और सुग्रीव का बन्धन खोलते हुए पुत्रों ने कहा—माँ ! अयोध्या के प्रसिद्ध राजा दशरथके श्रीराम नामक कोई पुत्र अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। उन्होंने अश्व भी छोड़ा है, जिसके ललाट पर बँधे हुए सुवर्ण-पत्र पर पर लिखा है—'सच्चे क्षत्रिय इस अश्व को पकड़ें, अन्यथा मेरे सम्मुख नतमस्तक हो।' उस राजा की धृष्टता से हमने घोड़े को पकड़ लिया और श्री राम के भाई शत्रुघन सहित उनकी विशाल वाहिनी को भी मार डाला है।'

माता सीता ने दुःख से व्याकुल होकर कहा—'पुत्रो ! तुम लोगों ने यह बड़ा अनुचित किया है। तुम्हें पता नहीं, वह घोड़ा तुम्हारे पिता का ही है। तुम शीघ्र ही उस अश्व को भी छोड़ दो।'

पुत्रों ने विनयपूर्वक निवेदन किया—'माँ ! हम लोगों ने महर्षि के उपदेशानुसार क्षत्रिय-धर्म का ही पालन किया है। अब उस उत्तम अश्व को भी छोड़ देते हैं।'

परमसती जनकनन्दिनी ने अपने जीवन-धन श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करते हुए कहा—'यदि मैं मन, वाणी और कर्म से श्री रघुनाथ जी के अतिरिक्त अन्य किसी का स्मरण नहीं करती तो शत्रुघन जी सहित उनकी सारी सेना पुनः जीवित हो जाय।'

उसी समय शत्रुघन जी के साथ उनकी सारी सेना जीवित हो गयी। माता सीता ने हनुमानजी से पूछा—'हनुमान ! तुम जैसा अतुलित बलधाम एवं परम पराक्रमी वीर एक बालक से कैसे पराजित हो गया ?'

हनुमान जी ने हाथ जोड़कर माता जानकी से निवेदन

किया–'माँ ! हम पराजित कहाँ हुए ? पुत्र पिता की आत्मा होता है। इस प्रकार यह दोनों कुमार तो मेरे स्वामी ही हैं। मेरे करुणानिधान भगवान् ने हम लोगों का अहंकार देखकर ही यह लीला रची है।'

हनुमान जी ने अश्व की रक्षा में अनेक स्थलों पर जितने आश्चर्य जनक पराक्रम किये हैं, उन सबका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं, उनका विस्तृत वर्णन पद्मपुराण (पातालखण्ड) और जैमिनीयाश्वमेध आदि ग्रन्थों में ही देखना चाहिये।

रुद्र-रूप में

सदा सौम्य रूप में अवस्थित रहने वाले उदारलोचन मारुतात्मज कभी-कभी अपने रुद्र रूप में भी दर्शन दे देते हैं। अमित महिमामयी माता जानकी का इनके प्रति अद्भुत वात्सल्य है। सहस्रों सेवक सेविकाएँ जनकदुलारी की सेवा के लिये प्रतिक्षण सजग और सावधान रहकर उनके आदेश की प्रतीक्षा करती रहती थीं। माता जो चाहती वह तत्काल हो जाता; किंतु उन्हें तृप्ति नहीं होती। इस कारण एक दिन माता सीता ने अपने प्राणप्रिय लाल हनुमानजी को भोजन कराने के लिये अपने ही हाथों विविध प्रकार के व्यञ्जन तैयार किये।

माता के आदेशानुसार हनुमानजी अत्यन्त प्रसन्न होकर भोजन करने बैठे। माता के हाथ के बने भोजन की तुलना कहाँ ? वहाँ तो भगवती सीता जैसी माता और हनुमान जी जैसा पुत्र ! हनुमानजी ने भोजन करना आरम्भ किया। उन्होंने माता के हाथों परोसा हुआ अमृतमय भोजन कितना खा लिया, इसका उन्हें ध्यान ही न रहा। वे आनन्दपूर्वक भोजन करते ही जा रहे थे।

माता सीता ने हनुमानजी को इतना खाते कभी देखा नहीं था और वे अब भी खाते ही जा रहे थे। उधर माताजीके बनाये समस्त व्यञ्जन समाप्त हो गये। माता जानकी चकित थीं। विवशतः उन्होंने अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीराम का स्मरण किया। अब तो माता सीता ने स्पष्ट देखा कि हनुमान के वेष में स्वयं भगवान शंकर भोजन आरोग रहे हैं। प्रलय काल में निखिल सृष्टि को उदरस्थ कर लेने वाले प्रलयंकारी की क्षुधा कुछ व्यञ्जनों से कैसे शान्त हो पाती ?

भगवती सीता ने पीछे से जाकर उनके सिर के पिछले भाग में लिख दिया—'ओम नमः शिवाय।' साथ ही उन्होंने मन ही मन रुद्रदेव का स्तवन करते हुए उनसे तृप्त हो जाने की प्रार्थना की। फिर क्या था ? हनुमानजी तुरंत तृप्त हो गये।

एक बार हनुमानजी ने अपने भाई भीमसेन को भी रौद्र-रूप का दर्शन कराया था। बात है द्वापरयुग की। तब पाण्डव अरण्यवास कर रहे थे। अर्जुन से मिलने की इच्छा से वे द्रौपदी सहित उत्तराखण्ड के पवित्रतम श्रीनर-नारायण आश्रम में पहुँचे। वहाँ एक दिन ईशानकोण से वायु के सहारे सौगन्धिक नामक एक सहस्रदल कमल उड़ आया। उस सूर्यतुल्य तेजस्वी दिव्य कमल में अद्भुत मनमोहक गन्ध थी। उसे देखते ही मुग्ध होकर द्रौपदी ने भीमसेन से कहा—आर्य ! यदि आपके मन में मेरे प्रति वास्तविक प्रेम है तो आप ऐसे ही सुगन्धित दिव्य कमल और ला दीजिये। मैं उन्हें काम्यकवन में अपने आश्रम पर ले चलूंगी।'

अपनी प्रियतमा द्रौपदी की प्रसन्नता के लिये भीमसेन ने तुरंत अपने सुवर्ण जटित पीठवाले विशाल धनुष और तीक्ष्णतम शरों को उठाया और वायु जिस ओर से उस अनुपम सुगन्धित

दिव्य सहस्रदल कमल को उड़ाकर लाया था, उसी ओर तीव्र गति से चल पड़े। परम पराक्रमी भीमसेन मार्ग में भीषण गर्जना करते हुए जा रहे थे। उनकी गर्जना से दिशाएँ गूंज उठती थीं और वन के व्याघ्र आदि हिंसक प्राणी भयभीत होकर मार्ग से दूर हटकर अरण्य में छिप जाते थे।

इस प्रकार भीमसेन आगे बढ़ते गये। थोड़ी दूर आगे जाने पर उन्हें गन्धमादन के शिखर पर अत्यन्त विस्तृत एक कदलीवन मिला वह कई योजन लंबा चौड़ा था। वीरवर भीमसेन ने गर्जना करते हुए उस कदलीवन में प्रवेश किया।

उसी वन में हनुमानजी रहते थे। उस भीषणतम गर्जना को सुनकर उन्हें समझते देर न लगी कि यह मेरा भाई भीमसेन ही है। 'भीमसेन का इस मार्ग से स्वर्ग जाना उचित नहीं'— यह सोचकर वे कदलीवन से होकर जाने वाले सँकरे मार्ग को रोककर लेट गये। हनुमानजी वहाँ जंभाई लेते हुए जब अपनी विशाल पूछ फटकारते, तब दिशाएँ प्रतिध्वनित हो जाती और पर्वत शिखर टूट टूटकर लुढकने लगते उस ध्वनि को सुनकर भीमसेन के रोंगटे खड़े हो गये। कारण ढूंढते हुए वे वहाँ पहुँचे, जहाँ एक विशाल शिला पर उनके भाई हनुमानजी लेटे हुए थे।

विद्युत्पात के समान चकाचौंध पैदा करने के कारण उनकी ओर देखना अत्यन्त कठिन हो रहा था। उनकी अङ्ग-कान्ति गिरती हुई बिजली के समान पिङ्गल-वर्ण की थी। उनका गर्जन-तर्जन वज्रपात की गड़गड़ाहट के समान था। वे विद्युत्पात के सदृश चञ्चल प्रतीत होते थे। उनके कंधे चौड़े और पुष्ट थे। अतः उन्होंने बाँह के मूलभाग को तकिया बनाकर उसी पर अपनी मोटी और छोटी ग्रीवा को रख छोड़ा था और उनके शरीर का मध्य भाग एवं कटिप्रदेश पतला था। उनकी लम्बी

पूंछ का अग्रभाग कुछ मुड़ा हुआ था। उसकी रोमावलि घनी थी तथा वह पूंछ ऊपर की ओर उठकर फहराती हुई ध्वजा-सी सुशोभित होती थी।

उनके होंठ छोटे थे। जीभ और मुख का रंग तांबे के समान था। कान भी लाल रंग के ही थे और भौहें चञ्चल हो रही थीं। उनके खुले हुए मुख में श्वेत चमकते हुए दांत और दाढ़ें अपने सफेद और तीखे अग्रभाग के द्वारा अत्यन्त शोभा पा रही थीं। इन सबके कारण उनका मुख किरणों से प्रकाशित चन्द्रमा के समान दिखायी देता था। मुख के भीतर की श्वेत दन्तावलि उसकी शोभा बढ़ाने के लिए आभूषण का काम दे रही थी। सुवर्णमय कदली-वृक्षों के बीच विराजमान महातेजस्वी हनुमानजी ऐसे जान पड़ते थे, मानो केसर की क्यारी में अशोक-पुष्पों का गुच्छ रख दिया गया हो।

प्रज्वलित अग्नि के समान कान्तिमान् हनुमानजी को देखकर वीरवर भीमसेन भीषण गर्जना करते हुए उनके पास पहुंच गये। हनुमानजी ने उन्हें अपने मधुपिङ्गल नेत्रों से उपेक्षापूर्वक देखते हुए धीरे-धीरे कहा—'भैया! मैं तो पशु और रोगी हूं। तुम बुद्धिमान् मनुष्य हो। मैं यहां सुखपूर्वक सो रहा था, तुमने मुझे क्यों जगा दिया? इसके आगे तो मनुष्य के जाने का मार्ग नहीं है। तुम कहां जाना चाहते हो?'

'तुमसे मार्ग कौन पूछता है?' चिढ़कर भीमसेन ने उत्तर दिया—'तुम यहां से हटो और मुझे जाने दो।'

'देखो भैया! यहां के कन्द-मूल-फल अत्यन्त मीठे हैं।' हनुमानजी ने भीमसेन को समझाते हुए कहा—'तुम इन्हें खाकर विश्राम करो और यहां से लौट जाओ। उत्तराखण्ड में इतनी दूर तक आने वाले तुम कौन हो?'

'वानरराज ! मैं तुमसे परामर्श नहीं माँगता।' क्रुद्ध होने पर भी उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं चन्द्रवंश के अन्तर्गत कुरुवंश में उत्पन्न महाराजा पाण्डु की सहधर्मिणी कुन्ती का पुत्र भीमसेन हूँ। अब तुम उठकर मुझे आगे जाने का मार्ग दे दो।'

'मैंने पहले ही कहा कि यहाँ से आगे मनुष्यों के जाने का मार्ग नहीं है।' हनुमानजी ने उन्हें मना करते हुए पुनः कहा—'इस पथ से जाने पर तुम्हारे प्राण संकट में पड़ सकते हैं।'

भीमसेन अत्यन्त कुपित हो गये। उन्होंने कहा—'तुम मेरी चिन्ता छोड़कर उठ जाओ। मुझे जाने दो।'

हनुमानजी ने कहा 'भैया ! मैं तो रोगी हूँ। तुम मुझे लाँघ कर चले जाओ।'

भीमसेन ने उत्तर दिया—'कपिश्रेष्ठ ! निर्गुण परमात्मा समस्त प्राणियों में व्याप्त है। इस कारण मैं तुम्हारा लंघन नहीं कर सकता। शास्त्रों के द्वारा यदि मुझे श्रीभगवान् स्वरूप का ज्ञान नहीं होता तो मैं तुम्हें तो क्या, इस गगनस्पर्शी पर्वत को उसी प्रकार लाँघ जाता, जैसे महावीर हनुमान सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघ गये थे।'

हनुमानजी ने मुस्कुराते हुए भीमसेन से पूछा—'अरे भैया ! वह हनुमान कौन था, जो समुद्र को लाँघ गया था ?'

'वे कपिपुंगव मेरे भाई हैं।' भीमसेन ने उल्लासपूर्वक बताया—'वे अनुपम बल-विक्रम-सम्पन्न तो हैं ही, ज्ञानियों में भी अग्रगण्य हैं। वे भगवान् श्रीराम की सती पत्नी जनकनन्दिनी का पता लगाने के लिए शत योजन विस्तृत सागर को एक ही छलाँग में पार कर गये थे। मैं उन्हीं वीराग्रणी हनुमानजी का

भाई हूँ। अब तुम मेरा मार्ग छोड़कर हट जाओ। यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हें मृत्यु-मुख में जाना पड़ेगा।'

'मुझ वृद्ध रोगी पर रोष मत करो, भैया!' हनुमानजी ने धीरे-धीरे कहा 'अशक्तता के कारण मैं तो उठ नहीं पाऊँगा, अतः तुम मेरी पूँछ हटाकर चले जाओ।'

हनुमानजी की बात सुनकर वायुपुत्र भीमसेन क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने बायें हाथ से पूंछ हटा देना चाहा, किंतु यह देखकर वे चकित हो गये कि पूंछ तो हिली भी नहीं। भीमसेन ने जोर लगाकर उसे हटाना चाहा, पर वह टस-से-मस भी नहीं हुई। तब उन्होंने दोनों हाथों से अपनी पूरी शक्ति लगा दी। उनका मुख-मण्डल स्वेद-सिक्त हो गया, पर पूंछ अपने स्थान से तिलभर भी न हट सकी। लज्जा के कारण वीरवर भीमसेन का सिर नत हो गया।

उन्होंने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'कपि-श्रेष्ठ! आप मेरे दुर्वचनों के लिए कृपया क्षमा कर मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आप इस वेष में कोई सिद्ध, देवता, गन्धर्व अथवा गुह्यक तो नहीं हैं? मैं आपकी शरण हूँ। आप कृपापूर्वक मुझे अपना परिचय दीजिये।'

हनुमानजी ने अपना परिचय देते हुए कहा—'पाण्डुनन्दन भीमसेन! मैं वानरराज केसरी के क्षेत्र में वायु से उत्पन्न वानर हनुमान हूँ।' इसके अनन्तर हनुमानजी ने भगवान् श्रीराम की संक्षिप्त कथा सुनाते हुए अपनी सेवाओं का वर्णन किया। फिर अन्त में उन्होंने बताया—भीमसेन! यहाँ गन्धर्व और अप्सराएं मुझे मेरे प्रभु के चरित सुना-सुनाकर आनन्द प्रदान करते रहते हैं और माता सीता के अनुग्रह से मुझे यहां इच्छित दिव्य भोग प्राप्त हो जाते हैं।'

हनुमानजी ने आगे कहा –'इस मार्ग में देवगण निवास करते हैं और मनुष्यों के लिये अगम्य होने के कारण मैंने इसे रोक लिया था। सम्भव है, इस मार्ग से जाने मे तुम्हारा तिरस्कार हो जाय या कोई तुम्हें शाप दे दे। तुम जहाँ जाना चाहते हो, वह सरोवर तो यहाँ समीप ही है।',

महावीर हनुमान से उनका परिचय प्राप्त कर भीमसेन की प्रसन्नता की सीमा न रही। वे अपने बड़े भाई के चरणों पर गिर पड़े और फिर उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्ण कोमल वाणी मे कहा –'आज मेरे सौभाग्य का क्या कहना, जो आपने कृपापूर्वक मुझे अपना दर्शन दे दिया। अब आप कृपापूर्वक मुझे अपने समुद्रोल्लघन के समय के अनुपम स्वरूप को भी दिखा दीजिये। उसके दर्शन की मेरी बडी इच्छा है।'

हनुमानजी ने हँसकर उत्तर दिया -'भाई भीमसेन! तुम तथा अन्य कोई मनुष्य उस रूप को नही देख सकता।' तदनन्तर चारों युग, उनके आचार, धर्म, अर्थ और काम के रहस्य, कर्म-फल का स्वरूप तथा उत्पत्ति और विनाश का वर्णन करते हुए हनुमानजी ने भीमसेन से कहा –'तुम मेरे इस स्वरूप को देखने का आग्रह मत करो। अब सुखपूर्वक लौट जाओ।'

किन्तु भीमसेन ने साग्रह प्रार्थना की–'आप कृपापूर्वक मेरी इस इच्छा की पूर्ति तो कर ही दीजिये, आपके उस अद्‌भुत रूप का दर्शन किये बिना मैं यहाँ से नहीं लौटूंगा।'

'अच्छा, तुम नहीं मानते हो तो मेरे उस रूप को देखो!' इतना कहकर हनुमानजी ने अपने भाग्यवान् भाई भीमसेन को अपना वह विशाल रूप दिखाया, जो उन्होंने समुद्रोल्लंघन के समय धारण किया था। वे अमित तेजस्वी हनुमानजी वृक्षों

सहित समूचे कदली वन को आच्छादित करते हुए गन्धमादन पर्वत की ऊँचाई को भी लांघकर वहाँ खड़े हो गये ।

'उनका वह उन्नत विशाल शरीर दूसरे पर्वत के समान प्रतीत होता था । लाल आँखों, तीखी दाढ़ों और टेढ़ी भौंहों से युक्त उनका मुख था । हनुमानजी तेज में सूर्य के समान दिखायी देते थे । उनका शरीर सुवर्णमय मेरुपर्वत के समान था और उनकी प्रभा से सारा आकाश-मंडल प्रज्वलित-सा जान पड़ता था ।'

अपने बड़े भाई हनुमानजी के उस विराट् रूप को देखकर भीमसेन के आश्चर्य की सीमा न रही । उन्होंने अपनी आँखें बंद कर ली । विन्ध्यगिरि के समान हनुमानजी के उस विशाल स्वरूप को देखकर उनके रोंगटे खड़े हो गये । तब हाथ जोड़कर भीमसेन ने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—'अद्‌भुत सामर्थ्य-सम्पन्न हनुमानजी ! मैंने आपका वह भयानक रूप देख लिया । अब आप कृपापूर्वक अपने मैनाक पर्वत के समान अपरिमित और दुर्धर्ष रूप को समेट लीजिये । मैं आपकी ओर देख भी नहीं सकता, किन्तु मैं सोच रहा हूँ कि आप जैसे वीरपुंगव के रहते हुए एक तुच्छ असुर का संहार करने के लिए स्वयं भगवान् श्रीराम को युद्ध क्यों करना पड़ा ?'

हनुमानजी ने अपने भाई भीमसेन को मधुर शब्दों में समझाया—'भाई भीमसेन ! निश्चय ही मै अकेले रावण क्या, समस्त राक्षस कुल का सर्वनाश करने में समर्थ था, किन्तु वैसा करने से श्रीरघुनाथजी की कीर्ति का विस्तार कैसे होता ? उनका गुण गा-गाकर मनुष्य अपना उद्धार कैसे कर पाते ?'

इतना कहकर हनुमानजी ने पाण्डुनन्दन को सौगन्धिक वन का मार्ग बताते हुए उन्हें चारों वर्णों के धर्मों का उपदेश

दिया और अपने विशाल शरीर को समेट कर भाई भीमसेन को हृदय से लगा लिया। रुद्रावतार हनुमानजी के स्पर्श से भीमसेन की सारी थकान दूर हो गयी। उन्होंने अपने शरीर में अद्भुत शक्ति का अनुभव किया।

उसी समय हनुमानजी ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक भीमसेन से कहा–'भैया भीमसेन! मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होना चाहिये। तुम कहो तो मैं दुर्योधन को उसके भाईयों सहित मार डालूं, या तुम्हारी इच्छा हो तो मैं उसे बाँधकर तुम्हारे चरणों में डाल दूं अथवा विशाल पर्वत पटककर उसका सम्पूर्ण नगर ही नष्ट कर दूं। तुम मुझसे कोई वर माँगो।'

अपने परमादरणीय भाई की बात सुनकर वायुनन्दन भीमसेन ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तर दिया–'वानरराज! आपकी कृपादृष्टि ही मुझे अभीष्ट है। आपकी दया से शत्रु पराजित होकर रहेगा।'

'तुम मेरे भाई हो, इस कारण मैं तुम्हारा कुछ-न-कुछ प्रिय अवश्य करूँगा।' अत्यन्त सद्भाव के कारण हनुमानजी ने वचन दिया–'महाबली वीर! जब तुम बाण और शक्ति के आघात से व्याकुल हुई शत्रुओं की सेना में घुस कर सिंहनाद करोगे, उस समय मैं अपनी गर्जना से तुम्हारे उस सिंहनाद को और बढ़ा दूँगा। उसके सिवा अर्जुन की ध्वजा पर बैठकर मैं ऐसी भीषण गर्जना करूँगा, जो शत्रुओं के प्राणों को हरने वाली होगी, जिससे तुम लोग उन्हें सुगमता से मार सकोगे।'

फिर हनुमानजी ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहा–'भाई भीमसेन! अब तुम सुखपूर्वक जाओ। कभी-कभी मेरा भी स्मरण कर लेना, किन्तु मेरे यहा रहने की बात प्रकट मत करना।'

इतना कहकर हनुमानजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

गर्व हरण में निमित्त

जिस प्रकार भगवद्भक्तों के तन, मन, प्राण और जीवन-सर्वस्व श्रीभगवान् ही होते हैं, भगवान् के अतिरिक्त उन्हें कहीं कुछ भी प्रिय नहीं लगता, वे अहर्निश अपने प्रभु के ही स्मरण चिंतन एवं भजन में लगे रहते हैं, उसी प्रकार भक्त वत्सल श्री भगवान् भी अपने भक्तों का शिशु सरीखे निरन्तर ध्यान रखते है। भक्त का सुख-दुःख प्रभु अपना ही समझते हैं। वे दयामय सर्वेश्वर अपने भक्तों को प्रत्येक रीति से अंतर्बाह्य शुद्ध और पवित्र रखते हैं। समस्त दुःखों का मूल अभिमान होता है। अतएव भक्त के हृदय में तनिक भी अभिमान का अंकुर उत्पन्न हुआ कि करुणावरुणालय प्रभु उसे शीघ्र मिटा कर भक्त का अंतःकरण निर्मल बना देते हैं। उस समय भक्त को कुछ कष्ट की भी अनुभूति होती है; किंतु वह पीछे श्री भगवान की अद्भुत करुणा एवं प्रीति का दर्शन कर आनंद-विभोर हो जाता है।

भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण के नाम और रूप में ही अन्तर है, वस्तुतः वे दो नहीं, एक ही हे। इसी प्रकार जनकनन्दिनी सीता और वृषभानुदुलारी राधा भी एक ही हैं। इनमें कोई भेद नहीं। ज्ञानमूर्ति पवननन्दन इस अभेद-तत्त्व से अपरिचित हों, यह बात नहीं, किंतु उन्हें तो अवधविहारी नवजलधर-श्याम धनुर्धर श्रीराम एवं जनकदुलारी ही प्रिय लगती हैं। वे निरन्तर उन्हीं के ध्यान में आनन्द मग्न रहते हैं। प्रभु भी यह जानते हैं और उनके साथ वैसी ही लीला करके उन्हें सुख देते

रहते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें द्वापर में भगवान् श्री कृष्ण अवतरित हुए थे। उस समय उन्होंने अपने भक्तों के गर्वा-पहरण के लिए पवनकुमार को निमित्त बनाया था।

द्वारकाधीश श्रीकृष्ण ने अपनी प्राणप्रिया सत्यभामा की प्रसन्नता के लिए स्वर्ग से पारिजात लाकर उनके आँगन में लगा दिया। बस, सत्यभामा जी के मन में अभिमान का अंकुर उत्पन्न हो गया कि मै सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और अपने स्वामी को सर्वाधिक प्रिय हूँ इतना ही नहीं, एक दिन उन्होंने श्यामसुन्दर से कह भी दिया—'क्या जनक दुलारी मुझसे अधिक सुन्दरी थी, जो आप (श्री रामावतार मे) उनके लिये वन-वन भटकते फिरे ?' श्री भगवान् ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चुप हो गये।

परम तेजस्वी चक्र ने सुरेन्द्र के वज्र को पराजित कर दिया था। महामुनि दुर्वासा उनके भय से सर्वत्र भागते फिरे। लोकालोक पर्वत का गहन तम भी उन्होंने नष्ट कर दिया था। थोड़ी-सी कठिनाई उपस्थित होते ही श्री भगवान् उनका स्मरण करते हैं, इस कारण उनके मन में भी अपने अमित बलशाली एवं अतुल पराक्रमी होने का अभिमान हो गया था।

इसी प्रकार प्रभु के निजी वाहन गरुड़ को भी अपनी शक्ति एवं वेग से उड़ने का अभिमान हो गया था। उन्होंने एकाकी सुर-समुदाय को परास्त कर अमृत-हरण किया था। सुरेन्द्र का वज्र भी उनका कुछ नहीं कर सका। देवताओं एवं दानवों के युद्ध में उन्होंने अपनी चोंच, नखों एवं पंखों के आघात से अमित पराक्रमी राक्षसों को मार डाला था। युद्ध में श्री भगवान् को संतुष्ट कर उन्होंने प्रभु की ध्वजा में स्थान प्राप्त कर लिया। वे श्री भगवान् के आसन, वाहन सेवक, सखा, ध्वजा और व्यजन आदि सब कुछ हो गये। अपने कार्यों की स्मृति से एक

दिन उनके मनमें भी अपने अप्रतिभट होने का अहंकार उत्पन्न हो गया था।

अपने इन तीनों प्रीति-भाजनों का गर्व दूर करने के लिए लीला वपु प्रभु ने हनुमान जी का स्मरण किया। भगवान् के मन में संकल्प उदित होते ही हनुमान जी तत्काल द्वारका पहुँच गये। उन्होंने राजकीय उद्यान में प्रवेश किया। प्रहरियों ने उन्हें रोकना चाहा, किंतु भूधराकार आञ्जनेय के आग्नेय नेत्रों से भयभीत होकर वे दुबक गये।

हनुमान जी उछलकर एक वृक्ष पर चढ़ गए। वे उसके मधुर फल कुछ खाते, कुछ कुतरते, कुछ वैसे ही तोड़कर फेंक देते। फिर वे कच्चे फलों को डालियों सहित तोड़कर फेंकने लगे। इस प्रकार वे एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदते, उसके फलों एवं डालियों को तोड़-तोड़कर फेंकते हुए वाटिका ध्वंस करने लगे। कुछ ही देर में समूची वाटिका तहस-नहस हो गयी। यह समाचार द्वारकाधीश के समीप पहुँचा।

वैनतेय को बुलाकर श्री भगवान् ने कहा—'विनतानन्दन! कोई बलवान् वानर द्वारावती के राजोद्यान में बलात् प्रवेश कर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर रहा है। तुम सशस्त्र सैन्य ले जाओ और उसे पकड़ कर ले आओ।'

गरुड़ को जैसे आघात लग गया। एक क्षुद्र वानर को पकड़ने के लिये प्रभु सेना साथ ले जाने के लिए कह रहे हैं? उन्होंने कह भी दिया—'प्रभो! एक बन्दर के लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ, सेना की क्या आवश्यकता है?'

'जैसे भी हो, उस वानर को पकड़ लाओ।' मुस्कराते हुए प्रभु ने आदेश दिया।

परम शक्तिशाली गरुड़ राजोद्यान में पहुँचे उन्होंने देखा,

हनुमान जी उनकी ओर पीठ किये कोई फल कुतर रहे हैं।

गरुड जी ने क्रोधपूर्वक कहा—'अरे धृष्ट वानर ! तू कौन है ? तूने यह वाटिका क्यों नष्ट कर डाली ?'

हनुमान जी ने उन्हें उपेक्षा से उत्तर दिया—'तुम तो देख ही रहे हो कि मैं वानर हूँ और मैंने कोई नवीन काम तो किया नहीं। वानर जो कुछ करते हैं, वही मैंने भी किया है।'

'अच्छा, तो तू चल महाराज के पास !' गरुड़ जी ने अपने बल के अभिमान से कहा।

'मैं किसी महाराज के पास क्यों जाऊँ ?' हनुमान जी के इतना कहते ही विष्णु वाहन ने कुपित होकर कहा—'तू सीधे चल, नहीं तो सुनले, मेरा नाम गरुड़ है।'

'अरे चलो, तुम्हारी तरह कितनी चिड़ियाँ देखी हैं मैंने। तुम में कुछ बल हो तो वह भी दिखा दो।' हनुमान जी के यों कहते ही बलाभिमानी वीर गरुड़ क्रोधाग्नि में जल उठे। उन्होंने हनुमान जी पर आक्रमण कर दिया। हनुमान जी पहले तो उनसे नन्हीं-नन्ही चिड़ियाओं की तरह क्रीड़ा करते रहे, पर गरुड जी का दुराग्रह देखकर उन्होंने उन्हें अपनी पूँछ में लपेट लिया। गरुड़ जी छटपटाने लगे। वे अपनी पूछ थोड़ी और कस देते तो गरुड़ जी सहन भी नहीं कर पाते। विनम्रता पूर्वक उन्होने कहा—'मुझे द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र जी ने भेजा है। मैं तुम्हे बुलाने आया हूँ।'

हनुमान जी ने अपनी पूंछ ढीली कर उत्तर दिया—'मैं तो कोसलेश श्री रामचन्द्र जी का भक्त हूँ। श्री कृष्णचन्द्र के पास क्यों जाऊँ ?'

'अरे ! श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीरामचंद्र दो तो है नहीं। ये दोनो एक ही है। अतएव तुम्हे उनकी सेवा में उपस्थित होना

ही चाहिये।' गरुड़जी का बलाभिमान दूर नहीं हुआ था। उन्होंने सोचा–'यदि मैं इस वानर की पूंछ की पकड़ में न आता तो यह मेरा कुछ भी नहीं कर सकता था।'

'तुम्हारा यह कथन सर्वथा सत्य है कि श्रीकृष्ण और श्रीराम एक ही हैं, किंतु मेरा मन तो धनुर्धर श्रीराम का चरणानुरागी है। इस कारण मैं अन्य किसी की सेवा में नहीं जा सकता।' हनुमान जी ने स्पष्ट उत्तर दे दिया।

गरुड़जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए। बोले–'श्रीकृष्णचंद्र की सेवा में तो तुम्हें चलना ही पड़ेगा।'

'देखो भैया गरुड़ ! मुझसे झगड़ो मत। मुझे शांतिपूर्वक फल खाने दो। तुम यहाँ से चले जाओ।' हनुमान जी का उत्तर सुनते ही गरुड़ जी उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करने लगे।

'तुम नहीं मानोगे।' हनुमान जी ने प्रभु के वाहन पर तीव्र आघात करना उचित नहीं समझा। उन्होंने गरुड़ जी को पकड़ कर धीरे से समुद्र की ओर फेंक दिया और स्वयं मलयागिरि पर चले गये।

गरुड़ सीधे मुँह के बल समुद्र में गिरे। वे क्षणभर के लिए मूर्च्छित हो गये। समुद्र का कुछ पानी भी पी गये। मूर्च्छा निवृत्ति के उपरान्त उन्हें दिग्भ्रम भी हो गया। उन्होंने मन-ही-मन्द प्रभु का स्मरण किया, तब उनकी बुद्धि स्थिर हो सकी।

भीगे पंख लज्जित गरुड़ प्रभु के समीप पहुँचे। व्यंगपूर्वक श्री कृष्ण ने पूछा–'समुद्र में स्नान करके आ रहे हैं क्या, गरुड़जी ?'

आर्त होकर गरुड़ जी प्रभु के चरणों में गिर पड़े। बोले–'प्रभो ! वह वानर असाधारण है। उसी ने मुझे पकड़ कर समुद्र

में फेंक दिया था।' इतने कहते हुए भी उनके मन में अपने वेग से उड़ने का अहंकार अवशिष्ट ही था।

भगवान् मन-ही-मन मुस्करा उठे। उन्होंने कहा—'वे श्रीराम के अनन्य भक्त हनुमान जी है। वे मलयागिरि पर चले गये है। अब तुम उनसे जाकर कहो कि 'तुम्हें श्री रामचंद्र जी बुला रहे हैं।'

गरुड़ ने श्री भगवान् के चरणों में मस्तक रखा और मलयागिरि के लिये प्रस्थित हुए। श्री भगवान् ने सत्यभामा जी से कहा—'तुम सीता का रूप धारण कर मेरे समीप बैठो। क्योंकि हनुमान को श्री सीताराम का ही रूप प्रिय है।'

फिर प्रभु ने चक्र को बुला कर आदेश दिया—'तुम द्वार पर अत्यन्त सावधान रहना। मेरी अनुमति के बिना कोई राज सदन में प्रविष्ट न होने पाये।'

सुदर्शन के चले जाने पर प्रभु स्वयं धनुर्बाणधर श्रीराम रूप में सिंहासनासीन हो गये।

गरुड़ जी अत्यंत वेगपूर्वक उड़े, किंतु वे हनुमानजी के समीप जाने में मन-ही-मन डर रहे थे। प्रभु की आज्ञा से वे मलयागिरि पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने हनुमान जी से विनय पूर्वक कहा—'द्वारका मे तुम्हें भगवान् श्री रामचंद्र जी बुला रहे हैं।'

'मेरे करुणामय प्रभु ने मुझे बुलाया है, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।' हनुमानजी ने हर्षपूर्वक कहा—'तुम चलो, मै आता हूँ।'

वेगशाली वैनतेय को मारुतात्मज का उत्तर प्रिय नहीं लगा। 'यह शाखामृग मुझसे बलवान् अवश्य है, किंतु गति में मुझ खेचर से इसकी क्या तुलना? पता नहीं, यह द्वारावती कब तक पहुँचे?' किन्तु भयवश उन्होंने हनुमान जी को कोई

उत्तर नहीं दिया और प्रभु के सम्मुख अपनी तीव्रतम गति के प्रदर्शनार्थ वेगपूर्वक उड़ चले।

पवनात्मज द्वार का पहुँचे। वे राजसदन में प्रविष्ट होना ही चाहते थे कि सुदर्शन ने उन्हें रोक दिया।

प्राणनाथ के दर्शन में व्यर्थ विलम्व होते देख हनुमान जी ने सुदर्शन को पकड़कर अपने मुखमें रख लिया और भीतर चले गये। वे भगवान श्री राम के चरणों में गिर पड़े। फिर हाथ जोड़े प्रभु के मुखारविन्द की ओर अपलक दृष्टि से देखते हुए उन्होने विनय पूर्वक पूछा—'नाथ! माता जी कहां है? आज आप किसी दासी को गौरव प्रदान कर रहे हैं?'

सत्यभामा जी लज्जित हो गयीं। उनका सौन्दर्याभिमान नष्ट हो गया। उसी समय अत्यन्त वेगपूर्वक उड़ने के कारण हांफते-कांपते गरुड़जी प्रभु के समीप पहुँचे तो वहां पहले से ही हनुमान जी को विद्यमान देखकर उनका मुख नीचा हो गया। उनका वेगपूर्वक उड़ने का अभिमान भी गल गया।

मुस्कराते हुए भगवान् श्रीराम रूपधारी द्वारकेश ने हनुमान जी से पूछा—'तुम्हें राज-सदन में प्रविष्ट होते समय किसी ने रोका तो नहीं?'

हनुमानजी ने विनय पूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! द्वार पर सहस्रार मुझे आपके चरणों में उपस्थित होने में व्यवधान उत्पन्न कर रहा था। व्यर्थ विलम्ब होते देखकर मैंने उसे अपने मुंह में रख लिया।'

हनुमान जी ने चक्र को मुंह से निकाल कर प्रभु के सामने रख दिया। चक्र श्रीहत हो गये थे।

तीनों का गर्व चूर्ण कर हनुमान जी ने अपने परम प्रभु

के चरणों में प्रणाम किया और उनकी अनुमति से मलयाचल के लिये प्रस्थित हो गये।

इसी प्रकार एक बार हनुमान जी ने महाधनुर्धर अर्जुन का भी गर्व-हरण किया था। वह कथा अत्यन्त संक्षेप में इस प्रकार है—

बात है द्वापर के अन्त की। एक दिन अर्जुन एकाकी ही सारथि के स्थान पर स्वयं बैठकर अपना रथ हाँकते अरण्य में घूमते हुए दक्षिण दिशा में चले गये। मध्याह्नकाल हो जाने पर उन्होंने रामेश्वर के धनुष्कोटि-तीर्थ में स्नान किया और फिर कुछ गर्वपूर्वक इधर-उधर घूमने लगे। उसी समय उन्होंने एक पर्वत के ऊपर सामान्य वानर के रूप में महावीर हनुमानजी को देखा। उनका शरीर सुन्दर पीले रंग के रोएँ से सुशोभित था और वे राम-नाम का जप कर रहे थे।

उन्हें देखकर अर्जुन ने पूछा—अरे वानर! तुम कौन हो और तुम्हारा नाम क्या है?'

हँसते हुए हनुमान जी ने उत्तर दिया—'मैं समुद्र पर शिलाओं का सौजन विस्तृत सेतु निर्माण कराने वाले प्रभु श्री राम का सेवक हनुमान हूँ।'

अर्जुन ने गर्व में भरकर कहा—'समुद्र सेतु तो कोई भी महाधनुर्धर अपने वाणो से बना लेता। श्रीराम ने व्यर्थ ही प्रयास किया।'

हनुमान जी ने तुरन्त कहा—'वाण का सेतु हमारे जैसे वानरों का भार नहीं सह सकता था, इसी कारण प्रभु ने शर-सेतु-के निर्माण का विचार नहीं किया।'

पाण्डुनन्दन अर्जुन बोले—'यदि वानर भालुओं के आवागमन से सेतु टूट जाय, तब तो 'धनुर्विद्या ही कैसी? तुम अभी मेरी

धनुर्विद्या का चमत्कार देखो। मै अपने वाणों से समुद्र पर शत योजन लम्बा सेतु निर्माण कर देता हूं। तुम उस पर आनन्द पूर्वक उछल-कूद करो।' *

हनुमानजी हंस पड़े। बोले—'यदि तुम्हारा बनाया हुआ शर-सेतु मेरे अंगूठे के भार से ही टूट जाय, तब तुम क्या करोगे?'

गर्वपूरित अर्जुन प्रतिज्ञा कर वैठे—'यदि तुम्हारे भार से सेतु टूट गया तो मै जिवित ही चिताकी अग्नि में जल मरूंगा। अब तुम भी कोई प्रण करो।'

हनुमान जी ने कहा—'यदि तुम्हारे वाणों से निर्मित सेतु मेरे अंगुष्ठ-चाप से नहीं टूटा तो मैं जीवन भर तुम्हारे रथ की ध्वजा के समीप बैठकर तुम्हारी सहायता करता रहूँगा।'

'अच्छी बात है।' कहते हुए पार्थ ने अपना विशाल गाण्डीव धनुष हाथ में लिया और कुछ ही क्षणों में महान् नीलोदधि के ऊपर अपने बाणों से सौ योजन विस्तृत सुदृढ़ सेतु तैयार कर दिया। तब उन्होंने महावीर हनुमान से कहा—'वानरराज! अब तुम इच्छानुसार इस पर उछल-कूदकर देख लो।'

हनुमान जी ने हँसते हुए उस सेतु पर अपना अँगूठा रखा ही था कि वह विस्तृत शर-सेतु तड़तड़ाकर टूटा और समुद्र में डूब गया।

महाधनुर्धर का मुख मलिन हो गया, किंतु हनुमान जी पर गन्धर्वों और देवताओं का समुदाय स्वर्गीय सुमनों की वृष्टि करने लगा।

दुःखी और उदास अर्जुन ने वहीं समुद्र-तट पर चिता

तैयार की और हनुमानजी के मना करने पर भी वे उसमें कूदने के लिए तैयार हो गये।

उसी समय एक ब्रह्मचारी ने आकर अर्जुन से चिता में कूदने का कारण पूछा। अर्जुन ने उन्हें शर-सेतु के सम्बन्ध में अपनी प्रतिज्ञा के साथ पूरी घटना सुना दी।

ब्रह्मचारी बोले—'प्रतिज्ञा-पालन तो अनिवार्य ही है, किंतु साक्षी के बिना तुम लोगों की बाजी का कोई अर्थ नहीं। अब मैं यहाँ साक्षी के रूप में उपस्थित हूँ। तुम अपने बाणों से सेतु निर्माण करो और ये कपिराज उसे अंगुष्ठ-भार से डुबा दें, तब मैं उचित निर्णय दूँगा।'

'ठीक है'—दोनों ने कहा और अर्जुन ने अपने बाणों से तुरन्त शत योजन विस्तृत सेतु निर्माण कर दिया। हनुमान जी ने उसे अँगूठे से दबाया, किंतु सेतु का कुछ नहीं बिगड़ा। हनुमान जी चकित हो गये। उन्होंने अपने पैरों, हाथों और घुटनों के बल से भी उसे दबाया, पर वह सुदृढ़ सेतु तिल भर भी टस-से-मस नहीं हुआ।

हनुमान जी सोचने लगे—'जो शर-सेतु मेरे अङ्गुष्ठ का सामान्य भार भी नहीं सह सका था, वही अब मेरा सम्पूर्ण भार सह ले रहा है। निश्चय ही इसमें कोई-न-कोई हेतु है।' भगवान श्री राम के अनन्य सेवक ज्ञानिनामग्रण्य हनुमान जी ने अर्जुन से कहा—'पाण्डुनन्दन! इन ब्रह्मचारी की सहायता से मैं आपसे पराजित हो गया। ब्रह्मचारी के वेष मे स्वयं श्री भगवान् ने ही पधारकर तुम्हारी रक्षा की है। इन्होंने सेतु के नीचे अपना चक्र लगा दिया है। त्रेता में इसी वेष मे मेरे स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने द्वापर के अन्त मे मुझे श्रीकृष्ण के रूप में

दर्शन देने का वरदान दिया था। आपके शर-सेतु के निमित्त से इन्होंने अपना वरदान भी पूरा कर दिया।'

सहसा वटु के स्थान पर वंशीविभूषित पीताम्बरधारी नवनीरदवपु श्री कृष्णचन्द्र का दर्शन होने लगा। हनुमान जी ने उनके चरणों में प्रणाम किया और मयूरमुकुटी ने उन्हें आलिङ्गन बद्ध कर लिया।

अर्जुन चकित होकर अपने रक्षक प्राणप्रिय सखा की लीला देख रहे थे। उनके सम्मुख ही श्रीकृष्ण की आज्ञानुसार चक्र शर-सेतु से बाहर निकल कर अपने स्थान के लिये चला गया और अर्जुन के द्वारा निर्मित सेतु विशाल जलधि की तरंगों में विलीन हो गया।

अर्जुन का गर्व नष्ट हो गया और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हनुमान जी अर्जुन के रथ पर ध्वजा के समीप रहने लगे। इसी कारण अर्जुन 'कपिध्वज' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

महाभारत के युद्ध में महाधनुर्धर अर्जुन के बाणों के आघात से विपक्षी वीरों के रथ अत्यधिक दूर जा गिरते थे, किंतु अर्जुन के रथ को पीछे फेंकने की सामर्थ्य किसी योद्धा के बाण में नहीं थी। एक बार वीरवर कर्ण के शराघात से अर्जुन का रथ थोड़ा ही पीछे खिसका था कि श्रीकृष्ण बोल उठे—'वाह ! निश्चय ही कर्ण शूर-वीर और महाधनुर्धर है।'

अर्जुन खिन्न हो गये। उन्होने मधुसूदन से पूछ भी लिया—'प्रभो ! मेरे बाण के आघात से शत्रुओं के रथ कितनी दूर चले जाते हैं, तब आप कुछ नहीं बोलते; किंतु कर्ण के द्वारा मेरा रथ तनिक-सा पीछे सरका तो आप उसकी प्रशंसा करने लगे।'

जनार्दन ने तुरंत उत्तर दिया—'पार्थ ! तुम्हारे रथ पर महावीर हनुमान बैठे हैं। उनके रहते हुए भी तुम्हारे रथ का

पीछे हट जाना कर्ण की वीरता का द्योतक है। यदि आञ्जनेय आसीन न होते तो तुम्हारा रथ कभी का भस्म हो गया होता।'

भक्तवर हनुमान और शनि

भक्तवर हनुमान श्रीराम-कथा के अनन्य प्रेमी हैं। परम प्रभु श्रीराम की मधुर लीला कथा श्रवण करते ही उनका शरीर पुलकित हो जाता है, उनके नेत्र प्रेमाश्रु से भर जाते हैं और उनकी वाणी गद्गद हो जाती है। उन्हें अलौकिक आनन्द की उपलब्धि होती है, इस कारण जहाँ भी श्रीराम-कथा होती है, श्रीराम-चरण-चञ्चरीक हनुमान जी वहाँ उपस्थित रहते हैं। और जब अपने प्राणाराध्य की कथामृत-सुधा के पान का अवसर नहीं रहता, तब वे अपने प्रभु के ध्यान में तल्लीन हो जाते हैं।

एक बार की बात है। दिनान्त समीप था। सूर्यदेव अस्ताचल के समीप पहुँच चुके थे। शीतल-मन्द समीर बह रहा था। भक्तराज हनुमान राम-सेतु के समीप ध्यान में अपने परमप्रभु श्रीराम की भुवन मोहन झाँकी करते हुए आनन्द-विह्वल थे। उनके रोम-रोम पुलकित थे। ध्यानावस्थित आञ्जनेय को बाह्य जगत् की स्मृति भी न थी।

उसी समय सूर्य-पुत्र शनि समुद्र-तट पर टहल रहे थे। उन्हें अपनी शक्ति एवं पराक्रम का अत्यधिक अहंकार था। वे मन-ही-मन सोच रहे थे 'मुझमें अतुलनीय शक्ति है। सृष्टि में मेरी समता करने वाला कोई नहीं है। समता की बात तो दूर, मेरे आगमन के संवाद से बड़े-बड़े रणधीर एवं पराक्रमशील मनुष्य ही नहीं, देव-दैत्य तक भी काँप उठते हैं, व्याकुल होने लगते हैं। मैं क्या करूँ, किसके पास जाऊँ, जहाँ दो हाथ कर सकूँ? मेरी शक्ति का कोई उपयोग नहीं हो रहा है।'

इस प्रकार विचार करते हुए शनि की दृष्टि ध्यानमग्न श्रीराम भक्त हनुमान पर पड़ी। उन्होंने वज्राङ्ग महावीर को पराजित करने का निश्चय किया। युद्ध का निश्चय कर शनि आञ्जनेय के समीप पहुँचे। उस समय सूर्यदेव की तीक्ष्णतम किरणों में शनि का रंग अत्यधिक काला हो गया था। भीषणतम आकृति थी उनकी।

पवनकुमार के समीप पहुँचकर अतिशय उद्दण्डता का परिचय देते हुए शनि ने अत्यन्त कर्कश स्वर में कहा--'बंदर! मैं प्रख्यात शक्तिशाली शनि तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हूँ और तुमसे युद्ध करना चाहता हूँ। तुम पाखण्ड त्यागकर खड़े हो जाओ।'

तिरस्कार करने वाली अत्यन्त कटुवाणी सुनते ही भक्त-राज हनुमान ने अपने नेत्र खोले और बड़ी ही शालीनता एवं शान्ति से पूछा--'महाराज! आप कौन हैं और यहाँ पधारने का आपका उद्देश्य क्या है?'

शनि ने अहंकार पूर्वक उत्तर दिया--'मैं परम तेजस्वी सूर्य का परम पराक्रमी पुत्र शनि हूँ। जगत् मेरा नाम सुनते ही काँप उठता है। मैंने तुम्हारे बल-पौरुष की कितनी गाथाएँ सुनी हैं। इसलिए मैं तुम्हारी शक्ति परीक्षा करना चाहता हूँ। सावधान हो जाओ, मै तुम्हारी राशि पर आ रहा हूँ।'

अञ्जनानन्दन ने अत्यन्त विनम्रता पूर्वक कहा--'शनि-देव! मैं वृद्ध हो गया हूँ और अपने प्रभु का ध्यान कर रहा हूँ। इसमें व्यवधान मत डालिए। कृपापूर्वक अन्यत्र चले जाइये।'

मदमत्त शनि ने सगर्व कहा--'मै कहीं जाकर लौटना नहीं

जानता और जहाँ जाता हूँ, वहाँ अपना प्राबल्य और प्राधान्य तो स्थापित कर ही देता हूँ।'

कपिश्रेष्ठ ने शनिदेव से बार-बार प्रार्थना की—'महात्मन! मै वृद्ध हो गया हूँ। युद्ध करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मुझे अपने भगवान् श्रीराम का स्मरण करने दीजिये। आप यहाँ से जाकर किसी और वीर को ढूंढ़ लीजिये। मेरे भजन ध्यान में विघ्न उपस्थित मत कीजिये।'

'कायरता तुम्हें शोभा नहीं देती।' अत्यन्त उद्धत शनि ने मल्लविद्या के परमाराध्य वज्राङ्ग हनुमान की अवमानना के साथ व्यंग्यपूर्वक तीक्ष्ण स्वर में कहा—'तुम्हारी स्थिति देखकर मेरे मन में करुणा का संचार हो रहा है, किंतु मै तुमसे युद्ध अवश्य करूँगा।'

इतना ही नहीं, शनि ने दुष्टग्रहनिहन्ता महावीर का हाथ पकड़ लिया और उन्हें युद्ध के लिए ललकारने लगे। हनुमान ने झटक कर अपना हाथ छुड़ा लिया। युद्धलोलुप शनि पुनः भक्त-वर हनुमान का हाथ पकड़ कर उन्हें युद्ध के लिये खींचने लगे।

'आप नहीं मानेंगे।' धीरे से कहते हुए पिशाच ग्रहघातक कपिवर ने अपनी पूंछ बढ़ाकर शनि को उसमें लपेटना प्रारम्भ किया। कुछ ही क्षणों में अविनीत सूर्य-पुत्र क्रोधसंरक्त लोचन समीरात्मज की सुदृढ़ पुच्छ में आकण्ठ आबद्ध हो गये। उनका अहंकार, उनकी शक्ति एवं उनका पराक्रम व्यर्थ सिद्ध हुआ। वे सर्वथा अवश, असहाय और निरुपाय होकर दृढ़तम बन्धन की पीड़ा से छटपटा रहे थे।

'अब राम-सेतु की परिक्रमा का समय हो गया। अञ्जना नन्दन उठे और दौड़ते हुए सेतु की प्रदक्षिणा करने लगे। शनि देव की सम्पूर्ण शक्ति से भी उनका बन्धन शिथिल न हो सका।

भक्तराज हनुमान के दौड़ने से उनकी विशाल पूंछ वानर-भालुओं द्वारा रखे गये शिलाखण्डों पर गिरती जा रही थी। वीरवर हनुमान दौड़ते हुए जान-बूझकर भी अपनी पूंछ शिला-खण्डों पर पटक देते थे।

शनि की बड़ी अद्भुत एवं दयनीय दशा थी। शिलाखण्डों पर पटके जाने से उनका शरीर रक्त से लथपथ हो गया। उनकी पीड़ा की सीमा नहीं थी और वेग से हनुमान की परिक्रमा में कहीं विराम नहीं दीख रहा था। तब शनि अत्यन्त कातर स्वर में प्रार्थना करने लगे—'करुणामय भक्तराज! मुझपर कृपा कीजिये। अपनी उद्दण्डता का दण्ड मैं पा गया। आप मुझे मुक्त कीजिए। मेरा प्राण छोड़ दीजिये।'

दयामूर्ति हनुमान खड़े हुए। शनि का अङ्ग-प्रत्यङ्ग लहू-लुहान हो गया था। असह्य पीड़ा हो रही थी उनकी रग-रग मे। विनीतात्मा समीरात्मज ने शनि से कहा—'यदि तुम मेरे भक्त की राशि पर कभी न जाने का वचन दो तो मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूँ और यदि तुमने ऐसा किया तो मैं तुम्हें कठोरतम दण्ड प्रदान करूँगा।'

'सुरवन्दित वीरवर! निश्चय ही मैं आपके भक्त की राशि पर कभी नहीं जाऊँगा।' पीड़ा से छटपटाते हुए शनि ने अत्यन्त आतुरता से प्रार्थना की—'आप कृपा पूर्वक मुझे शीघ्र बन्धन-मुक्त कर दीजिये।'

शरणागत वत्सल भक्तप्रवर हनुमान ने शनि को छोड़ दिया। शनि ने अपना शरीर सहलाते हुए गर्वापहारी मारुता-त्मज के चरणो मे सादर प्रणाम किया और वे चोट की असह्य पीड़ा से व्याकुल होकर अपनी देह पर लगाने के लिये तेल मांगने

लगे। उन्हें जो तेल प्रदान करता, उसे वे संतुष्ट होकर आशिष देते। कहते हैं, इसी कारण अब भी शनिदेव को तेल चढ़ाया जाता है।

श्रेष्ठ संगीतज्ञ और महान् त्यागी

आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी हनुमान जी महान् संगीतज्ञ और गायक भी हैं। इनके मधुर गायन को सुनकर पशु, पक्षी, स्थावर और जङ्गम सभी मुग्ध हो जाते हैं, एक बार की बात है। एक अतिशय सुन्दर स्वच्छ जलाशय के समीप महान् संगीत-सम्मेलन का आयोजन हुआ। देवता, ऋषि और दानव सभी संगीत प्रेमी वहाँ एकत्र थे। भगवान पार्वती वल्लभ एवं देवर्षि नारद आदि गायन कर रहे थे और अन्य देव, ऋषि तथा दैत्य भी उन्हे योग-दान दे रहे थे। उसी समय पवनकुमार हनुमानजी ने अत्यन्त मधुर स्वर में गाना प्रारम्भ किया। हनुमान जी ने संगीत क्या आरम्भ किया, मानो अमृत-वृष्टि होने लगी। फिर तो अन्य गायकों एवं वाद्यकों के मुख म्लान हो गये। वे हनुमान जी की स्वर-लहरी पर मुग्ध होकर स्वयं चुप हो गये और अत्यन्त शान्तिपूर्वक उस परम मधुरिम स्वर-लहरी में झूम उठे। उनके तन, मन, प्राण ही नहीं, रोम-रोम हनुमान जी के सुधा सदृश गीत के श्रवण करने में तल्लीन हो गये। हनुमान जी का मधुरिम स्वर गूंज रहा था।

इन महामहिम हनुमान जी के जीवन में त्याग-ही-त्याग भरा है। अपने आराध्य श्री रघुनाथ जी की विशुद्ध प्रीति, उनकी लीला-कथा का श्रवण एवं उनके मङ्गलमय नाम-कीर्तन के अतिरिक्त इन्हे और कुछ अभीष्ट नहीं।

यशःकामना का त्याग कितना कठिन होता है? स्त्री-पुत्र,

घर-द्वार, अपार सम्पत्ति ही नहीं, यश के लिये प्राण का भी त्याग किया जा सकता है, किन्तु उस यश का त्याग सहज नहीं।

गौराङ्ग महाप्रभु—नाम-संकीर्तन के प्राण. चैतन्य देव के मित्र ने महाप्रभु की कृति देखी तो वे दुःखी ही नहीं हुए, उनके नेत्रों से आंसू बह चले। बोले—'इस महान् ग्रन्थ के सम्मुख मेरी न्यायबोधिनी सर्वथा नगण्य सिद्ध हो जायगी। इसे कोई नहीं पूछेगा।'

तत्क्षण महाप्रभु ने अपना अनमोल ग्रन्थ गङ्गा मैया के अङ्क में विसर्जित कर दिया। उनका यह महान् त्याग आजतक उनके ग्रन्थ से भी अधिक उनकी उज्जवल कीर्ति को बढ़ा रहा है। किन्तु इस महानतम आदर्श की स्थापना श्री रघुनाथ जी के अमलकमल-चरणानुरागी पवनकुमार ने युगों पूर्व ही कर दी थी।

कथाश्रवणरूपा भक्ति के प्रथम एवं प्रधान आचार्य अञ्जनानन्दन को जब थोड़ा-सा अवकाश मिलता, तब वे समीपस्थ पर्वत पर चले जाते और वहां के स्फटिक-तुल्य उज्जवल शिलाओं पर अपने परम प्रभु का स्मरण-चिन्तन करते हुए स्वान्तःसुखाय उनका चरित्र लिखते जाते। चरित्र पूरा हो गया। कहते हैं, हनुमान जी के आशीर्वाद एवं पद-पद पर उनके सहयोग से श्री तुलसीदास जी ने लोकप्रिय रामचरितमानस की रचना की थी, फिर स्वयं हनुमान जी जैसे श्री रघुनाथजी के ज्ञानमूर्ति सेवक के द्वारा तन्मयता पूर्वक लिखा गया अपने आराध्य का चरित्र किस कोटि का रहा होगा, सोचना भी सहज नहीं।

यह समाचार महर्षि वाल्मीकि को मिला। हनुमानजी के समीप पहुँच कर उन्होंने निवेदन किया 'आपके द्वारा रचित रामचरित को देखने की मेरी इच्छा है।'

संकोची हनुमान जी क्या उत्तर देते ?, वे महर्षि को अपने

कंधे पर बैठाकर पर्वत पर पहुँचे। पवनकुमार एक ओर खड़े होकर हाथ जोड़े अपने प्रभु के स्मरण में तल्लीन हो गये और महर्षि उनके द्वारा लिखे गये रामचरित का प्रत्येक शब्द ध्यान पूर्वक देखने लगे महर्षि वाल्मीकि जैसे-जैसे उस रामचरित को देखते जाते, उनका मुख मलिन होता जाता और सम्पूर्ण रामचरित पढ़ लेने पर तो वे अत्यन्त उदास हो गये।

उन्होंने श्रीरामभक्त हनुमानजी की ओर देखकर कहा— 'पवन पुत्र! भगवान् श्रीराम का श्रेष्ठतम पावन चरित्र है यह! अब इससे उच्चकोटि का भी श्री रामचरित्र त्रिकाल में भी सम्भव नहीं। मैं आप से एक वर की याचना करना चाहता था।'

'आज्ञा करें। सेवक प्रस्तुत है।' हनुमान जी का उत्तर सुनते ही महर्षि वाल्मीकि ने नतमस्तक होकर धीरे-धीरे कहा— 'मेरी रामायण का सर्वत्र प्रचार हो गया है और यशःकामना के कारण मुझे घृणित स्वार्थ अशान्त कर रहा है। आपके इस रामायण के सम्मुख मेरी रामायण व्यर्थ सिद्ध · ।'

'इतनी-सी बात के लिए चिन्ता उचित नहीं' –महर्षि का वाक्य पूरा होने के पूर्व ही हनुमान जी बोल उठे।

हनुमान जी ने तुरन्त शिलाओं पर लिखे गये सम्पूर्ण रामचरित को एकत्र किया और फिर उन्हें लेकर एक कंधे पर महर्षि को बैठाया और समुद्र की ओर चल पड़े। हनुमान जी ने अपने आराध्य के उस महत्तम लीला चरित्र को महर्षि के देखते-ही-देखते समुद्र में डुबाते हुए कहा—'अब इसे कभी कोई नहीं पढ सकेगा।'

यह सर्वथा निःस्पृह हनुमान जी का सहज त्याग था। उन्होंने इसे कभी त्याग नहीं समझा, किन्तु महर्षि के नेत्र भर

आये। रुँधे कण्ठ से उन्होंने कहा—'मारुतात्मज ! मेरी इस घृणित स्वार्थान्धता को जगत् अनादर पूर्वक स्मरण करेगा, किन्तु आप का धवल यश आपकी निर्मल भगवद् भक्ति के साथ उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायेगा।'

महर्षि बाल्मीकि गद्‌गद कण्ठ से भक्तराज हनुमान का स्तवन करने लगे।

यत्र-यत्र

परम भागवत श्री हनुमानजी किम्पुरुष वर्ष में विराजित सीताहृदयाभिराम श्री रामचन्द्र जी के चरण कमलों के समीप अत्यन्त श्रद्धापूर्वक बैठते हैं और किन्नरों के साथ अनन्य भक्ति-पूर्ण हृदय से उनकी उपासना करते हैं। वहां अन्य गन्धर्वो के साथ आर्ष्टिषेण दयाधाम श्रीराम का मङ्गलमय गुणगान किया करते हैं। उसे हनुमान जी अत्यन्त भक्ति पूर्वक श्रवण करते हैं। वे स्वयं इस मन्त्र का जप करते हैं—

'हम ॐकारस्वरूप, पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीराम को नमस्कार करते हैं, आप में सत्पुरुषों के लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधन-तत्पर, साधुता की परीक्षा के लिये कसौटी के समान और अत्यन्त ब्राह्मण भक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज श्रीराम को हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।' और वे पवनपुत्र भाव-विभोर होकर इस प्रकार स्तवन करते रहते हैं—

'भगवन् ! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूप के प्रकाश से गुणों के कार्य रूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओं का निरसन करने वाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त,

शुद्ध-बुद्धि से ग्रहण किये जाने योग्य, नाम रूप से रहित और अहंकार शून्य हैं, मैं आपकी शरण में हूँ।

'प्रभो ! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसों के वध के लिए ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्यों को शिक्षा देना है अन्यथा अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वर को सीताजी के वियोग में इतना दुःख कैसे हो सकता था ?

'आप साधु पुरुषों के आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव है, त्रिलोकी की किसी भी वस्तु में आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीता जी के लिए मोह को ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मण का त्याग ही कर सकते हैं।

'आपके ये व्यापार केवल लोक-शिक्षा के लिये ही हैं। लक्ष्मणाग्रज ! उत्तम कुल में जन्म, सुन्दरता, वाक-चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमें से कोई भी गुण आपकी प्रसन्नता का कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखाने के लिये ही आपने इन सब गुणों से रहित हम वनवासी वानरों से मित्रता की है।

'देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य कोई भी हो, उसे सब प्रकार से श्रीराम रूप आपका ही भजन करना चाहिये, क्योंकि आप नर रूप में साक्षात् श्री हरि ही हैं और थोड़े किये को भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्य धाम को सिधारे थे, तब समस्त उत्तर कोसल-वासियों को भी अपने साथ ही ले गये थे।'

यद्यपि परम विनीतात्मा महादेवात्मज हनुमान जी का किम्पुरुषवर्ष और साकेत-धाम प्रिय स्थायी निवास है, किन्तु कथाश्रवणरूपा भक्ति के सर्वप्रथम एवं प्रधान आचार्य, जगत्पावन,

तत्त्वज्ञ एवं महायोगी हनुमान जी ने विपत्ति के अवसर का उल्लेख करते हुए प्रभु से निवेदन करते यह कहा था—

'कह हनुमंत विपत्ति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥'

इस कारण भक्तिसुधापानेच्छु हनुमान जी की भक्ति से प्रसन्न होकर जब श्री राघवेन्द्र ने उनसे कहा—'हनुमान! मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर की याचना करो। तुम त्रैलोक्य-दुर्लभ वर भी मांगो तो मैं उसे निश्चय दूंगा।'

प्राणधन श्री रघुनाथ जी की प्रसन्नता से हनुमान जी पुलकित हो गये। उन्होंने प्रभु के सम्मुख अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा—'हे श्रीराम जी! आपका नाम स्मरण करते हुए मेरा चित्त तृप्त नहीं होता। अतः मैं निरन्तर आपका नाम स्मरण करता हुआ पृथ्वी पर रहूँ। हे राजेन्द्र! मेरा मनोवाञ्छित वर यही है कि जब तक संसार में आपका नाम रहे, तब तक मेरा शरीर भी रहे।

प्रसन्न नयनाभिराम श्रीराम ने कह दिया—'ऐसा ही हो, तुम जीवन्मुक्त होकर संसार में सुखपूर्वक रहो। कल्प का अन्त होने पर तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करोगे, इसमें संदेह नहीं।'

कन्दर्पकोटिलावण्य भद्र रूप श्रीरघुनाथजी के हनुमानजी को वर प्रदान करते ही निखिल भुवनेश्वरी माता सीता ने भी अपने लाल पवनपुत्र को वर प्रदान करते हुए कहा -'हे मारुते! तुम जहाँ कहीं भी रहोगे, वहीं मेरी आज्ञा से तुम्हारे पास सम्पूर्ण भोग उपस्थित हो जायँगे।'

समस्त सुरवन्दित, ज्ञानमय, प्रेममय, रुद्रांश, कपिसत्तम माता सीता और परम प्रभु श्रीराम के वचन सुन अपरिसीम

आनन्द-सिन्धु में निमग्न हो गये। उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आये और वे श्रीराम के भुवनपावन चरणों में लेट गये।

करुणावारिधि परम प्रभु जगती के मनुष्यों को सर्वथा निराधार, असहाय और निरुपाय नहीं छोड़ सकते थे, इस कारण उन्होंने अव्यक्त होते समय श्रीहनुमानजी की इच्छापूर्ति के साथ-साथ उन्हें भक्तों की सेवा, सहायता एवं रक्षा के लिए भी नियुक्त किया। इस प्रकार ये कपिसत्तम निखिल भुवनपति भगवान् श्रीराम के प्रतिनिधि हुए—सच्चे प्रतिनिधि। समस्त सुरवन्दित मुक्तिदाता प्रभु का प्रतिनिधि सामान्य सुर या नर तो हो ही नहीं सकता। उस महनीय पद के सर्वथा अनुरूप तो अनन्त-मंगल, संसृतिनाशन, अचलोद्धारक, दयामूर्ति, हेमवर्ण हनुमानजी ही हैं। ये हनुमानजी भक्तों की, दुःखियों की, पीड़ितों की, आर्तों की पुकार सुनते ही दौड़ पड़ते हैं—यह कहना भी उचित नहीं, क्योंकि ये सर्व समर्थ, करुणासिन्धु, भक्तवत्सल तो सर्वत्र विद्यमान एवं घट-घटवासी हैं, अतः तुरन्त सहायता करते हैं! इनकी गदा समस्त पाप-ताप को नष्ट कर देती है। इनके 'महावीर हनुमान'- नाम के उच्चारण मात्र से ही शाकिनी, डाकिनी, भूत, प्रेत और पिशाच आदि पलायित हो जाते हैं।

ये सर्वकलुषनाशक आञ्जनेय यद्यपि सर्वव्यापक हैं, किन्तु जहाँ-जहाँ श्री भगवान् का नाम-कीर्तन होता है, जहाँ श्रीरघुनाथ जी की कथा होती है, वहाँ-वहाँ ये तत्क्षण उपस्थित हो जाते हैं—

'जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजी (के नाम, रूप, गुण, लीला आदि) का कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ मस्तक से बँधी हुई अंजलि लगाये और नेत्रों में आँसू भरे हनुमानजी उपस्थित रहते हैं, राक्षसवंश के कालरूप उन मारुति को नमस्कार करना चाहिए।'

कथा और कीर्तन—विद्वत्ता, मधुर स्वर और लय आदि

से मारुति को कुछ लेना-देना नहीं, उन्हें तो बस, श्रीराघवेन्द्र की लीला-कथा या उनके नाम-गुण का कीर्तन होना चाहिए, वहां वे अवश्य ही उपस्थित हो जायेंगे। इस कारण कथा और कीर्तन में काम, क्रोधादि वासनाओं को त्याग कर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक कथा-श्रवण करें, कीर्तन में सहयोग दें और प्रत्येक दृष्टि से अव्यवस्था से बचें। ध्यान रखें, परमाराध्य हनुमानजी आपके सम्मुख बैठे हैं।

शरणागतवत्सल हनुमानजी की उपासना शीघ्र फल प्रदान करती है। ये यथाशीघ्र संकट दूर कर देते हैं। इनका 'संकट-मोचन' नाम प्रसिद्ध ही है। पीड़ितों के एकमात्र आश्रय हनुमान जी के वीर और दास–दोनों रूपों की उपासना होती है। विपत्ति-निवारणार्थ वीर-रूप की और सुख-प्राप्त्यर्थ दास रूप की आराधना की जाती है। दोनों प्रकार की उपासना-आराधना के पृथक्-पृथक् नियम और विधान हैं। वीर-रूप के लिये राजस तथा दास-रूप के लिये सात्विक उपचार कहे गये हैं। मन्त्रानुष्ठान के 'अनुष्ठान-प्रकाश,' 'मन्त्रमहोदधि,' 'मन्त्रमहार्णव,' 'मन्त्रसंग्रह' और 'हनुमत्-उपासना-कल्पद्रुम' आदि अनेक ग्रन्थ है।

हनुमानजी की सकाम भाव से तान्त्रिक पद्धति के अनुसार उपासना करने वालों को निम्नलिखित सावधानी अवश्य रखनी चाहिये –

१–उपासना-काल में यथासाध्य उन्हें पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिये, अन्यथा उपासकों के लिए अनिष्ट की सम्भावना रहती है। ऐसे अनेक उदाहरण आज भी प्रत्यक्ष देखे गये हैं कि इस नियम की अवहेलना करके जिन्होंने हनुमानजी की सकाम उपासना की है, वे इष्ट की प्राप्ति में सफल तो हुए

ही नहीं, भयंकर शारीरिक व्याधि से पीड़ित हुए अथवा दैवी प्रकोप से ग्रस्त हो गये हैं।

२—तान्त्रिक मन्त्रों का केवल पुस्तक पढ़कर अनुष्ठान नहीं करना चाहिये। किसी सच्चे श्रीरामभक्त अथवा हनुमानजी के भक्त की आज्ञा प्राप्त कर इस दिशा में अग्रसर होना उपयोगी होता है।

निश्चय ही हनुमानजी सिद्धिदाता हैं। उनकी उपासना से सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है, किन्तु जो इस भवाटवी से पार जाने के लिए व्यग्र हैं, जो जन्म-मरण से भयभीत होकर आत्यन्तिक शान्ति के लिए आतुर है, जो मुक्ति-पथ के पथिक है, उन्हे सिद्धियाँ अभीष्ट नहीं। वे तो आयी हुई सिद्धियों को भी लौटा देते है। वे भली-भाँति जानते है कि ये सिद्धियाँ सुखद नहीं, अपितु आत्मसाक्षात्कार में, प्रभुपद-प्राप्ति में तथा जीवन के चरम और परम उद्देश्य की प्राप्ति से भयानक विघ्नरूप है। अतएव वे इनसे सदा सावधान रहते है। यहाँ तक कि उनकी ओर देखना भी अपराध मानते है।

निश्चय ही हनुमानजी वाञ्छा सिद्ध करते है। वे दुःखी, पीड़ित एवं आर्त के आह्वान पर तुरन्त दौड़ पड़ते है। वे हृदय से चाहते है कि प्राणियों के दुःख-दारिद्र्य, आधि-व्याधि तथा समस्त विपत्तियाँ सदा के लिए मिट जायँ। वे परम प्रभु के शाश्वत सुख-शान्ति-निकेतन चरण कमलों के दर्शन कर निहाल हो जायें, किन्तु जब वे उन्हे तुच्छतम नश्वर सांसारिक कामनाओं और वासनाओं की पूर्ति के लिए आतुर और व्यग्र देखते है तो निराश और उदास हो जाते है। अतएव सर्वोत्तम तो यही है कि सत्यरूप, जयप्रद, पवननन्दन की उपासना आत्म-कल्याण के

लिये, प्रभु-प्राप्ति के लिये ही की जाय और जो इसके लिये हनुमानजी का आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें उनकी कृपा से यथाशीघ्र सफलता प्राप्त होती है और वे निहाल हो जाते हैं। उनका जीवन और जन्म सफल हो जाता है।

कृपामूर्ति

सकल सद्‌गुणगणनिलय अञ्जनानन्दन दयाधाम हैं। कृपा की मूर्ति हैं। जो पवनकुमार अपने परम प्रभु का दर्शन करते ही आनन्दसिन्धु में निमग्न हो जाते हैं, वे श्रीरामचरणानुरागी कल्पान्त तक इस भूतल पर क्यों रहना चाहते ? निश्चय ही वे श्रीराम के मंगलमय नाम एवं चरित्र-कथा के अनुपम प्रेमी हैं, किंतु इसके साथ ही पृथ्वी के नर-नारियों के प्रति उनकी सहज कृपा ही इसमें हेतु है। पाण्डुनन्दन भीमसेन ने अपने अग्रज हनुमानजी की कथा ही सुनी थी। उनके दर्शन की उन्हें कल्पना भी नहीं थी, किंतु श्रीकृष्ण-प्रीति-भाजन भीमसेन के अनिष्ट की कल्पना से ही हनुमानजी ने उन्हें उत्तराखण्ड के देवमार्ग में जाने से रोका और उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर कृतार्थ भी कर दिया।

पाण्डुनन्दन भीमसेन तो उनके अनुज थे, त्रेता में श्रीरघुनाथ जी के अव्यक्त होने के समय से ही दयामय हनुमानजी भगवद्भक्त नर-नारियों का उपकार करते आ रहे हैं। प्रभुपथ-पथिकों को तो वे अहर्निश सहयोग देते रहते हैं, उनकी साधना की बाधाओं का निवारण करते रहते हैं। उन्होंने कितने भाग्यवान् भक्तों को सर्वलोकेश्वर श्रीभगवान् का दर्शन कराकर उनका जीवन सफल कर दिया, इसकी गणना सम्भव नहीं।

हिंदुमात्र का प्रिय ग्रंथ श्रीरामचरित मानस—कहते हैं, श्रीहनुमानजी की प्रेरणा से ही श्री तुलसीदासजी ने उसकी रचना

प्रारम्भ की और वे पद-पद पर उनकी सहायता करते गये। श्रीतुलसीदासजी ने स्वयं कृपामूर्ति श्रीआञ्जनेय के सम्बन्ध में कहा है कि 'जिस पर सब प्रकार के कल्याणों की खानि श्री हनुमानजी की कृपादृष्टि है, उस पर पार्वती, शंकर, लक्ष्मण, श्रीराम और जानकीजी सदा कृपा किया करते हैं।'

श्रीतुलसीदासजी का जीवन भी इसका साक्षी है। प्रसिद्ध है कि वे नित्य शौच से लौटते समय शौच का बचा जल एक बेर के वृक्ष-मूल में डाल देते थे। उस वृक्ष पर एक प्रेत रहता था। प्रेतयोनि की तृप्ति ऐसी ही निकृष्ट वस्तुओं से होती है। प्रेत उस अशुद्ध जल से प्रसन्न हो गया। एक दिन उसने प्रकट होकर श्रीतुलसीदासजी से कहा 'मैं आप पर प्रसन्न हूँ। बताइये, आपकी क्या सेवा करूँ ?'

'मुझे श्रीरघुनाथजी के दर्शन करा दो।' श्रीतुलसीदासजी के कहने पर प्रेत ने उत्तर दिया—'यदि मैं प्रभु का दर्शन करा सकता तो अधम प्रेत ही क्यों रहता, किंतु मैं आपको एक उपाय बता सकता हूँ। अमुक स्थान पर श्रीरामायण की कथा होती है। वहाँ सर्वप्रथम वृद्ध कुष्ठी के वेष में श्रीहनुमानजी नित्य पधारते है और सबसे दूर बैठकर कथा सुनकर सबसे पीछे जाते हे। आप उनके चरण पकड़ लें। उनकी कृपा से आपकी लालसा पूर्ण हो सकती है।'

तुलसीदासजी उसी दिन श्रीरामायण की कथा में पहुँचे। उन्होंने वृद्ध कुष्ठी के वेष में श्रीहनुमानजी को पहचान लिया और कथा के अन्त में उनके चरण पकड़ लिये। श्रीहनुमानजी गिड़गिड़ाने लगे, किंतु श्रीतुलसीदासजी की निष्ठा एवं प्रेमाग्रह से दयामूर्ति पवनकुमार ने उन्हें मन्त्र देकर चित्रकूट में अनुष्ठान

करने को आज्ञा दी। उन्होंने श्रीतुलसीदासजी को प्रभु-दर्शन कराने का वचन दे दिया।

भवाब्धिपोत महावीर हनुमानजी की कृपा का प्रत्यक्ष फल उदित होने लगा। श्रीतुलसीदासजी चित्रकूट पहुँचे और अञ्जनानन्दन के बताये मंत्र का अनुष्ठान करने लगे। एक दिन उन्होंने अश्व पर आरूढ़ श्याम और गौर दो कुमारों को देखा, किंतु देखकर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया। श्रीहनुमानजी ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर श्रीतुलसीदासजी से पूछा—'प्रभु के दर्शन हो गये न ?'

'प्रभु कहाँ थे ?' श्रीतुलसीदासजी के चकित होकर पूछने पर हनुमानजी ने कहा—'अश्वारोही श्याम-गौर कुमार, जो तुम्हारे सामने से निकले थे।'

'आह !' श्रीतुलसीदास जी अत्यन्त व्याकुल हो गये—'मैं प्रभु को पाकर भी उनसे वंचित रहा।' वे छटपटाने लगे। उनके नेत्रों से आँसू बह रहे थे और उन्हें अपने शरीर की सुध नहीं थी।

कृपामूर्ति श्रीहनुमानजी ने उन्हें प्रेमपूर्वक धैर्य बँधाया—'तुम्हें पुनः प्रभु के दर्शन हो जायँगे।' और दयाधाम श्रीमारुति की कृपा से उन्हें परम प्रभु श्रीराम के ही नहीं, राज्य-सिंहासन पर आसीन भगवती सीता सहित श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के साथ सुग्रीव और विभीषणादि सखा तथा वसिष्ठ आदि समस्त प्रमुख जनों के भी दर्शन प्राप्त हो गये।

कृपामूर्ति हनुमानजी की कृपा से प्रभु की इस अपूर्व छटा का ही दर्शन कर श्रीगोस्वामीजी कृतार्थ नहीं हुए, अपितु मन्दा-

किनी के पावन तट पर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मण को अपने हाथों चन्दन घिसकर तिलक भी कराया -

मानस-मर्मज्ञ कहते हैं कि श्रीरामचरित मानस की रचना के समय श्रीतुलसीदास जी को कठिनाई का अनुभव होते ही भक्ति-सुधापानेच्छु कृपामूर्ति श्री हनुमानजी स्वयं प्रकट होकर उनकी सहायता किया करते थे। दो स्थल तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

(१) श्री शंकरजी के तप के समय कामदेव के व्यापक प्रभाव का वर्णन करते हुए श्रीतुलसीदासजी ने लिखा 'धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।' आधा सोरठा लिख लेने पर चिन्ता हुई। 'काहूँ' और 'सबके' में तो श्रीनारदादि देवर्षि और विरक्त भक्त भी आ गये, जिन्हे काम-विकार स्पर्श भी नहीं करता। श्रीतुलसीदासजी ने आञ्जनेय का स्मरण किया और उन्होने प्रकट होकर सोरठे के दूसरे चरण की पूर्ति कर दी— 'जे राखे रघुवीर ते उबरे तेहि काल महुँ।'

और—

(२) धनुष-यज्ञ का वर्णन करते समय श्रीतुलसीदासजी ने सोरठा लिखा—

'संकर चापु जहाजु सागर रघुवर बाहुबल। बूड़ सो सकल समाज'—श्रीतुलसीदासजी रुके। 'सकल समाज' में तो महर्षि विश्वामित्र और धनुष को स्पर्श भी न करने वाले नरेश तथा न जाने कितने लोग आ गये। श्रीतुलसीदासजी की बुद्धि काम नही कर रही थी, उनकी प्रार्थना सुनते ही हनुमानजी ने कृपा की और प्रकट होकर उन्होंने सोरठा पूरा कर दिया—'चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबस।'

(इतना ही नहीं, श्रीतुलसीदासजी ने जब-जब कठिनाई अनुभव की, तब-तब मङ्गलमूर्ति पवननन्दन का स्मरण किया। बाहु-पीड़ा के समय महावीर हनुमानजी से प्रार्थना करते हुए उन्होंने 'हनुमानबाहुक' की रचना की। श्रीरामचरितमानस, विनयपत्रिका और कवितावली में तो उनका स्तवन एवं गुणगान हुआ ही है, 'हनुमान-चालीसा' और 'संकटमोचन' आदि स्वतन्त्र पुस्तिकाओं में भी श्रीतुलसीदासजी ने अन्तर्हृदय से कृपामय महावीर हनुमानजी की वन्दना की है।)

परम प्रभु श्रीराम का दर्शन समस्त लौकिक-पारलौकिक सुखों का मूल है। अनिर्वचनीय सुख-शान्तिप्रदायक है वह। वह दर्शन श्रीराम की प्रेमा-भक्ति के बिना सम्भव नहीं और उस प्रेमा-भक्ति की प्राप्ति काम-क्रोधादि से ग्रस्त हम सांसारिक जीवों को सहज नहीं। यह साधन-साध्य नहीं। दयामय प्रभु की अहैतुकी कृपा से ही यह सम्भव है। किंतु जिस पर आञ्जनेय की अहैतु की कृपादृष्टि पड़ जाती है, वह प्रभु एवं उनकी प्रेमा-भक्ति को प्राप्त कर लेता है और कृपामूर्ति श्रीहनुमानजी इसके लिए प्रतिक्षण प्रस्तुत हैं। जीवमात्र को प्रभु के मङ्गलमय चरण-कमलों में पहुँचाकर उसका कल्याण करने के लिए वे आतुर रहते हैं, किंतु हमारी ही प्रभु-प्राप्ति की इच्छा नहीं होती। हम वासनाओं के प्रवाह में आकण्ठ-मग्न होकर सुख का अनुभव कर रहे हैं। इनसे पृथक् होना ही नहीं चाहते। गदाधारी कृपामय हनुमानजी की ओर झाँकना भी नहीं चाहते, इसी कारण वे दया-धाम विवश हो जाते हैं। उनकी इच्छा अपूर्ण रह जाती है।

संतुष्ट होने पर हनुमानजी को जीव का परम कल्याण करते देर नहीं लगती, पर उन्हें संतुष्ट करने की इच्छा हो तब न। आजन्म ब्रह्मचारी हनुमानजी सदाचार, धर्म-पालन ब्रह्मचर्य-

पालन, दीन-दुःखियों की सेवा-सहायता, शास्त्रों, संतों, महापुरुषों, भक्तों एवं भगवान् के प्रति श्रद्धा, विश्वास एवं प्रीति से सहज ही तुष्ट हो जाते है और अपने नित्य सहचर श्रीहनुमानजी के संतुष्ट होते ही श्रीरघुनाथजी तत्क्षण प्रसन्न हो जाते हैं। मारुति की प्रसन्नता में ही जीवन और जन्म की सार्थकता तथा सफलता है।

अनन्त मंगलालय कृपामूर्ति अञ्जनानन्दन का पावन चरित्र वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण और पुराणों में विस्तार-पूर्वक गाया गया है। यहाँ तो उसका संक्षिप्त संकलनमात्र ही है, पर जो भी है, वह निश्चय ही मारुति का कृपा-प्रसाद है। वे कृपामूर्ति महावीर हनुमानजी कृपा करें, उनके सर्वाभीष्टप्रदाता चरण कमलों में यही विनीत निवेदन है।

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ॥